# MAPA- 507

# भारत में स्थानीय शासन (भाग- 1)

# LOCAL GOVERNANCE IN INDIA (Part- 1)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई0 मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

**अध्ययन मंडल**


| | |
|---|---|
| प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे<br>निदेशक- समाज विज्ञान विद्याशाखा<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,<br>उत्तराखण्ड | प्रो0 अजय सिंह रावत<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड |
| प्रो0 अशोक कुमार शर्मा, सेवानिवृत्त<br>लोक प्रशासन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,<br>जयपुर | प्रो0 उमा मेदुरी<br>लोक प्रशासन विभाग, इंदिरागांधी राष्ट्रीय मुक्त वि0वि0<br>दिल्ली |
| प्रो0 बी0 अरूण कुमार<br>लोक प्रशासन विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त वि0वि0<br>कोटा, राजस्थान | प्रो0 एम0 एम0 सेमवाल, राजनीति विज्ञान विभाग<br>केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल, उत्तराखण्ड |
| डॉ0 ए0 के0 रुस्तगी, रीडर राजनीति विज्ञान विभाग<br>जे0 एस0 पी0 जी0 कॉलेज, अमरोहा, उत्तर प्रदेश | प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य)<br>राजनीति विज्ञान विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल |
| डॉ0 घनश्याम जोशी<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी | डॉ0 सूर्य भान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड |


**पाठ्यक्रम संयोजन और सम्पादक**


डॉ0 घनश्याम जोशी
लोक प्रशासन विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड



| **इकाई लेखक** | **इकाई संख्या** |
|---|---|
| डॉ0 संतोष सिंह, राजनीति विज्ञान विभाग<br>राजकीय महिला महाविद्यालय, खानपुर हरिद्वार, उत्तराखण्ड | 1, 2, 3, 9 |
| डॉ0 शशि सौरभ, राजनीति विज्ञान विभाग<br>डॉ0 शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश | 12 |
| डॉ0 संतोष सिंह, राजनीति विज्ञान विभाग<br>चौरी बेलहा महाविद्यालय, तरवा, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश | 4, 5, 6, 7 |
| डॉ0 घनश्याम जोशी, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड | 8 |
| डॉ0 दुर्गाकान्त चौधरी, राजनीति विज्ञान विभाग<br>एस0 बी0 एस0 पी0 जी0 कालेज, रूद्रपुर, उत्तराखण्ड | 10, 11, 12 |



**प्रकाशन वर्ष- 2020**



**कापीराइट @** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय



**प्रथम संस्करण-** 2020

प्रकाशकनिदेशालय- अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

# अनुक्रम

## भारत में स्थानीय शासन (भाग- 1)


| | |
|---|---|
| **खण्ड- 1 स्थानीय शासन- परिचय** | |
| **1.** स्थानीय शासन- परिचय, भूमिका, महत्व | 1 – 11 |
| **2.** ग्रामीण संस्थाओं का विकास | 12 – 26 |
| **3.** सामुदायिक विकास कार्यक्रम | 27 – 36 |
| **खण्ड- 2 पंचायत व्यवस्था** | |
| **4.** बलवंत राय मेहता समिति, प्रतिवेदन एवं त्रिस्तरी व्यवस्था | 37 – 52 |
| **5.** ग्राम पंचायत | 53 – 71 |
| **6.** क्षेत्र पंचायत | 72 – 91 |
| **7.** जिला परिषद | 92 – 111 |
| **8.** पंचायती राज तथा 73वां संशोधन | 112 – 127 |
| **खण्ड- 3 पंचायत व्यवस्था का प्रशासन** | |
| **9.** कर्मचारी वर्ग व्यवस्था | 128 – 137 |
| **10.** पंचायती राज संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन | 138 – 154 |
| **11.** ग्रामीण स्थानीय शासन प्रशासनिक ढांचा | 155 – 174 |
| **12.** पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण | 175 – 189 |

# इकाई-1 स्थानीय शासन- परिचय, भूमिका, महत्व

**इकाई की संरचना**

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 भारत में स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि

1.3 स्थानीय शासन का अर्थ एवं परिभाषा

1.4 स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व

1.5 स्थानीय स्वशासन के लाभ

1.5.1 स्थानीय विषयों का कुशलतापूर्ण प्रबन्ध

1.5.2केन्द्रीय शासन का भार कम होना

1.5.3सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति जागरूक करना

1.5.4 राजनीतिक शिक्षण एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना

1.6.5 नौकरशाही पर नियंत्रण एवं मितव्ययिता

1.5.6 शासन में जन-सहभागिता एवं नागरिक गुणों का विकास

1.5.7 सुविधाएं पहुँचाने का साधन

1.5.8 नीति निर्माण में सहायक

1.5 भारत में स्थानीय शासन की संवैधानिक स्थिति

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

## 1.0 प्रस्तावना

वर्तमान युग में स्थानीय शासन व्यवस्था, लोकतंत्र के बुनियादी मूल्यों स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर आधारित राजनीतिक निर्णयों में सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं जन सहभागिता के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्धों पर आधारित है। लोकतंत्र की मूल मान्यता सर्वोच्च सत्ता का जनता में निहित होना है और इसका आशय होता है कि सर्वोच्च शक्ति का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण कर उसमें व्यक्ति की प्रत्यक्ष भागीदारी को शासन कार्यों में अभीष्ट स्थान देना। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इस भावना को मूर्त रूप देने में स्थानीय शासन व्यवस्थाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है विशेष तौर पर तब जबकि इन संस्थाओं में प्रबन्ध न कार्य स्वयं नागरिकों की सहभागिता से होता है। इन संस्थाओं को जहाँ लोकतंत्र की आधारशिला कहा जाता है वहीं जनता को जागरूक कर लोकतंत्र के विश्वास का पाठ पढाती है। भारत जैसे देश में जहाँ दो-तिहाई से भी अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हो, वहाँ स्थानीय शासन की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत का विस्तृत भू-भाग, कल्याणकारी सरकार के विस्तृत कार्य एवं दायित्व, स्थानीय समस्याओं का दिन-प्रतिदिन व्यापक होना आदि चुनौतियों के समाधान के लिए स्थानीय शासन ही कारगर हथियार है। डी0 टाकविले के अनुसार, ''स्वतंत्र राष्ट्रों की शक्ति स्थानीय संस्थाएं होती हैं। एक राष्ट्र स्वतंत्र शासन की स्थापना कर सकता है किंतु स्थानीय संस्थाओं के बिना स्वतंत्रता की भावना नहीं हो सकती है।" स्थानीय शासन के लोकतांत्रिक महत्त्व को देखते हुए भारतीय संविधान में 73वाँ एवं 74वाँ संविधान संशोधन करते हुए संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया, और 14 अप्रैल 1993 से स्थानीय शासन (पंचायती एवं नगरीय) में विभक्त कर लागू कर दिया है। यह भारत में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के पश्चात तीसरे स्तर की सरकार बन गयी।

स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता और महत्ता को सैद्धान्तिक स्तर पर भी महसूस किया जाना अपेक्षित है; जबकि व्यवहार में ऐसे स्वस्थ वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें स्थानीय स्वशासन के सभी सदस्यों में सहभागितापूर्ण लोकतंत्र फल-फूल सके। विश्व का लोकमत इस दृष्टिकोण का कायल हो रहा है कि स्थानीय स्वशासन राष्ट्रीय विकास और लोगों की प्रभावकारी सहभागिता के लिए अत्यावश्यक है और समस्त लोकतांत्रिक प्रक्रिया का अखण्ड एवं अपरिहार्य अंग इतना ज्यादा कि 08 अक्टूबर 1985 को यूरोपीय परिषद के 11 सदस्यों ने स्थानीय स्वशासन के यूरोपीय घोषणापत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में परम्परा के द्वारा स्थानीय सरकारों पर सरकार के कतिपय बुनियादी कार्यों का दायित्व निर्भर है।

हमारे देश का स्थानीय स्वशासन दो स्तरों- नगरीय एवं ग्रामीण में विभक्त है नगरीय क्षेत्र में स्थानीय प्रशासन के अन्तर्गत संचालित इकाइयां नगर निगम, नगर पालिकाएं, अधिसूचित क्षेत्र समितियां, छावनी बोर्ड संस्था है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पंचायतीराज व्यवस्था के त्रिस्तरीय रचना- जिला पंचायत, क्षेत्र पंचायत एवं ग्राम पंचायत को अपनाया गया। स्थानीय शासन को विभिन्न देशों में अलग- अलग नामों से संबोधित किया जाता है। इंगलैण्ड में इन्हें स्थानीय सरकारें कहा जाता है। फ्रान्स में स्थानीय प्रशासन (प्रीफेक्ट व्यवस्था) तथा अमेरिका में नगर पालिका शासन कहते हैं। सोवियत रूस में इसे म्युनिसिपल सोवियतन कहा गया है। किन्तु भारत में इसे 'स्थानीय स्वशासन' से पुकारा जाता है।

## 1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में स्थानीय शासन को समझ पायेंगे।
- लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा में स्थानीय शासन के महत्व को जान पायेंगे।
- स्थानीय शासन के माध्यम से राजनीतिक विकास में जनसहभागिता एवं नियंत्रण को समझ पायेंगे।

## 1.2 भारत में स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि

भारत में स्थानीय स्वशासन की अवधारणा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। स्थानीय स्वशासन वर्तमान की भाँति नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में विभक्त थी विशेष रूप से ग्राम पंचायतों का अस्तित्व अति प्राचीन है। 'पंचायत' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'पंचायतन' से हुई है, जिसका आशय पाँच व्यक्तियों के समूह से है। वैदिक सभ्यता के साहित्य में सभा एवं समितियों का वर्णन मिलता है जो प्रजा की भलाई के लिए राजा को सलाह देती थी। जिससे अतिशासन पर नियंत्रण सम्भव होता था।

रामायण महाभारत काल के साहित्य में सभाओं, समितियों तथा गाँवों का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण में दो प्रकार के गांवों का वर्णन है- घोश एवं ग्राम। मनुस्मृति के अनुसार गाँव का अधिकारी 'ग्रामिक' कहलाता था उसका कार्य 'कर' संचित करना था। दस गाँव के अधिकारी को 'दशिक', 20 गाँव के अधिकारी को 'विधाधिप' सौ गाँवों पर शतपाल और एक हजार गाँव के अधिकारी को सहस्रपति कहते थे। मौर्य काल के विदेशी यात्री मेगस्थनीज द्वारा भी स्थानीय शासन में नगरों एवं ग्राम आत्मनिर्भर छोटे गणतंत्रों के रूप में बताया गया। अर्थशास्त्र में कोटिल्य द्वारा स्थानीय स्वशासन पर काफी विस्तार से बताया गया और मौर्य शासकों के काल में इसका स्वरूप

काफी विकसित था। गुप्त काल में गाँव के लिए ग्राम समितियों का विकास हो चुका था प्रशासनिक सुविधा के लिए प्रान्तों को नगर एवं ग्राम में विभक्त किया गया था। नगर का अधिकारी 'नगरपति' एवं ग्राम का अधिकारी 'ग्रामिक' कहलाता था। राजपूत कालीन युग में भी प्रशासन की मूल इकाई ग्राम ही थी जिसका शासन प्रबन्ध सभा एवं समितियों द्वारा होता था नगरीय शासन प्रबन्ध 'पहनाधिकारी' द्वारा होता था।

सल्तनतकालीन प्रशासन मूलतः सैनिक शासन रहा, जहाँ निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारीता द्वारा स्थानीय स्वशासन के महत्त्व को कमतर कर दिया गया। सत्ता के केन्द्रीयकरण ने स्थानीय स्वायत्ता को प्रायः समाप्त ही कर दिया था। मुस्लिम शासनकाल में स्थानीय संस्थाओं के प्रति उपेक्षा देखने को मिलती है इस काल में स्थानीय संस्थाओं और स्वशासन का स्वरूप वह नहीं रहा था जो प्राचीन भारत की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में देखने को मिलता है, विशेष रूप से जमींदारी प्रथा के आरम्भ होने के पश्चात। सत्ता के प्रति यह दृष्टिकोण आगे मुगलकाल में भी जारी रहा और स्थानीय स्वशासन की अवधारणा के महत्त्व पर कम ध्यान दिया गया। किन्तु स्थानीय प्रशासन पर 'आईन-ए-अकबरी' में नगर प्रशासन की जिम्मेदारी जिस अधिकारी पर थी वह 'कोतवाल' कहलाता था।

ब्रिटिश के प्रशासन में स्थानीय शासन के विषय में पर्याप्त विस्तृत विवरण मिलता है। यद्यपि भारत में स्थानीय स्वशासन प्राचीन काल से ही मौजूद रहा किन्तु इसका वर्तमान स्वरूप, संगठन, कार्यप्रणाली और विकास ब्रिटिश राज की ही देन है।

स्थानीय स्वशासन में शासक वर्ग का निर्वाचन जो प्रतिनिधियात्मक व उत्तरदायित्व की ओर संकेत करता है, का विकास ब्रिटिश शासन में आरम्भ हुआ।

ब्रिटिश काल में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की अपेक्षा नगरीय स्थानीय संस्थाओं के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया था इसका आरम्भ 1687 मद्रास नगर निगम की स्थापना से माना जाता है। इस प्रकार ब्रिटिश काल में विकसित हुआ भारत का स्थानीय शासन लगभग 330 वर्ष पुराना है।

आजादी के पश्चात भारतीय संस्कृति के प्राचीन मूल्यों, परम्पराओं एवं विरासतों को प्रजातांत्रिक संवैधानिक व्यवस्थाओं के साथ स्वभाविक रूप से अपनाया गया और हमारे नीति निर्माताओं द्वारा स्थानीय शासन के महत्त्व को समझते हुए लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित स्वायत्ता प्रदान की गयी। निर्वाचक गणों के प्रति उत्तरदायी पूर्ण शासन को बनाने के लिए स्थानीय स्वशासन को विकसित करने का पुनित कार्य न केवल राज्य को सौंपा गया बल्कि नीति-निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत पंचायतों एवं नगरीय शासन को 1992 में 73वां एवं 74वां संविधान संशोधन कर संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया। तब से भारतीय स्थानीय स्वशासन हमारी संघात्मक संरचना में

शासन के तीसरे सोपान (केन्द्र, राज्य, स्थानीय) के रूप में एक मजबूत कडी का काम कर रहा है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से भारतीय संघात्मक शासन व्यवस्था ग्राम पंचायतों एवं नगरीय प्रशासन में आत्मनिर्णय उत्तरदायित्व एवं जनसहभागिता द्वारा विकास को पुख्ता किया जा रहा है।

## 1.3 स्थानीय शासन का अर्थ एवं परिभाषाऐं

स्थानीय स्वशासन का अर्थ है नागरिकों का अपने ऊपर स्वयं का शासन अर्थात लोगों की अपनी शासन व्यवस्था। प्राचीन काल में स्थानीय स्वशासन विद्यमान था तथा ग्रामीण शासन प्रबन्ध न के लिए लोगों के अपने, कायदे कानून होते थे। इन नियमों के पालन में प्रत्येक व्यक्ति स्वैच्छिक भूमिका निभाता था। क्योंकि इससे शान्ति व्यवस्था बनाने में, सहभागितापूर्ण कार्यों में, समस्याओं के समाधान की क्षमता में विशेष योग्यता प्राप्त होती थी ताकि सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त कर सके।

स्थानीय स्वशासन को स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाऐं निम्न प्रकार हैं-

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार, ''पूर्ण राज्य की अपेक्षा एक अन्दरूनी प्रतिबंधित एवं छोटे क्षेत्र में निर्णय लेने तथा उनको क्रियान्वित करने वाली सत्ता ही स्थानीय शासन है।''

एल0 गोल्डिंग के कथनानुसार ''स्थानीय सरकार को कई प्रकार से परिभाषित किया गया है किन्तु सम्भवतः इसकी सबसे सरल परिभाषा यही है कि यह एक बस्ती के लोगों द्वारा अपने मामलों का स्वयं ही प्रबन्ध है।''

हरमन फाइनर कहते हैं कि ''जिस श्रेणी संघवाद तथा समानुपातिक प्रतिनिधित्व आदि की युक्तियां आती हैं, उसी में स्थानीय स्वायत्त शासन की गिनती है। ये सब व्यवस्थाएं समूह के अत्याचारों समतलन मानकीकरण तथा व्यक्तियों एवं व्यक्ति समूहों के प्रति परम्परागत घृणा से बचाव का साधन है।''

डब्ल्यू0 ए0 राब्सन के शब्दों में, ''सामान्यतः स्थानीय शासन में एक ऐसे प्रादेशिक प्रभुत्वहीन समुदाय की धारणा निहित होती है जिसके पास अपने मामलों का नियमन करने का विधिक अधिकार तथा आवश्यक संगठन हुआ करता है जो बाह्य नियंत्रण से मुक्त रहकर काम कर सके, साथ ही यह भी जरूरी है कि स्थानीय समुदाय का अपने मामलों के प्रशासन में हिस्सा हो। स्थानीय शासन के ये तत्व किस सीमा तक विद्यमान होते हैं, इस विषय में न्यूनाधिक अन्तर हो सकता है।''

वी0 वी0 राव के अनुसार, ''स्थानीय शासन सरकार का वह भाग है जो स्थानीय विषयों का प्रबन्ध करता है, जो सत्ताधारी राज्य सरकार के अधीन प्रशासन चलाते हैं परन्तु उनका निर्वाचन राज्य सरकार के स्वतंत्र एवं सक्षम निवासियों द्वारा किया जाता है।''

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि स्थानीय लोगों द्वारा मिल-जुल कर अपनी समस्याओं के निदान एवं विकास हेतु बनाई गई ऐसी व्यवस्था जो संविधान और राज्य सरकारों द्वारा बनाए गये नियमों एवं कानूनों के अनुरूप हो। स्थानीय शासन से हमारा अभिप्राय यह है कि स्थानीय क्षेत्रों का प्रशासन वहाँ के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाए। यदि स्थानीय क्षेत्र का प्रशासन केन्द्र या राज्य सरकारों के अधिकारियों द्वारा चलाया जाए तो वह स्थानीय प्रशासन होगा न कि स्थानीय स्वशासन। स्थानीय स्तर की समस्याओं का स्थानीय स्तर पर समाधान करने के लिए प्रायः सभी देशों में स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं स्थापित की जाती हैं। ये संस्थाएं ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग होती हैं। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी कुछ मूल्य एवं मान्यताएं होती हैं। इन्हीं मूल्य एवं मान्यताओं से राष्ट्र की सामाजिक राजनीतिक संस्थाएं उनकी कार्यप्रणाली तथा राष्ट्र का सर्वांगीण विकास निर्धारित होता है। इस तरह की संस्थाएं लचीली होती हैं। अतः ये समाज के बदलते राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश तथा आवश्यकता के अनुसार अपने आपको ढालने का प्रयास करती हैं।

## 1.4 स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व

समकालीन परिदृश्य में जन आकांक्षाओं की उभरती हुई प्रवृत्तियों तथा लोककल्याणकारी राज्यों की मान्यता के फलस्वरूप राज्यों के कार्यों में उल्लेखनीय रूप से विस्तार हुआ है। केवल केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार ही इन कार्यों का सम्पादन नहीं कर सकती। इसी कारण लोकतांत्रिक देशों में राष्ट्रीय एवं प्रांतीय सरकारें अपने कार्यों को गति देने की दृष्टि से स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को पर्याप्त उत्तरदायित्व देती है। स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए हैराल्ड जे लास्की ने कहा है, ‘‘हम लोकतंत्रीय शासन से पूरा लाभ उस समय तक नहीं उठा सकते जब तक कि हम यह न मान लें कि सभी समस्याएं केन्द्रीय समस्याएं नहीं हैं और उन समस्याओं को उन्हीं लोगों द्वारा हल किया जाना चाहिए जो उन समस्याओं से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं।’’

जब कोई जन समूह किसी स्थान विशेष पर मिल-जुल कर सामुदायिक जीवन का आरम्भ करता है तो पारस्परिक सम्बन्धों के निरूपण से अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इन समस्याओं का सम्बन्ध नागरिक जीवन की सुविधाओं की व्यवस्था से होता है जैसे बिजली, पानी, सडक, संचार, स्वास्थ, आवास और स्वच्छता आदि। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ मनुष्य की जीवन यापन की आवश्यकताओं की न्यूनतम अवधारणा भी बदलने लगी है। स्थानीय शासन को जो कार्य करने चाहिए इनमें निरन्तर वृद्धि हो रही है। उपलब्ध सुविधाओं का परिवर्धन एवं नई सुविधायें जुटाना तथा भविष्य की सम्भावनाओं पर विचार कर, मानवीय जीवन के शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष को बेहतर बनाना स्थानीय शासन का उत्तरदायित्व है।

जहाँ एक ओर मनुष्य के जीवन को बेहतर से बेहतर बनाना स्थानीय शासन का उद्देश्य है वहीं प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति जागरूक कर समाज को शासन व्यवस्थाओं के साथ सामंजस्य बिठाकर सतत विकास के पथ पर अग्रसर करना भी है। भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में स्थानीय स्वशासन संघवाद और सत्ता के विकेन्द्रीकरण व्यवस्था में तीन स्तर के शासन में बुनियाद का कार्य करता है। वस्तुतः आजकल लोगों के दैनिक जीवन में स्थानीय शासन की भूमिका प्रान्तीय और केन्द्रीय शासन से भी अधिक हो गयी है। इससे भी अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि स्थानीय शासन के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होने से इसका महत्व और अधिक बढता ही जायेगा। जैसे-जैसे लोग राजनीतिक दृष्टि से जागरूक होते जाऐंगे, राजनीतिक संस्कृति मजबूत होगी और उत्तरदायित्व और सहअस्तित्व पर आधारित शासन व्यवस्था का यह स्तर, नागरिक सहभागिता को और मजबूत करेगा और भविष्य की नागरिक सेवाओं के निष्पादन में मील का पत्थर भी साबित होगा।

## 1.5 स्थानीय स्वशासन के लाभ

स्थानीय शासन के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं-

### 1.5.1 स्थानीय विषयों का कुशलतापूर्ण प्रबन्ध

यदि स्थानीय संस्थाएं न हों तो स्थानीय विषयों का प्रबन्धन भी केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों द्वारा किया जायेगा जिससे उनके पास कार्यों की अधिकता होगी। स्थानीय स्वशासन के कारण नागरिकों के धरातलीय उत्तरदायित्वों का निर्वहन स्थानीय संस्थाएं कुशलतापूर्वक करती है इससे न केवल समस्याओं का त्वरित निदान होता है बल्कि संस्थाओं व नागरिकों के मध्य सीधा व सहभागी सम्बन्ध स्थापित होता है जो कुशल प्रबन्धन का द्योतक है। सम्भव है कि केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि स्थानीय समस्याओं को न समझ सकें और स्थानीय समस्याओं का हल ढूँढ निकालना उनके लिए सम्भव न हो। दूरस्थ क्षेत्रों में कार्य करने में उन्हें अवश्य ही बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पडता है। इन कार्यों को स्थानीय शासन आसानी से कुशलतापूर्वक कर सकता है।

### 1.5.2 केन्द्रीय शासन का भार कम होना

जनकल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने केन्द्र सरकार के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि कर दी है। ऐसे में अगर स्थानीय विषयों को भी केन्द्रीय सरकार द्वारा सम्पन्न करने से उसके कार्य भार में अत्याधिक वृद्धि से असंतुलन बढेगा और केन्द्र सरकार अपने कार्य भी सही प्रकार से नहीं कर सकेगी। स्थानीय संस्थाएं केन्द्रीय सरकार के कार्य भार को कम करने में मदद करती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि स्थानीय शासन केन्द्रीय शासन का कुछ बोझ अपने ऊपर ले

लेता है। केन्द्रीय शासन अपने कुछ कार्य स्थानीय शासन को सौंप देता है। फलतः स्थानीय शासन केन्द्रीय या राज्य सरकारों को बहुत से कार्यों या जिम्मेदारियों से मुक्त कर देता है।

**1.5.3 सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति जागरूक करना**

प्रजातंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सामान्य नागरिकों द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में कितनी रूचि ली जाती है। यह रूचि संस्थाओं द्वारा एवं स्वयं नागरिकों द्वारा उत्पन्न होनी चाहिए। इससे विश्वास और उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है और जनसाधारण बढ़-चढ़ कर भागीदार बनते हैं। सार्वजनिक जीवन के प्रति जागरूकता बढ़ना स्थानीय शासन की संस्थाओं का दायित्व है। स्थानीय शासन जनता के सबसे निकट होता है इसलिए लोग यह भी मानते हैं कि वे इन संस्थाओं पर अच्छे कामकाज के लिए अधिक प्रभाव डाल सकते हैं। नागरिकों की भावना और क्रियाशीलता समस्त जन समुदाय में जागरूकता का संचार करती है।

**1.5.4 राजनीतिक शिक्षण एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना**

स्थानीय शासन एक ओर जहाँ राजनीतिक शिक्षण का माध्यम बनना है, वहीं स्थानीयता से राष्ट्रीयता तक एकता की भावना का संचार करता है। प्रजातांत्रिक स्वरूप में नागरिक स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के भाव को प्राप्त ही नहीं करते, बल्कि उसकी रक्षा हेतु एकता के सूत्र में बंध कर राष्ट्र के प्रति निष्ठावान भी बनते हैं। जनता राजनीतिक तौर पर सजग रहती है और करों के औचित्य, चुनाव के तरीके और शासन के कार्यों को समझ सकती है कि शासन अपने कार्यों अर्थात कर्तव्यों को पूरा कर रही है या नहीं। नागरिक सार्वजनिक मामलों से परिचित हो जाता है। स्थानीय संस्थाएं नागरिकों को राज्य और देश की राजनीति में भाग लेने योग्य बनाती है।

**1.5.5 नौकरशाही पर नियंत्रण एवं मितव्ययिता**

स्थानीय शासन का एक बड़ा लाभ यह होता है कि राज कर्मचारियों की शक्ति को बढने से रोका जा सकता है। एक ओर तो नौकरशाही को यह बताया जाता है कि वे लोकसेवक हैं दूसरे जनता द्वारा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कई प्रकार के नियंत्रणों से शक्ति और विवके के फैलाव पर रोक लगती है, जिससे क्षेत्राधिकार की सीमाओं में मितव्ययिता के साथ नौकरशाही, लोकसेवकों के रूप में कार्य करती है।

**1.5.6 शासन में जन-सहभागिता एवं नागरिक गुणों का विकास**

स्थानीय स्वशासन के माध्यम से जनता शासकीय कार्यों में सक्रिय एवं सकारात्मक सहयोग प्रदान करती है। ब्राइस ने इसके महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि ‘‘स्थानीय संस्थाएं लोगों को न केवल दूसरों के लिए कार्य करना सिखाती हैं, वरन् इसके साथ मिलकर कार्य करना भी सिखाती हैं। सहयोग की सकारात्मक सोच नागरिकों को

सामान्य समस्याओं के प्रति रूचिवान बनाती है। योग्यता एवं ईमानदारी से कर्त्तव्य पालन की भावना अच्छे नागरिकों का निर्माण इसी स्वशासन में ही सम्भव होता है।"

इस प्रकार स्थानीय शासन आधुनिक राज्यों के लिए न केवल आवश्यक बन गई है, बल्कि ये प्रजातंत्र की आधारशिला हो गई है। स्थानीय संस्थाएं स्थानीय उत्तरदायित्व एवं राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में अहम भूमिका निभाती हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय समाज संवैधानिक सरकार के संचालन में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान करता है। प्रजातंत्र को अपने घर से आरम्भ होना चाहिए और इसके लिए स्थानीय सरकार सबसे उपयुक्त स्थान है। इस प्रकार वास्तविक प्रजातंत्र के लिए स्थानीय संस्थाएं अति आवश्यक है।

### 1.5.7 सुविधाएं पहुँचाने का साधन

स्थानीय शासन जनता को सुविधाएं पहुँचाने का एक साधन है। स्थानीय शासन सफाई, सडकों, स्वास्थ्य, जल, बिजली आदि की समस्याएं हल करके जनता को सुविधाएं पहुँचाता है। जनता के लिए भी यह अधिक सुविधाजनक होता है कि उसकी समस्याएं केन्द्रीय शासन के प्रतिनिधि द्वारा हल न करके स्थानीय शासन द्वारा हल की जाए।

### 1.5.8 नीति निर्माण में सहायक

स्थानीय सरकार राज्य सरकारों को समस्त ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों की जनता से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएं और आँकड़े उपलब्ध कराती है। जनसंख्या, आय, पुरुष, महिला, शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी, भूमि, उत्पादन, आदि बातों की जानकारी स्थानीय सरकार ही प्रदान करती है। इन सूचनाओं के आधार पर राज्य सरकार अपनी नीतियां तैयार करती हैं, जिससे योजनाओं और कार्यक्रमों का निर्माण होता है, जिससे समस्त राष्ट्र का हित निहित होता है। इन नीतियों तथा योजनाओं को सफल बनाने में स्थानीय शासन का अत्यधिक योगदान होता है।

## 1.6 भारत में स्थानीय शासन की संवैधानिक स्थिति

यद्यपि भारत के संविधान में स्थानीय शासन को परिभाषित नहीं किया गया है। सातवीं अनुसूची में कहा गया है: "स्थानीय शासन अर्थात म्युनिसिपिल कॉरपोरेशन, इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, जिला परिषदों, खदान अभिकरणों और स्थानीय स्वशासन तथा ग्राम प्रशासन के हेतु अन्य स्थानीय अभिकरणों के गठन एवं शक्तियां।"

इस प्रकार 1992 तक भारत में स्थानीय शासन राज्यों के विवेक पर निर्भर था। इस कमी को दूर करते हुए संविधान में दो संशोधन किए गये। इन दो संविधान संशोधनों के माध्यम से भारतीय स्थानीय शासन को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो गया। 73वां संशोधन जो ग्रामीण पंचायती राज संस्थाओं के विकास से सम्बन्धित है और 74वां संशोधन

जो नगरीय प्रशासन से, दोनों के द्वारा सत्ता का लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण कर दिया गया। संविधान में ऐसा करने वाला भारत दुनियां का पाँचवां देश बन गया।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता देने के लिए भारतीय संविधान में कौन-कौन से संशोधन किए गये?
2. भारत में स्थानीय स्वशासन को कितने भागों में विभक्त किया गया है?
3. पंचायत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के किस शब्द से हुई है?
4. भारत में नगर निगम की सर्वप्रथम स्थापना कब और कहाँ हुई?

## 1.7 सारांश

स्थानीय स्वशासन एक प्राचीन अवधारणा है विशेष रूप से भारतीय संस्कृति में इससे जुड़ी संस्थाओं को विकास क्रम में प्राचीन से अद्यतम तक परिभाषित किया जा सकता है।

यह शासन का ऐसा स्वरूप है जो नागरिक विकास के लिए स्थानीय मुद्दों के समाधान में जनसहभागिता की जरूरत पर विशेष बल देता है। स्थानीय स्वशासन,भारतीय संघात्मकता एवं एकात्मकता रूपी प्रजातंत्र पर आधारित सत्ताविकेन्द्रीकरण मूल्यों की आधारशिला है। संवैधानिक दर्जा प्राप्त होने से यह नियंत्रण एवं उत्तरदायी पूर्ण शासन व्यवस्था का तीसरा स्तर है जो नीति-व्यवस्था का तीसरा स्तर है जो नीति-निर्माण से क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन तक जनसहभागिता पर आधारित है। सही मायने में लोकतंत्र की बुनियादी इकाई 'स्थानीय स्वशासन' ही है।

## 1.8 शब्दावली

परिवर्धन- विस्तरण या विस्तार, द्योतक- प्रतीक या चिन्ह स्वरूप, उत्तरदायित्व- जिम्मेदारी, जनसाधारण- आमलोग, आधारशीला- नींव

## 1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** 73वां और 74वां संवैधानिक संशोधन, **2.** दो भागों में- नगरीय और ग्रामीण, **3.** पंचायतन, **4.** 1687 में मद्रास नगर निगम

## 1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एल0 गोल्डिंग, लोकल गवर्नमेंट, इंगलिश यूनिवर्सिटी, लंदन 1955

2. जेम्सब्राइस, मार्डन डेमोक्रेसीज, मैकमिलन प्रेस न्यूयार्क 1921

3. जे0 एस0मिल, रिप्रेजेन्टिव गवर्नमेंट एवरिमेंस लाइब्रेरी एडीसन प्रेस लंदन 1957

4. एस0आर0 माहेश्वरी, ‘‘भारत में स्थानीय शासन’’, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2012

## 1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एस0आर0 माहेश्वरी, ‘‘भारत में स्थानीय शासन’’, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2012

## 1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भारत में स्थानीय स्वशासन के महत्व को विस्तार से समझाइये।
2. स्थानीय स्वशासन को परिभाषित कीजिए और उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. स्थानीय शासन के लाभों को विस्तार से समझाइये।
4. स्थानीय शासन लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की बुनियाद है,विश्लेषण कीजिए।

# इकाई- 2 ग्रामीण संस्थाओं का विकास

**इकाई की संरचना**

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 भारतीय इतिहास में ग्रामीण संस्थाएं

2.3 ग्रामीण संस्थाओं की विशेषताएं

2.4 ग्रामीण संस्थाओं के विकास में संवैधानिक प्रयास

2.5 ग्रामीण संस्थाओं की समस्याएं एवं सुझाव

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 2.0 प्रस्तावना

लोकतंत्र की मूलभूत मान्यता है कि सर्वोच्च शक्ति जनता में निहित होनी चाहिए। इसलिए यह आवश्यक है कि सर्वोच्च शक्ति का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण होना चाहिए जिससे अधिकाधिक व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से शासन कार्य में भाग ले सकें। इस सम्बन्ध में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं द्वारा यह कार्य अच्छे प्रकार से किया जा सकता है क्योंकि इन संस्थाओं का प्रबन्ध नागरिकों को स्वयं करना होता है। इसी कारण इन संस्थाओं को लोकतंत्र की आधारशिला कहा जाता है, जो जनता को लोकतंत्र का पाठ पढाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्थानीय (ग्रामीण) संस्थाएं लोगों को न केवल दूसरों के लिए कार्य करना सिखाती हैं बल्कि दूसरों के साथ मिलकर कार्य करना भी सिखाती हैं। वे सामान्य जागरूकता, बुद्धिमत्ता, निर्णयात्मकता एवं सामाजिकता आदि गुणों का विकास करती हैं।

## 2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारतीय प्रशासन में ग्रामीण संस्थाओं के महत्व को जान पायेंगे।
- ग्रामीण संस्थाओं के प्रशासनिक विकास को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समझ पायेंगे।
- लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के अंतर्गत ग्रामीण संस्थाओं की संवैधानिक स्थिति से परिचित हो पायेंगे।

## 2.2 भारतीय इतिहास में ग्रामीण संस्थाएं

भारत में ग्रामीण संस्थाएं प्राचीन काल से चली आ रही हैं। भारत में ग्राम पंचायतों का इतिहास बहुत प्राचीन है और ग्राम पंचायतों को देश के रूप में जाना जाता रहा है। पंचायत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द 'पंचायतन' से हुई है। जिसका अर्थ, पाँच व्यक्तियों का समूह होता है। वैदिक काल के साहित्य में सभा और समिति का वर्णन मिलता है। सभा और समिति का कार्य भूमि का बँटवारा, सिंचाई के साधनों का प्रबन्ध, चरागाहों की देखभाल, मेले उत्सवों का आयोजन, आपसी झगडों का फैसला आदि थे। ग्राम की रक्षा एवं मालगुजारी वसूल करना भी ग्रामीणी (ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई) एवं पंचायत का कार्य था।

ग्रामीण संस्थाओं का उल्लेख, रामायण और महाभारत में मिलता है। रामायण में दो प्रकार के गाँवों का उल्लेख मिलता है- घोश और ग्राम। इनके अधिकारियों को क्रमशः घोश महत्तर एवं ग्राम महत्तर कहा जाता था। घोश का आकार अपेक्षाकृत छोटा होता था। रामायण में एक अन्य अधिकारी 'ग्रामीणी' का भी उल्लेख मिलता है। महाभारत में भी घोश और ग्राम का वर्णन देखने को मिलता है। घोश प्रायः उन क्षेत्रों को कहते थे जो कि जंगलों के पास होते थे तथा वहाँ के लोग गोप या गांवों के रखवाले होते थे। मनु द्वारा रचित मनुस्मृति के अनुसार गाँव के अधिकारी को 'ग्रामिक' कहते थे। उसका कार्य गाँव में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के साथ-साथ कर की वसूली करना था।

कोटिल्य की पुस्तक अर्थशास्त्र में मौर्यकालीन ग्रामीण शासन व्यवस्था का विस्तृत विवेचन किया गया है। अर्थशास्त्र के अनुसार शासन व्यवस्था के संचालन के लिए प्रशासन कई भागों में विभक्त होता था। सबसे छोटा ग्राम कहलाता था, इसके ऊपर क्रमशः 100 ग्रामों का समूह संग्रहण, 200 गाँवों का समूह खार्वटिक, 400 ग्रामों का समूह द्रोणमुख, 800 गाँवों का समूह स्थानीय होता था। गाँव के प्रमुख को 'ग्रामिक' कहते थे। ग्रामिक ग्राम सभा की सहायता से कार्यों का संचालन करता था जिसके सदस्य वयोवृद्ध ग्रामवासियों के द्वारा चुने जाते थे। ग्राम

सभा को काफी अधिकार प्राप्त था। वह गाँव के साधारण झगडों का निबटारा करता था। अपराधियों के ऊपर दण्ड तय करता था। गाँव के अन्य साधनों से आय एकत्र करता था। लोक कल्याणकारी कार्य जैसे पुल, सडक, तालाब आदि का कार्य भी ग्राम सभा के हाथ में था।

मौर्य काल के स्थानीय संस्थाओं की महत्वता बताते हुए विद्यालंकार ने लिखा है कि ''विशाल साम्राज्य में एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना होते हुए भी गाँव शासन को अपने विषयों में पूर्णतः स्वतंत्रता थी। नियमानुसार कार्य किये जाते थे और नियम तोड़ने वालों को दण्ड की व्यवस्था की गई थी। सभा गाँव के केन्द्र में थी। यह सामाजिक और धार्मिक विषयों पर विचार करती थी। इन आत्म-प्रसाशित गणराज्यों में जनता स्वतंत्रतापूर्वक रहती थी।''

गुप्त काल में भी शासन द्वारा ग्राम पंचायतों को पर्याप्त शक्तियां और महत्ता प्रदान की गई थी। अलतेकर ने गुप्त प्रशासन की प्रशंसा करते हुए लिखा है ''गुप्तकालीन शासन प्रणाली तथा उसकी उपलब्धियों के विषय में हमारे पास विस्तृत सामग्री है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह केन्द्र व प्रांत दोनों में अत्यंत सुव्यवस्थित थी।'' प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से गुप्त साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था। सबसे बडा विभाग प्रान्त था, जिसको देश या भुक्ति कहते थे। प्रान्तों से छोटा विभाग प्रदेश और इससे छोटा विभाग विशय होता था, जो जिले के समतुल्य था। प्रान्तीय शासन यागिक, योगपति, गोपा, उपरीक महाराज और राज्य स्थानीय कहलाते थे। विषयों के ऊपर विशपति, कुमाराभात्या या महाराजा शासन करते थे। शासन की न्यूनतम इकाई ग्राम थी। प्रत्येक ग्राम का अधिकारी ग्रामिक कहलाता था। ग्रामिक की सहायता के लिए एक समिति होती थी जिसे ग्राम सभा कहते थे। गाँव के मामलों का प्रबन्ध महत्तरों अर्थात बड़े-बुजुर्गों की सहायता से ग्राम प्रधान करता था। गाँव या वीथी कहे जाने वाले कस्बों के प्रशासन में प्रमुख स्थानीय लोगों का भी हाथ रहता था। मौर्य काल में गाँव की व्यवस्था ऊपर से की जाती थी जबकि गुप्त काल में नीचे से की जाती थी। उस समय गाँव में बहुत सत्ता प्राप्त कर ली थी और विकेन्द्रीकरण व्यवस्था मजबूत स्थिति में थी।

राजपूत कालीन समय में ग्राम, प्रशासन की छोटी इकाई थी। ग्राम का प्रबन्ध ग्राम सभाओं द्वारा सम्पन्न किया जाता था। ग्राम अपने क्षेत्र में शासन का समस्त कार्य देखती थी। शासन सुचारू रूप से चल सके इसके लिए अनेक समितियों का गठन किया गया था जिन्हें अनेक कार्य सौंपे जाते थे।

सल्तनत कालीन प्रशासन में राज्य की सबसे छोटी ईकाई ग्राम थी। ग्राम का प्रबन्धन लम्बरदारों, पटवारियों और चौकीदारों द्वारा किया जाता था। गाँवों को अपने प्रबन्धन के मामले में पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त थी। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि सल्तनतकालीन प्रशासन मूलतः सैनिक था और सुल्तान स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश थे।

मुगलकालीन भारतीय इतिहास के पन्नों को पलटने से यह प्रतीत होता है कि इस काल में भी देश में किसी न किसी रूप में ग्रामीण संस्थाएं विद्यमान थी। ग्रामीण स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र में इस काल में गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई थी जिसका प्रबन्ध  पंचायतें करती थी। पंचायतें गावों में सफाई, सुरक्षा, शिक्षा, सिंचाई, विवादों का फैसला आदि कार्य करती थी। गाँवों के चार प्रमुख अधिकारी होते थे- मुकददम, पटवारी, चौधरी तथा चौकीदार। इसमें मुकददम गाँव की देखभाल करता था। पटवारी राजस्व (लगान) वसूली का कार्य करता था। चौधरी पंचायतों की सहायता से झगडों को सुलझाता था और चौकीदार गाँव की सुरक्षा का दायित्व निर्वहन करता था। इस काल में स्थानीय संस्थाएं प्राचीन भारत की स्थानीय संस्थाओं के समान स्वतंत्र और लोकतांत्रिक नहीं थी।

गाँव की स्वायत्तता और स्थानीय प्रशासनिक संस्थाओं का अस्तित्व 18वीं शताब्दी के मध्य में आते-आते समाप्त हो गई। इस सम्बन्ध में प्रमुख कारण प्रारम्भ में अंग्रेज शासकों ने पंचायत को नकारा, क्योंकि उनको इन संस्थाओं के महत्तव का ज्ञान नहीं था, किन्तु कालान्तर में पंचायत राज संस्थाओं के महत्त्व की अनुभूति होने पर उन्होंने स्वयं इन संस्थाओं को शक्तिशाली बनाने के प्रयास किय। इन प्रयासों में वायसराय लार्ड रिपिन का वर्ष 1882 का प्रस्ताव उल्लेखनीय है जिनके द्वारा ब्रिटिश शासन के अधीन समस्त गाँवों तक कानूनी रूप से स्थानीय स्वशासन का विस्तार किया गया।

इसके पश्चात वर्ष 1907 में 'शाही आयोग' ने भी ग्रामीण प्रशासन एवं प्रबन्ध करने के लिए पंचायत संस्थाओं को आवश्यक बताया, लेकिन आयोग के प्रस्ताव क्रियान्वित नहीं हो सके। भारत में ग्रामीण संस्थाओं को सुदृढ करने की दिशा में एक अन्य महत्वपूर्ण पहल वर्ष 1919 में मॉण्टेग्यू चैम्सफोर्ड सुधार के अन्तर्गत की गई थी। इन सुधारों के बाद स्थानीय स्वशासन में एक नया युग शुरू हुआ। द्वैध-शासन व्यवस्था के अंतर्गत इस विषय को हस्तांतरित विषय रखा गया और इसके प्रबन्ध का दायित्व जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों पर आ गया किंतु वित्त विभाग पर सरकारी अधिकारियों के आधिपत्य एवं निर्वाचित प्रतिनिधियों को अपने विभाग में भी पूर्ण स्वतंत्रता के अभाव तथा अन्य अनेक कारणों से इनका कोई विशेष महत्व नहीं रहा।

वर्ष 1935 के भारत सरकार अधिनियम के पारित होने के पश्चात प्रांतीय स्वायत्ता का श्रीगणेश हुआ। इसके फलस्वरूप देश में स्वतंत्रता की दिशा में एक शक्तिशाली पहल हुई, जिसका स्थानीय संस्थाओं पर सकारात्मक प्रभाव पडा। जिला बोर्डों के कार्यक्षेत्र में विस्तार के साथ-साथ जिलाधीश को इसका कार्याधिकारी नियुक्त किया गया। फलस्वरूप जिला बोर्ड एक परामर्शदात्री संस्था न रहकर प्रमुख संस्था बन गए। भारत शासन अधिनियम 1935 के अंतर्गत वर्ष 1937 में लोकप्रिय मंत्रिमंडलों का निर्माण हुआ और उन्होंने स्थानीय संस्थाओं को जनता

का वास्तविक प्रतिनिधि बनाने के लिए विधि निर्माण का कार्य हाथ में लिया किन्तु दुर्भाग्यवश 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ होने से स्थानीय संस्थाओं को लोकप्रिय बनाने का मंत्रियों का प्रारम्भिक उत्साह ठंडा पड़ गया। मंत्रियों ने विरोध के प्रतीकस्वरूप त्यागपत्र दे दिए और राज्यों में गवर्नरों का पूर्णतया एक व्यक्ति का शासन स्थापित हो गया। स्थानीय शासन के इतिहास में यह वर्ष 1939-1946 तक की अवधि 'अंधकार का काल' (डार्क पीरियड) माना जाता है। ब्रिटिश भारत प्राधिकारियों द्वारा इस काल के दौरान ग्राम पंचायतें पूर्णतया उपेक्षित या तिरस्कृत की गई।

ब्रिटिश शासन काल में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अनेक उतार-चढाव के बावजूद पंचायती राज का विचार ग्राम स्वराज्य की अवधारणा के रूप में महत्वपूर्ण आयाम के रूप में बना रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में ग्रामीण संस्थाएं यानि पंचायती राज व्यवस्थाओं के महत्व को गंभीरता से लिया गया। गाँधी जी मानते थे कि ''भारत की आत्मा गाँवों में बसती है यदि गाँव नष्ट होते हैं तो भारत भी नष्ट हो जाएगा।'' इसी संकल्पना ने स्वतंत्रता के पश्चात गाँव की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नये युग का सूत्रपात किया। भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में इसकी स्पष्ट झलक दिखायी देती है। हमारे संविधान निर्माताओं ने ग्रामीण शासन व्यवस्था को सशक्त बनाने के लिए विशेष ध्यान दिया। इसका अंदाजा भारतीय संविधान के भाग- 4 जिसमें नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से अनुच्छेद- 40 में पंचायतों के गठन के संदर्भ में व्यवस्था की गई कि ''राज्य ग्राम पंचायतो का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उसको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन के इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो'' से लगाया जा सकता है।

भारत एक लोकतंत्र देश है और लोकतंत्र में जनसहभागिता और विकेन्द्रीकरण प्रमुख तत्व होते हैं। इसलिए लोकतांत्रिक व्यवस्था को सफल बनाने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण, राजनीतिक-प्रशासनिक सहभागिता में उत्तरोत्तर वृद्धि और इन सबके लिए स्थानीय इकाइयों को मजबूती देना आवश्यक हो जाता है। सरकार ने शुरु- शुरु में इन उद्देश्यों को अमल में लाने के लिए गाँधी जी के जन्म दिवस पर 02 अक्टूबर 1952 को 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' (सीडीपी) आरम्भ किया गया, जिसके अन्तर्गत खण्ड को इकाई मानकर खण्ड के विकास हेतु कर्मचारियों- अधिकारियों के साथ सामान्य जनता को विकास की प्रक्रिया से जोड़ने का प्रयास किया, लेकिन इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी कमी यह रही कि जनता को अधिकार नहीं दिया गया जिस कारण से यह कार्यक्रम सफल नहीं हो सका किन्तु इसका लाभ यह मिला कि नीतियों में कमियों की ओर ध्यान दिया गया। इसी कार्यक्रम की तर्ज पर 02 अक्टूबर 1953 को 'राष्ट्रीय प्रसार सेवा' का प्रारम्भ किया गया लेकिन यह कार्यक्रम भी ज्यादा न चल

सका। सरकार ने इन गलतियों से सबक लेकर वर्ष 1957 में 'बलवंत राय मेहता समिति' की स्थापना की। इस समिति के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था की नींव पड़ी। इस समिति ने सरकार के सम्मुख निम्न सिफारिशें रखी-

- पंचायती राज का ढ़ाँचा त्रिस्तरीय होगा। यह ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद।
- पंचायत पूर्ण रूप से निर्वाचित इकाइयां होनी चाहिए।
- पंचायत का अपने क्षेत्र के अंतर्गत होने वाले सभी विकास कार्यों पर नियंत्रण होना चाहिए। सरकार का कार्य केवल नियोजन, निरीक्षण और निर्देशन तक सीमित होना चाहिए।
- निकाय का गठन ग्राम पंचायतों के अप्रत्यक्ष चुनावों द्वारा पाँच साल के लिए होना चाहिए।
- निकाय के कार्यों में कृषि का सर्वांगीण विकास, स्थानीय उद्योगों का विकास जैसे कार्य सम्मिलित होने चाहिए। निकाय द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं में पेयजल, सड़क निर्माण आदि होने चाहिए। उच्च स्तर की निकाय जिला परिषद को सलाहकार की भूमिका निभानी चाहिए।

बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पंचायतों के माध्यम से असफल रहा। इसके पीछे मूल कारण रहे हैं- नौकरशाही का दबाव, स्थानीय स्तर पर क्षमता का अभाव, स्थानीय अभिजात्य वर्ग का वर्चस्व और राजनीतिक इच्छा का अभाव।

पंचायती राज व्यवस्था की कमियों को दूर करने के लिए केन्द्र सरकार ने वर्ष 1977 में 'अशोक मेहता समिति' का गठन किया गया। इस समिति ने निम्न सिफारिशें की-

- राज्य में विकेन्द्रीकरण का प्रथम स्तर जिला हो।
- जिला स्तर के नीचे मण्डल पंचायत का गठन किया जाए जिसमें करीब 15 हजार से 20 हजार जनसंख्या एवं 15 गाँव शामिल हों।
- ग्राम पंचायत और पंचायत समिति को समाप्त कर दिया जाए।
- मण्डल अध्यक्ष का चुनाव प्रत्यक्ष और जिला परिषद के अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष होना चाहिए।
- मण्डल पंचायत और परिषद का कार्यकाल चार वर्ष हो।
- विकास योजनाओं को जिला परिषद के द्वारा तैयार किया जाए।

वर्ष 1980 में सत्तारूढ कांग्रेस सरकार ने जनता सरकार द्वारा गठित अशोक मेहता समिति की सिफारिशें राजनीतिक दृष्टि से स्वीकार्य नहीं की।

पंचायती राज व्यवस्था की विभिन्न पहलुओं की जाँच-पड़ताल करने के लिए योजना आयोग द्वारा 'जी0के0वी0 राव समिति' की गठन 1985 में किया। इस समिति ने निम्न सिफारिशें प्रस्तुत की-

- योजनाएं तैयार करने, निर्णय लेने और उसे लागू करने कार्य पंचायतों को सौंपा जाए, क्योंकि वे जनता के अधिक निकट हैं।
- कार्य सम्पादन के लिए जिला परिषद की विभिन्न समितियां गठित की जाए।
- राज्य सरकार द्वारा दी जाने वाली धनराशि को निर्धारित करने का कार्य वित्त आयोग को दी जानी चाहिए, जिसकी नियुक्ति हर पाँच साल के बाद होनी चाहिए।
- जिला स्तर के नीचे पंचायत समिति या मण्डल पंचायतें गठित की जानी चाहिए और इनका गठन और संरचना जिला परिषद जैसी होनी चाहिए। प्रत्येक गाँव में ग्राम सभा हो।

केन्द्र सरकार द्वारा वर्ष 1986 में 'एल0एम0 सिंघवी समिति' का गठन किया गया। इस समिति ने पंचायती राज का भलीभाँति अध्ययन किया। समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की-

- पंचायतों को संवैधानिक दर्जा मिलना चाहिए। संविधान में एक नया अध्याय जोड़कर पंचायतों को सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
- पंचायतों के चुनाव में राजनीतिक दल शामिल नहीं होना चाहिए।

वर्ष 1988 में 'पी0के0 थुंगन समिति' का गठन पंचायती राज संस्थाओं पर विचार करने के लिए किया गया। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा कि पंचायती राज संस्थाओं को संविधान में स्थान दिया जाना चाहिए। इस समिति की सिफारिश के आधार पर पंचायती राज को संवैधानिक मान्यता प्रदान करने के लिए वर्ष 1989 में 64वां संविधान संशोधन लोकसभा में पेश किया गया जिसे लोकसभा ने पारित कर दिया लेकिन राज्य के द्वारा स्वीकार नहीं किया गया।

पंचायती राज व्यवस्था को नई दिशा देने के लिए 73वां संवैधानिक संशोधन विधेयक मील का पत्थर साबित हुई। यह विधेयक 16 सितम्बर को 1991 को लोकसभा में पेश किया गया जिसे 22 दिसम्बर 1992 को पारित कर

दिया। राज्य सभा ने भी 23 दिसम्बर 1992 को इस विधेयक को पारित कर दिया। अंतत 24 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने के बाद इसे अधिनियम का रूप दिया गया।

## 2.3 ग्रामीण संस्थाओं की विशेषताएं

ग्रामीण संस्थाओं की विशेषताओं का उल्लेख निम्नलिखित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है-

1. ग्रामीण संस्थाओं द्वारा जनता को सुविधाएं पहुँचाने का एक साधन है। इसके माध्यम से सफाई, सड़क स्वास्थ्य, जल, बिजली आदि समस्याएं हल करके जनता को सुविधाएं पहुँचाना है। जनता के लिए भी यह सुविधाजनक होता है कि उसकी समस्याएं केन्द्रीय शासन की प्रतिनिधियों द्वारा हल न की जाकर स्थानीय शासन द्वारा हल की जाएं।
2. ग्रामीण संस्थाओं के माध्यम से कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। स्थानीय शासन के क्षेत्र में रहने वाली जनता स्थानीय कार्यों में रूचि लेने लगती है। वह कार्यों में भाग लेने के अवसर का उपयोग करती है। वह स्थानीय समस्याओं और आवश्यकताओं को सबसे अच्छी तरह समझती है और यह जानती है कि स्थानीय समस्याओं को किस प्रकार हल किया जा सकता है।
3. ग्रामीण संस्थाएं सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर विशेष बल देती है। यदि स्थानीय सरकार की व्यवस्था न की जाए तो केन्द्रीय सरकार पर कार्यभार इतना अधिक बढ़ जाएगा कि उसे कुशलता और सफलता के साथ सम्पन्न नहीं कर सकेगी। एक स्थानीय संस्था को जब सब कुछ निश्चित और सीमित कार्य दिए जाते हैं तो वह पूरी शक्ति इस बात में लगा देती हे कि उनको पूरी कुशलता के साथ सम्पन्न करे। विकेन्द्रीकरण के कारण स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यों के द्वारा केन्द्र और राज्य सरकार के कल्याणकारी कार्यों को हल्का करके सहायता प्रदान करती है।
4. स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से शासन कला में प्रशिक्षित होने का अवसर मिलता है। इसके अंतर्गत निर्वाचित सदस्य यह सीखते हैं कि एक निर्वाचित संस्था किस प्रकार कार्य करती है। प्रशासन किस प्रकार चलता है और कार्यालय का संगठन किस प्रकार कार्य करता है।
5. ग्रामीण संस्थाओं से नागरिक गुणों का प्रशिक्षण होता है तथा अधिकार और कर्तव्यों को ठीक प्राकर समझा जा सकता है। जनता यह अनुभव करती है कि उसे जो सुविधाएं मिली हैं, वे उसके द्वारा किए गये कर्तव्यों तथा दिए गए करों का परिणाम है।

6. स्थानीय शासन जनता में जनभावना और उदार दृष्टिकोण का निर्माण भी करती है। जनता यह समझने लगती है कि व्यक्तिगत लाभ सार्वजनिक हित के अधीन होना चाहिए। जनता यह भी जानने लगती है कि सबकी भलाई में ही उसकी भलाई है।
7. राजनीतिक शिक्षा और शासन कला में प्रशिक्षण का अवसर देकर स्थानीय शासन व्यक्ति के व्यक्तित्व का साधन बन जाता है। यह ऐसे अवसर देता है जिससे व्यक्ति की पहलकदमी और जनता की सेवा करने की क्षमता का विकास होता है।

## 2.4 ग्रामीण संस्थाओं के विकास में संवैधानिक प्रयास

लम्बे समय तक पंचायत (ग्रामीण संस्था) को संवैधानिक पहचान या दर्जा नहीं मिला था। वे राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में शामिल थी, जिनको सिर्फ एक सलाहकार का दर्जा प्राप्त था। कोई भी राज्य सरकार इन नियमों के अनुसार कार्य करने को बाध्य नहीं थी। इस लचीलेपन से पंचायती राज संस्था के किसी भी अधिकार और शक्ति का उल्लंघन किया जा सकता था। ऐसे में यह महसूस किया गया कि इन संस्थाओं को संवैधानिक अधिकार और दर्जा दिलाने के लिए संवैधानिक सुरक्षा अनिवार्य है। इसीलिए भारत सरकार द्वारा 24 अप्रैल, 1993 को संवैधानिक (73वां संशोधन) अधिनियम, 1992 लागू किया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भाग 'भाग-9' जोड दिया गया जिसका शीर्षक 'पंचायत' रखा गया है। इसके द्वारा अनुच्छेद- 243 में पंचायतों से सम्बन्धित प्रावधान किए गए हैं।

73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्न हैं-

1. सभी राज्यों में 20 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों को छोडकर, एक त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था होगी जिसके ऊपरी स्तर पर जिला पंचायत और निचले स्तर पर ग्राम पंचायत होगी तथा इन स्तरों के बीच एक मध्यवर्ती पंचायत स्तर होगी। 20 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों में मध्यवर्ती पंचायत नहीं होगी। (अनुच्छेद- 243 बी-1)
2. अधिसूचित ग्राम की एक ग्राम सभा होगी, जिसमें वह सभी लोग शामिल होंगे जिनके नाम उस ग्राम की मतदाता सूची में सम्मिलित हों। ग्राम सभा राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्धारित शक्तियों का प्रयोग तथा कार्यों को सम्पन्न करेगी। (अनुच्छेद- 243 ए)

3. राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि के प्रावधानों के अनुरूप पंचायतों का गठन किया जाएगा। प्रत्येक पंचायत के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रक्रिया से किया जाएगा। पंचायत के सदस्यों की संख्या का निर्धारण जनसंख्या के अनुपात में किया जाएगा। (अनुच्छेद- 243 सी-1)
4. राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा ग्राम पंचायतों के प्रमुखों का मध्यवर्ती पंचायतों में तथा मध्यवर्ती पंचायतों के न होने पर जिला स्तरीय पंचायतों में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करेगा। इसी प्रकार मध्यवर्ती पंचायतों के प्रमुखों का जिला स्तरीय पंचायतों में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करेगा। (अनुच्छेद- 243 सी- 3)
5. ग्राम स्तरीय पंचायतों के प्रमुख (प्रधान) को राज्य के कानून के अनुसार चुना जाएगा। मध्यवर्ती व जिला पंचायतों के अध्यक्ष (प्रमुख) इन पंचायतों के सदस्यों द्वारा अपने में से चुने जाएंगे। (अनुच्छेद- 243-सी)
6. प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लिए सीटें आरक्षित होंगी। यह सीटें पंचायत में उनकी जनसंख्या के अनुपात में निर्धारित की जाएंगी। यह सीटें एक पंचायत में चक्रानुक्रम से विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में आरक्षित की जाएंगी। (अनुच्छेद- 243डी-1)
7. अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित स्थानों में कम से कम एक तिहाई(1/3) स्थान अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।(अनुच्छेद- 243 डी-2)
8. प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले कुल स्थानों में से न्यूनतम एक-तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए जाएंगें (जिनमें अनु0 जाति व अनु0 जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित स्थान भी सम्मिलिति हैं।) (अनुच्छेद- 243डी- 3)
9. प्रत्येक पंचायत की अवधि पाँच वर्ष होगी। इसकी अवधि की समाप्ति के पूर्व ही नए चुनाव कराए जाएंगे। यदि पंचायत को पाँच वर्ष से पूर्व भंग कर दिया जाता है तो 06 माह की अवधि समाप्त होने के पूर्व चुनाव कराए जाएंगे। (अनुच्छेद- 243 ई)
10. राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियां प्रदान करेंगें जो कि उन्हें स्वशासन की संस्था के रूप में कार्यरत बना सके तथा जिनसे पंचायतें आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार कर सकें एवं संविधान की 11वीं अनुसूची में समाहित विषयों सहित आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाओं को क्रियान्वित कर सके। (अनुच्छेद- 243 जी)

**11.** पंचायतें ऐसे कर, शुल्क, पथकर व फीसें लगाने व संग्रहित करने का अधिकार रखेंगी, जिन्हें लगाने का अधिकार राज्य विधान-मण्डल उन्हें प्रदान करें। सम्बन्धित राज्य सरकारें राज्य की आकस्मिक निधि से पंचायतों को पर्याप्त सहायता व अनुदान देने की व्यवस्था करेंगी। (अनुच्छेद- 243 एच)

**12.** राज्यों के राज्यपाल इस अधिनियम के लागू होने के एक वर्ष के अन्दर तथा इसके बाद प्रत्येक पाँच वर्ष पश्चात पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने और समुचित सिफारिशें करने के लिए वित आयोग का गठन करेंगे। राज्यपाल इन सिफारिशों को इस व्याख्या के साथ लागू करने के लिए राज्य विधानमण्डल में रखवाएगा। (अनुच्छेद- 243 आई)

**13.** पंचायतों को राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्धारित ढंग से अपने आय-व्यय का लेखा-जोखा रखना होगा, जिसकी संपरीक्षा सरकार द्वारा करवाई जा सकेगी। (अनुच्छेद- 243 जे)

**14.** पंचायतों के मतदाताओं की नामावलियाँ बनाने तथा पंचायत चुनाव संचालित करने के लिए प्रत्येक राज्य में एक निर्वाचन आयोग स्थापित किया जाएगा। जिसकी अध्यक्षता एक राज्य निर्वाचन आयुक्त करेगा। (अनुच्छेद- 243के)

**15.** इस अधिनियम द्वारा पंचायतों का क्षेत्राधिकार बताने वाली 11वीं अनुसूची संविधान में जोड़ी गई है, जिसमें 29 विषय सम्मिलित किए गये हैं। (अनुच्छेद- 243जी)

इन विषयों का विवरण निम्न है- कृषि प्रसार सहित कृषि; भू-सुधार एवं मृदा संरक्षण; लघु सिंचाई, जल प्रबन्ध न एवं जल संभर विकास; पशुपालन, दुग्धशाला एवं मुर्गी पालन; मत्स्य पालन; सामाजिक वानिकी एवं फार्म वानिकी; लघुवन उत्पाद; खाद्य संसाधन उपयोगों सहित लघु उद्योग; खादी, ग्राम एवं कुटीर उद्योग; ग्रामीण विकास; पेयजल; ईंधन; सडकें, पुलिया, सेतु, घाट, जल मार्ग एवं संचार के अन्य साधन; विद्युत वितरण सहित ग्रामीण विद्युतीकरण; ऊर्जा के गैर-परम्परागत स्रोत; गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम; प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों सहित शिक्षा; तकनीकी प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा; प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा; पुस्तकालय, बाजार एवं मेले; सांस्कृतिक क्रिया-कलाप; प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र एवं उपचार केन्द्रों सहित स्वास्थ्य एवं स्वच्छता; परिवार कल्याण; महिला एवं बाल विकास; सामाजिक कल्याण; कमजोर वर्गों का कल्याण, विशेषकर अनुसूचित जाति कल्याण; जल वितरण व्यवस्था; सामुदायिक सम्पत्ति का अनुरक्षण।

इस अधिनियम के द्वारा संविधान की धारा- 280 को भी इस रूप में संशोधित किया गया कि राज्यों के वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार पंचायतों हेतु राज्य की संचित-निधि में व्यवस्था की जा सके।

इस प्रकार 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा मृतप्रायः पंचायतों को जीवन प्रदान किया गया है। संवैधानिक दर्जा दिए जाने से उनका अस्तित्व सुरक्षित हो गया। इस अधिनियम की सबसे बडी उपलब्धि यह है कि इससे पंचायतों के गठन में एकरूपता आई है और इनके निर्वाचन नियमिति होने के साथ-साथ लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को एक नवीन आयाम भी मिल रहा है।

## 2.5 ग्रामीण संस्थाओं की समस्याएं एवं सुझाव

यदि हम लोकतंत्र के सिद्धान्तों के लिए समर्पित हैं, तो स्थानीय स्तर पर स्वशासी संस्थाएं आवश्यक हैं। भारत में पंचायती राज संस्थाएं लोकतंत्र की बुनियाद हैं। इसकी सफलता ही लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करेगी। इसके अंतर्गत अधिकाधिक लोग सत्ता में भागीदारी कर सकेंगे, जिससे समाज का सर्वांगीण विकास होने के साथ-साथ लोकतांत्रिक ताने-बाने को भी नया आयामदिया जा सकेगा। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि आजादी के वर्तमान परिवेश में ग्रामीण संस्थाओं को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। अतः आवश्यक है कि कुछ ऐसे सुझाव दिये जायें जिससे इस व्यवस्था से सकारात्मक परिणाम मिल सकें और सच्चाई के आइने में स्थानीय स्तर पर जनता का शासन स्थापित हो सके। इस दृष्टि से निम्नलिखित बिन्दु दृष्टिगोचर होते हैं-

1. पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि को अपने अधिकारों, शक्तियों और दायित्व की पूरी जानकारी नहीं है। इन प्रतिनिधियों को समुचित रूप में जानकारी देने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिए सरकारी सूचना माध्यम की महत्तवपूर्ण भूमिका हो सकती है।
2. पंचायती राज व्यवस्था की 11वीं अनुसूची में वर्णित 29 विषयों के सन्दर्भ में ग्राम, ब्लॉक (क्षेत्र) एवं जिला पंचायतों के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से सीमांकित नहीं किया गया है। अतः पंचायतों के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से सीमांकित कर इनकी जानकारी उपलब्ध कराई जानी चाहिए।
3. पंचायती राज व्यवस्था के काम-काज के बारे में गांव के लोगों को जानकारी नहीं है। अतः इसके लिए संचार सुविधाओं का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए, जिससे लोगों में जागृति उत्पन्न हो, ताकि विकास का लाभ गांस के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति तक पहुँच सके।
4. पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत निर्वाचित महिलाओं के स्थान पर पति, भाई या अन्य रिश्तेदार बैठक में भाग लेते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को शिक्षित किया जाए, जिससे वे अपने अधिकारों को समझें और अपने दायित्वों का निर्वाह ईमानदारी पूर्वक कर सकें।

**5.** यह भी देखने में आया है कि पंचायत की बैठक नियमित रूप से नहीं हो पाती हैं। पंचायत अर्थात ग्राम सभा तो तभी काम करेगी जब इसकी नियमित बैठक हो। इस समस्या से निबटने के लिए औचक निरीक्षण कर कठोर से कठोर कदम उठाए जाने चाहिए।

**6.** वित्तीय संस्थाओं की कमी पंचायती संस्थाओं की बहुत बड़ी कमजोरी है। राज्य वित्तीय आयोग होने के बावजूद पंचायत संस्थान धन के अभाव से ग्रसित रहते हैं। अतः इस समस्या से निबटने के लिए उन्हें सक्षम बनाने के लिए पंचायती सम्पत्ति का न्यायोचित प्रयोग करने का अधिकार दिया जाना चाहिए तथा समुचित प्रशासनिक वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाए।

**7.** पंचायतों के प्रति नौकरशाही का नकारात्मक रवैया एक अवरोधक का कार्य करती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को सरल और सुलभ बनाया जाना चाहिए। साथ ही इससे जुड़े अधिकारियों की प्रोन्नति तथा पुरस्कार के मापदण्ड को सुनिश्चित किया जाना चाहिए, जिससे नौकरशाहों का रवैया जनता के प्रति सहयोगात्मक हो।

**8.** भ्रष्टाचार, हिंसा और पंचायत चुनाव में धन और शक्ति के वर्चस्व ने लोकतंत्र की इस बुनियादी इकाई को बेइमानी बना दिया है। इससे लोगों की जनसहभागिता जो ग्रामीण संस्थाओं का केन्द्र बिन्दु है, गंभीर तरीके से प्रभावित होती है। इस समस्या के समाधान के लिए कठोर कानून बनाकर भ्रष्ट एवं अपराधी तत्वों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए। साथ ही साथ भ्रष्ट एवं अयोग्य प्रतिनिधियों को वापस बुलाने (Recall System) का अधिकार प्रदान किया जाए।

**9.** पंचायती राज व्यवस्था की समस्या में भारत के गाँवों का सामाजिक वातावरण भी उत्तरदायी है। ग्रामीण समाज न केवल अशिक्षित और रूढिवादी है बल्कि जाति-प्रथा में जकड़ा हुआ है। परिणामतः लोगों में अवसरों और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव देखने को मिलता है। इसके लिए जन-जागृति कार्यक्रम चलाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र में जनसभा, संगोष्ठी, प्रदर्शनी, नुक्कड नाटक, आकाशवाणी कार्यक्रम, दूरदर्शन कार्यक्रम आदि किया जाना उल्लेखनीय पहल सिद्ध हो सकता है।

पंचायती राज व्यवस्था में अनेक खामियों के बावजूद इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। पंचायत के चुनावों ने समाज में राजनीतिक चेतना उत्पन्न की है और राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि भी हुई है। चूँकि भारत एक लोकतांत्रिक देश है और लोकतंत्र में जनसहभागिता और विकेन्द्रीकरण प्रमुख तत्व होते हैं। इसलिए लोकतांत्रिक

व्यवस्था को सफल बनाने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण, राजनीतिक-प्रशासनिक सहभागिता में उत्तरोत्तर वृद्धि और इन सब के लिए स्थानीय इकाइयों को मजबूती देना आवश्यक है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. भारत के किस काल-खण्ड में 'सभा' और 'समिति' का वर्णन मिलता है?
2. रामायण में कितने प्रकार के गांवों का उल्लेख मिलता है?
3. मनुस्मृति के अनुसार गांव के अधिकारी को क्या कहा जाता था?
4. किस अंग्रेज वायसराय के समय भारत के सभी गांवों तक कानूनी रूप से स्थानीय स्वशासन का विस्तार किया गया?
5. भारत में ग्रामीण संस्थाओं को सुदृण करने की दिशा में महत्वपूर्ण पहल कब की गयी?
6. स्थानीय स्वशासन के इतिहास में 'अंधकार युग' कब से कब तक माना जाता है?
7. यह कथन किसका है? कि ''भारत की आत्मा गांवों में बसती है।''
8. भारत में 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' की शुरूआत कब की गयी?
9. किस समिति ने अपनी शिफारिश में पंचायती राज संस्थाओं के त्रि-स्तरीय व्यवस्था का सुझाव दिया?
10. संविधान के किस अनुच्छेद में पंचायतों से सम्बन्धित प्रावधान किए गये हैं?

## 2.6 सारांश

सन प्रणाली का सर्वश्रेष्ठ रूप यानी लोकतंत्र का ग्रासरूट अर्थात जमीनी स्तर पर स्थापना ग्रामीण संस्थाएं (पंचायती राज व्यवस्था) के माध्यम से ही हुई है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का प्रतीक पंचायती राज संस्थाओं ने निर्धन, निरक्षर, असंगठित और उपेक्षित ग्रामीण जनता की आवाज व जुबान दोनों प्रदान की हैं। आरक्षण की व्यवस्था के चलते महिलाएं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े-वर्ग के व्यक्तियों का राजनीतिक सशक्तीकरण हुआ है। पंचायतों को सशक्त बनाने के लिए भारत सरकार ने 73वां संवैधानिक संशोधन किया। पंचायती राज संस्थाओं के त्रिस्तरीय ढ़ाँचे को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया और अधिक अधिकार दिए गए। निःसंदेह रूप से इस संशोधन के बाद पंचायती राज संस्थाएं काफी सशक्त हुई है। हमें आशा की जानी चाहिए की आने वाले दिनों में पंचायती राज संस्थाएं लोगों की आकांक्षाओं और विश्वास को पूरा कर पाएंगी, जिससे सही मायनों में ग्राम स्वराज्य की अवधारणा फलीभूत होंगी।

## 2.7 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण- एक स्थान पर केन्द्रीत ना होना या अलग-अलग स्थान, जनसहभागिता- सभी लोगों की भागीदारी, पहल- शुरूआत, न्यायोचित- न्याय की दृष्टि से सही, अवरोध- रूकावट, रूढिवादी- पुरानी मान्यताओं को मानने वाला या परिवर्तन को स्वीकार ना करने वाला, सुदृण- सुधार, उत्तरोत्तर वृद्धि- लगातार बढना, सशक्तिकरण- मजबुत बनाना

## 2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** वैदिक काल, **2.** घोष और ग्राम, **3.** ग्रामीक, **4.** लार्ड रिपन, **5.** 1919 में माण्टेग्यू चैम्सफोर्ड सुधार के अन्तर्गत, **6.** 1939-1946 तक, **7.** महात्मा गांधी, **8.** 02 अक्टुबर 1952, **9.** बलवंत राय मेहता समिति, **10.** अनुच्छेद-243

## 2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ए0एस0 अलतेकर "प्राचीन भारतीय शासन पद्धतियां", भारतीय भंडार, इलाहाबाद, 1948
2. ए0आर0 देसाई, ''रूरल सोसियोलॉजी इन इण्डिया'' एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, 1978
3. सत्यकेतु विद्याधर, ''प्राचीन भारत की शासन संस्थाएं एवं राजनीतिक विचार'', मंसूरी, 1975
4. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, संपादन पौली, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1923
5. एस0आर0 माहेश्वरी ''भारत में स्थानीय शासन'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2012

## 2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सत्यकेतु विद्याधर, ''प्राचीन भारत की शासन संस्थाएं एवं राजनीतिक विचार'', मसूरी, 1975
2. एस0आर0 माहेश्वरी, ''भारत में स्थानीय शासन'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2012

## 2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय इतिहास में ग्रामीण संस्थाओं के विकास पर प्रकाश डालें।
2. ग्रामीण संस्थाओं की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. 73वें संवैधानिक संशोधन के माध्यम से ग्रामीण संस्थाओं (पंचायती राज व्यवस्था) की भूमिका को बताएं।

# इकाई- 3 सामुदायिक विकास कार्यक्रम

**इकाई की संरचना**

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पृष्ठभूमि

3.3 सामुदायिक विकास का अर्थ एवं परिभाषाएं

3.4 सामुदायिक विकास कार्यक्रम की मुख्य विशेषताएं

3.5 सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कार्यकलाप

3.6 जनसहभागिता की भूमिका

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

## 3.0 प्रस्तावना

ग्रामीण भारत में निर्धनता, पिछड़ापन, अशिक्षा, मानव शक्ति के विकास में मुख्य रूप से बांधक है। स्वतंत्रता के पश्चात देश के नीति निर्माताओं का ध्यान चहुँमुखी विकास के लिए गाँवों की ओर गया। यहाँ की कृषि अत्यन्त पिछड़ी हुई और प्रति उत्पादन का औसत भी अन्य देशों की तुलना में कम रहा है। लोगों को रोजगार सम्बन्धी सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हैं और कौशल आधारित रोजगार की आवश्यकता है; जिससे लोग आत्म निर्भर हो सकें।

ग्रामीण जनता के रहन-सहन के स्तर में बहुमुखी सुधार करने का प्रयत्न सामुदायिक विकास कार्यक्रम है। इसके अंतर्गत 'जियो और जीने दो' तथा प्रत्येक को अपनी क्षमता के अनुसार विकसित होने का पूरा अवसर मिले; यह इस व्यवस्था का नैतिक समावेश है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम इस रूप में हो कि स्थानीय क्षेत्रों में समाज कल्याण एवं विकास का प्रथम केन्द्र बन सके। इस लक्ष्य को अमली जामा पहनाने के लिए अनेक कार्य निरूपित

किए गये। इसमें मुख्य थे- जनता के मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन करना, गांव के उत्तरदायी एवं क्रियाशील नेतृत्व का विकास करना, गांव को आत्मनिर्भर बनाना, कृषि उत्पादन में वृद्धि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था, स्वास्थ, संचार तथा शिक्षा को उन्नत बनाना आदि। इन कार्यों को फलीभूत करने के लिए ही सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पहल की गई।

## 3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- मानव विकास की अवधारणा में सामुदायिक विकास कार्यक्रम को समझ पायेंगे।
- जनसहयोग के माध्यम से भारतीय समाज के विकास के सम्बन्ध में पायेंगे।
- अधिकतम लोगों के अधिकतम कल्याण की प्रक्रिया को जान पायेंगे।

## 3.2 सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पृष्ठभूमि

'नीति निर्देशक सिद्धान्तों' के उद्देश्य के अंतर्गत नवीन सामाजिक व्यवस्था करने हेतु साधनों की खोज आरम्भ हुई। वर्ष 1949 में वित्त आयोग ने सम्पूर्ण देश के लिए राष्ट्रीय प्रसार सेवा आरम्भ करने की अनुशंसा की थी। योजना आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में सुरक्षित एकीकृत विकास के लिए ग्रामीण प्रसार सेवा की स्थापना का सुझाव दिया था। दोनों संकल्पनाएं सामुदायिक विकास और ग्रामीण प्रसार सेवा को एक इकाई मानकर व्याख्या की गई थी। इस प्रकार 02 अक्टूबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ।

पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में वस्तुतः आगामी पाँच वर्षों में संपूर्ण देश में 05 सौ सामुदायिक केन्द्र स्थापित करने की कल्पना की गई थी। योजना आयोग ने कहा था, ''सामुदायिक विकास केन्द्र को इस रूप में विकसित करना सरल होगा कि वह ग्रामीण तथा नगरीय दोनों ही क्षेत्रों के समाज कल्याण कार्यों के समन्वित विकास का बीज केन्द्र सिद्ध हो सके।'' किन्तु वास्तविक रूप में कार्यक्रम का शुभारम्भ तभी किया जा सका, जब किसी संस्थान ने उसे सार्वजनिक रूप से उसे मान्यता दे दी और संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने उसके व्यय को वहन करने की स्वीकृति दे दी।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम सरकार द्वारा संचालित था। आरम्भ में कार्यक्रम के निर्वहन का दायित्व योजना आयोग में स्थापित नई इकाई सामुदायिक परियोजना प्रशासन को सौंपा गया था, किन्तु 1956 में इस इकाई का एक स्वतंत्र मंत्रालय सामुदायिक विकास मंत्रालय को मान्यता दी गई। वर्ष 1966 में इस मंत्रालय का कृषि एवं

खाद्य मंत्रालय में विलय कर इसका नाम खाद्य, कृषि सामुदायिक विकास और सहयोग रखा गया। वर्ष 1974 के बाद सहयोग को कृषि मंत्रालय नवगठित औद्योगिकी और सहयोग का हिस्सा बना दिया गया। सामुदायिक विकास विभाग का प्रमुख कार्य कार्यक्रम सम्बन्धी नीतियों और खण्ड स्तर पर योजनाओं का निर्माण करना है। राज्य सरकार पर इस कार्यक्रम को लागू करने का दायित्व है। जिला स्तर पर जिला परिषद, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति, ग्राम स्तर पर पंचायत इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी है। राज्यों ने जिलाधीश को विकास कार्यक्रम को पूर्ण करने का उत्तरदायित्व सौंपा। खण्ड विकास अधिकारी और ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता दोनों इस कार्यक्रम की नवीनता हैं। ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता जो ग्राम सेवक के नाम से प्रसिद्ध हुए, सामुदायिक विकास की प्रशासनिक सोपान की अंतिम कड़ी है।

वर्ष 1957 में भारत सरकार ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम में सुधार लाने हेतु 'बलवंत राय मेहता समिति' की स्थापना की गई। इस समिति ने निम्न सिफारिशें प्रस्तुत की-

1. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की शुरूआत की जानी चाहिए।
2. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित द्विस्तरीय प्रणाली के स्थान पर त्रिस्तरीय राज प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, मध्य स्तर पर पंचायत समिति और शीर्ष स्तर पर जिला स्तर पर जिला स्तर पर जिला परिषद की स्थापना की जानी चाहिए।
3. निर्वाचित स्थानीय निकायों की स्थापना करनी चाहिए और इन संस्थानों को प्रशासन की वास्तविक शक्तियां और उत्तरदायित्व प्रदान करना चाहिए।
4. स्थानीय निकायों को पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराए जाएं।
5. योजना द्वारा बनाए गए समस्त सामाजिक-आर्थिक विकास कार्यक्रम स्थानीय संस्थाओं द्वारा चलाए जाने चाहिए।
6. एक ऐसी व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए जिससे शक्तियों और उत्तरदायित्वों का विकेन्द्रीकरण किया जा सके।

इस प्रकार सामुदायिक विकास कार्यक्रम की मूल भावना यह रही है कि इन स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय लोग ना केवल नीति का ही निर्धारण करें, बल्कि उसके क्रियान्वयन तथा प्रशासन का नियंत्रण एवं मार्गदर्शन भी करें।

वर्ष 1969 तक देश के समस्त ग्रामीण क्षेत्रों में यह कार्यक्रम फैल गया। ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वाधिक गरीब परिवारों का जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए और उन्हें निर्धनता रेखा से ऊपर उठाने के उद्देश्य से वर्ष 1978-79 में "समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम'' नामक एक नवीन कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इस प्रकार सामुदायिक विकास कार्यक्रम समन्वित विकास कार्यक्रम का एक अंग बन चुका है।

## 3.3 सामुदायिक विकास का अर्थ एवं परिभाषाएं

सामुदायिक विकास का अर्थ है कि संपूर्ण समुदाय का विकास करना और उसे आत्मनिर्भर बनाना। सामुदायिक विकास एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा ग्रामीण समुदाय के लोग अपने सर्वांगीण विकास के लिए सरकार के साथ सहयोग करते हैं। सामुदायिक विकास को ग्रामीण जनता का सामूहित प्रयत्न माना गया है। इसलिए इसके क्रियान्वयन में स्वयं समुदाय के लोगों की सहभागिता पर बल दिया गया है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम को अनेक विद्वानों ने परिभाषित किया है जो निम्न है-

एस0आर0 देसाई के अनुसार, ''सामुदायिक विकास कार्यक्रम वह पद्धति है जिसके द्वारा पंचवर्षीय योजना गाँव के सामाजिक और आर्थिक जीवन का स्थानान्तरण करने की एक प्रक्रिया प्रारम्भ करना चाहती है।"

के0सी0 टेलर के अनुसार, ''सामुदायिक योजना वह प्रणाली है जिसके द्वारा व्यक्ति, जो स्थानीय गाँवों में रहते हैं, अपनी आर्थिक एवं सामाजिक दशाओं को उत्पन्न करने में सहायता देने के लिए प्रवृत्त होते हैं तथा भौतिक उन्नति के विकास में प्रभावशाली कार्यक्रम समूह बनाते हैं।"

आल्विन लैकी के शब्दों में, ''सामुदायिक विकास ऐसे व्यक्तियों की योग्यताओं और गुणों को प्रस्तुत करता है जो एक सामान्य क्षेत्र के निवासी हों और पारस्परिक निर्भरता का सम्बन्ध रखते हैं।"

## 3.4 सामुदायिक विकास कार्यक्रम की मुख्य विशेषताएं

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की मुख्य विशेषताऐं निम्नांकित हैं-

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामवासियों की सभी समस्याओं का हल करने पर आधारित है। व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताएं रोटी, कपड़ा और मकान हैं। उनमें गुणात्मक परिवर्तन लाना है, जिससे व्यक्ति अपना सर्वांगीण विकास कर सकें।
2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम जनता के आर्थिक पुनरुत्थान पर विशेष बल देता है। यह कार्यक्रम जनता के आर्थिक जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास करता है। कृषि के साथ-साथ कुटीर उद्योगों में व्यापक

सुधार कर जनता को इस लायक बनाता है ताकि व्यक्ति अपनी दैनिक न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

3. सामुदायिक विकास कार्यक्रम का स्वरूप अवयवी है। यह कार्यक्रम इस बात पर विश्वास करता है कि कोई योजना जिस क्षेत्र में वह शुरू की गयी है, उसमें अपनी जड़ें मजबूती से जमा सके और अपने विकास के लिए बाहरी सहायता पर कम से कम निर्भर हो।
4. सामुदायिक विकास कार्यक्रम इस बात पर विशेष बल देता है कि जनता को इस प्रकार प्रोत्साहित किया जा सके जिससे कि वह इस योजना को अपना समझकर स्वीकार कर सके और बाहर से थोपी हुई चीजों को वह स्वीकार न करें चाहे इसके लिए सैद्धान्तिक पूर्णता का परित्याग ही क्यों न करना पड़े।
5. सामुदायिक विकास कार्यक्रम लोगों में अधिकाधिक श्रम करने की प्रेरणा देता है। अधिक श्रम से उत्पादन और उपयोग की प्रवृत्ति में वृद्धि होगी जिससे जनता का जीवन सुखी होगा।
6. सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत ग्राम स्तर के बहुउद्देश्यीय कार्यकर्ता को सशक्त रूप देना है। उसे कृषि, पशुपालन, उद्यानशास्त्र आदि के बारे में विशेष जानकारी होती है। यह कार्यकर्ता किसान को अधिकतम जानकारी देने का प्रयास करता है, जिससे कृषि सम्बन्धी समस्याओं का समाधान कर सकें।

वर्ष 1954 में संयुक्त राष्ट्र संघ की क्षेत्रीय सभा में 'सामुदायिक विकास योजना' की निम्नलिखित विशेषताएं बतलाई गई-

1. इस योजना की मूल भावना होनी चाहिए कि व्यक्ति स्वयं कार्य करने के लिए प्रेरित हो जिससे कि उसके रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो सके।
2. इस योजना के कार्यक्रम इस रूप में बनाए जाने चाहिए कि सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक कार्य की दशाओं में सहयोग प्राप्त हो सके। इसके साथ ही उनमें उत्तरदायित्व की भावना भी उत्पन्न हो सके।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के बारे में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था "यह कार्यक्रम वास्तविक, ठोस, रचनात्मक काम है जिससे शांतिपूर्ण ढंग से क्रान्ति आयेगी। सिर फोड़ने और चिल्लाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यह शांतिमय मौन क्रांन्ति प्रचण्ड स्वरूप की होगी। यह वास्तव में पृथ्वी को हिला देने वाली महान क्रांति होगी।''

## 3.5 सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कार्यकलाप

सामुदायिक विकास कार्यक्रम अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम कल्याण की बात करता है। यह विचार 11वीं सदी में जेरेमी बेंथम और जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा प्रकट किया गया था। भारत में यह विचार उस समय तक नहीं आया जब तक की उत्पादन में विशेषकर कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि न की जाए। सामुदायिक विकास कार्यक्रम की संरचना में कहा गया कि ‘‘सामुदायिक विकास परियोजना का उद्देश्य होगा कि वह उसके क्षेत्र में बसने वाले पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के लिए जीवित रहने के अधिकार की स्थापना करने में मार्गदर्शक का कार्य करे। कार्यक्रम की प्रारम्भिक उवस्था में प्राथमिक बल आहार पर दिया जाएगा जिसका इस लक्ष्य की प्राप्ति साधनों में प्रमुख स्थान है।’’

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कार्यकलाप निम्नलिखित हैं-

1. **कृषि तथा समवर्ती क्षेत्र-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उपलब्ध अनगुनी तथा ऊजड़ भूमि को कृषि योग्य बनाना। कृषि के लिए सिंचाई नहरों, नलकूपों, सतही कूपों, तालाबों, नदियों, झीलों, और कुण्डों से ऊपर उठाकर सिंचन के द्वारा पानी की व्यवस्था करना। बेहतर बीज की व्यवस्था। समुन्नत कृषि प्रक्रिया की व्यवस्था। पशु चिकित्सा सम्बन्धी सहायता। उन्नत कृषि उपकरणों की व्यवस्था। बाजार और ऋण-सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था। पशु-पालन के लिए प्रजनन केन्द्रों की स्थापना। अंतर्स्थलीय मत्स्य क्षेत्रों का विकास। आहार-विद्या का पुनर्संगठन। फलों और सब्जियों के उत्पादन का विकास। मृत्तिका विषयक शोध और खाद्यों की व्यवस्था। तरूपालन (वनारोपण सहित) की व्यवस्था और परिणामों के मूल्यांकन की व्यवस्था।
2. **संचार साधन-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सडकों की व्यवस्था। यांत्रिक सड़क परिवहन सेवा को प्रोत्साहन। पशु-परिवहन का विकास।
3. **शिक्षा-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राथमिक स्तर पर अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था। उच्च और माध्यमिक विद्यालयों का विकास। सामाजिक और पुस्तकालय-सेवाओं की व्यवस्था।
4. **स्वास्थ्य-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सफाई तथा लोक व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों की व्यवस्था। बीमारी के लिए चिकित्सा की व्यवस्था। प्रसूति-विद्या सम्बन्धी सेवाओं की व्यवस्था।
5. **प्रशिक्षण-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विद्यमान कारीगरों के स्तर में सुधार लाने के लिए पाठ्यक्रम। कृषकों का प्रशिक्षण। प्रसार-सहायकों का प्रशिक्षण। परिवीक्षकों का प्रशिक्षण। कारीगरों का प्रशिक्षण।

प्रबन्धकारी कर्मचारियों का प्रशिक्षण। स्वास्थ्य-कर्मचारियों का प्रशिक्षण। परियोजनाओं के लिए कार्यकारी अधिकारियों का प्रशिक्षण।

6. **रोजगार-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कुटीर उद्योगों और दस्तकारियों को मुख्य या गौण पेशों के रूप में प्रोत्साहन देना। मध्यम और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देना। नियोजित वितरण, व्यापार तथा कल्याणकारी सेवाओं के द्वारा रोजगार को प्रोत्साहन देना।
7. **आवास-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण आवास के लिए उन्नत तकनीक तथा डिजाइनों की व्यवस्था। नगरीय क्षेत्रों में रिहायशी मकानों की व्यवस्था।
8. **समाज कल्याण-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत स्थानीय प्रतिभा और संस्कृति पर आधारित सामुदायिक मनोरंजन की व्यवस्था। स्थानीय तथा अन्य प्रकार के खेल-कूद सम्बन्धी कार्यकलाप का संगठन।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम का कार्यकलाप व्यापक रूप ग्रहण किए हुए है।

## 3.6 जनसहभागिता की भूमिका

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सम्बन्ध में यह मानना था कि सामुदायिक विकास के तहत स्वयं जनता के प्रयत्नों द्वारा ग्रामीण जीवन का सामाजिक-आर्थिक रूपान्तरण करने का प्रयत्न किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट में कहा गया कि ‘‘सामुदायिक विकास उन सभी क्रियाओं को करता है जिसके द्वारा समुदाय की आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक दशा सुधारने, इन समुदायों को राष्ट्र के जीवन में एकीकृत करने तथा राष्ट्र की उन्नति में उन्हें योगदान करने योग्य बनाने में व्यक्तियों के स्वयं के प्रयास सहकारी पदाधिकारियों के प्रयत्नों से समन्वित हो जाते हैं।’’ इस प्रकार की जनसहभागिता को प्रोत्साहन देने के लिए विभिन्न स्तरों पर सलाहकार समितियां बनी थी जिनके सदस्य सामान्य नागरिक हुआ करते थे। खण्ड स्तरीय सलाहकार समिति में ग्राम समितियों के सदस्य, राज्य विधानसभा के सदस्य और संसद सदस्य, सहकारी समितियों, प्रगतिशील किसान के सम्मिलित थे। जिला स्तरीय समिति में कुछ नागरिक तथा विभिन्न तकनीकी विभागों के प्रमुख शामिल थे। लेकिन सतही स्तर पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु कुशल कार्यकर्ताओं का चयन, नहीं हो पाया। किसी भी कार्यक्रम की सफलता के लिए एक आवश्यक शर्त है- उस कार्यक्रम से लाभान्वित होने वाले लोगों में कार्यक्रम के प्रति विश्वास एवं उत्साह का होना। किन्तु ऐसा नहीं हो पाया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के उद्देश्य पर आधारित थे अर्थात ग्रामीण समाज में परम्परा के प्रभाव में कमी लाते हुए उन्हें आधुनिकता की ओर उन्मुख करना। ग्रामीण जनता के इन कार्यक्रमों को अपनी भावनाओं के प्रतिकूल समझा और

इन कार्यक्रमों से दूरी बनाये रखी। गाँवों के शिक्षित एवं प्रभावशाली लोगों ने भी परम्परावादी और अशिक्षित ग्रामीण जनता को समझाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इसके विपरीत इन योजनाओं का लाभ स्वयं लेना आरम्भ कर दिया। इससे गाँवों के एक वर्ग को तो लाभ मिला किंतु शेष जनता वहीं की वहीं रह गई।

सामुदायिक विकास की योजना अपने कार्यक्षेत्र को पूरी तरह से कवर नहीं कर पाई। यह ज्ञातव्य था कि ग्रामीण भारत अर्थात लगभग दो तिहाई प्रतिशत भारत का विकास किया जाना है किंतु सामुदायिक विकास हेतु प्रशासनिक संगठन का अधिक विस्तार नहीं किया गया। इस कारण योजना एवं कार्यक्षेत्र की सीमाओं के मध्य एक बड़ा असंतुलन उत्पन्न हो गया।

अतः यह माना जा सकता है कि सामुदायिक विकास का प्रशासन नौकरशाहों के हाथ में चला गया। इसके फलस्वरूप सामुदायिक विकास के संगठन और प्रशासन में जनता की भागीदारी को उचित स्थान नहीं दिया गया जिसके लिए अपेक्षित था। जबकि जन भागीदारी से स्थानीय समस्याओं एवं तत्सम्बन्धी समाधान का ज्ञान स्थानीय जनता को अधिक होता है। परिणाम स्वरूप सामुदायिक विकास कार्यक्रम अपने अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति में असफल रहा। रजनी कोठारी का मानना था कि ‘‘सामुदायिक विकास कार्यक्रम नौकरशाहों के द्वारा संचालित होने के कारण सफल नहीं हो सका।’’ रेनहार्ड बडिक्स का कथन था कि ‘‘सामुदायिक विकास कार्यक्रम की सबसे बड़ी कमजोरी उसका सरकारी स्वरूप और नेताओं की लदफ्फाजी थी। एक तरफ इस कार्यक्रम के आधार जनता के आगे आने की आशा करते थे दूसरी ओर उनका विश्वास था कि सरकारी कार्यवाही से ही नतीजा निकल सकता है। कार्यक्रम जनता को संचालित करना था, परंतु वे बनाए ऊपर से जाते थे।’’

**अभ्यास प्रश्न-**

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत कब की गयी?
2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम में सुधार हेतु भारत सरकार द्वारा किस समिति का गठन किया गया?

## 3.7 सारांश

भारत के विकास के लिए ग्रामीण समाज का विकास अपरिहार्य है। इस दृष्टि से ग्रामीण समाज का समग्र विकास सामुदायिक विकास है क्योंकि गाँव को एक समुदाय के रूप में माना जाता है। ग्रामीण समाज के विकास हेतु आरम्भ किए गए कार्यक्रम सामुदायिक विकास कार्यक्रम हैं। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम कल्याण से है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कई कार्य निर्धारित किए गए। उनमें प्रमुख थे- पड़त तथा बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना, उन्नत कृषि यंत्रों की व्यवस्था, कृषकों तथा कर्मचारियों आदि का प्रशिक्षण, कुटीर

उद्योगों को बढावा देना, आवास प्रबन्ध, लोक स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम की व्यवस्था आदि। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस कार्यक्रम की शुरुआत वर्ष 1952 में इसलिए की गई जिससे कि आर्थिक नियोजन एवं सामाजिक पुनरुद्धार की राष्ट्रीय योजनाओं के प्रति देश की ग्रामीण जनता में सक्रिय रूचि पैदा की जा सके। किंतु दुर्भाग्यवश ग्रामीण स्तर पर योजना के कार्यान्वयन में ग्रामीण जनता को इच्छुक पक्ष न बनाया जा सका।

इतना सब होने के बावजूद भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं रही है। भारतीय ग्रामीण समाज कई कारणों से बहुत तेजी से रूपान्तरित हो रहा है। सरकार के विभिन्न क्षेत्रों के कार्यक्रम जैसे- औद्योगीकरण, विद्युतीकरण, भूमि सुधार, भूमि सिंचन, यातायात के साधनों के विकास के द्वारा देश के कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला रहे हैं। ग्रामीण पुनर्निर्माण के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि जनता उसे अपना कार्यक्रम समझकर पूर्ण सहयोग एवं समर्थन प्रदान करे तथा विकास कार्य में लगे हुए अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति निष्ठा का भाव रखे और सच्चाई, ईमानदारी, मेहनत और लगन से कार्य करें।

## 3.8 शब्दावली

पुर्नरुद्धार- दोबारा किसी चीज में सुधार करना, पुनर्निर्माण- किसी चीज को दोबारा बनाना, सामुदायिक- समुदाय के साथ पूर्ण रूप से किसी कार्य को करना, पुनरूत्थान- किसी को दोबारा जीवित करना, उजड़- बंजर, सम्मुनत- सुधार, अवयवी- अंग या अंश

## 3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** 02 अक्टुबर 1952, **2.** बलवन्त राय मेहता कमेटी

## 3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, एस0आर0 माहेश्वरी, ‘‘भारत में स्थानीय प्रशासन’’, आगरा, 2012
2. रजनी कोठारी, ‘‘पॉलिटिक्स इन इण्डिया’’, ओरियण्टल ब्लैकवॉन, नई दिल्ली, 1970
3. वी0एन0 सिंह, जन्मेजय सिंह, ‘‘ग्रामीण समाजशास्त्र’’, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2013
4. जी0आर0 मदन, ‘‘परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र’’, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2015

## 3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, एस0आर0 माहेश्वरी, ‘‘भारत में स्थानीय प्रशासन’’, आगरा, 2012

2. वी0एन0 सिंह, जन्मेजय सिंह, “ग्रामीण समाजशास्त्र ”, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2013

## 3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भवन्तु निरामया’ की अवधारणा को चरितार्थ करता है, स्पष्ट कीजिए।
2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालें।
3. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की मुख्य विशेषताओं और कार्यकलापों का उल्लेख करें।
4. सामुदायिक विकास कार्यक्रम से आप क्या समझते हैं तथा क्या आप मानते हैं कि जनसहभागिता के आभाव में सामुदायिक विकास कार्यक्रम असफल रहा है?

# इकाई- 4 बलवन्त राय मेहता समिति प्रतिवेदन एवं त्रिस्तरीय व्यवस्था

**इकाई की संरचना**

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 बलवन्त राय मेहता समिति का उद्देश्य

4.3 बलवन्त राय मेहता समिति का प्रतिवेदन

4.4 बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियां

4.5 पंचायत की त्रिस्तरीय व्यवस्था

    4.5.1 ग्राम पंचायत

    4.5.2 पंचायत समिति

    4.5.3 जिला परिषद

4.6 बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों का क्रियान्वन

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

## 4.0 प्रस्तावना

भारत गांवों का देश है, जिसकी प्रतिशत जनसंख्या 05 लाख 75 हजार गांवों में निवास करती है। यहाँ पंचायती राज के नाम से प्रसिद्ध ग्रामीण स्थानीय शासन का महत्व स्वतः सिद्ध और सर्वथा असंदिग्ध है। वस्तुतः ग्रामीण शासन सम्बन्धी विचार जनता के सामाजिक और आर्थिक उन्नति की महती चिन्ता का एक अंग मात्र है। हमारा देश अत्यन्त प्राचीन काल से ही जनकल्याण के लक्ष्य के प्रति अटूट रूप से समर्पित है। इस शब्द का प्रयोग करते ही हमारा ध्यान सुदुर धुंधले अतीत की तरफ बरबस हो चला जाता है, इसलिए ग्रामीण विकास प्रारम्भ से ही भारतीय शासन के चिन्ता का मुख्य विषय रहा है। इसी उद्देश्य को लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय सविधान

में नीति निदेश क तत्वों के तहत गांवों को स्वशासन की इकाई के रूप में विकसित करने का विचार रखा गया। ग्रामीण विकास को दृष्टिगत रखकर ही 02 अक्टूबर 1952 ई0 में 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' का आरम्भ केन्द्र सरकार के द्वारा किया गया। यह सरकार द्वारा ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्य में जनता की भागीदारी के बारे में एक नयी सोच थी सामुदायिक विकास कार्यक्रम इस ढंग से बनाया गया था कि यह निरन्तर विस्तृत होता चला जाय और अन्ततोगत्वा यह सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र तक विस्तृत हो जाय। इसके बाद 1953 में सारे देश में 'राष्ट्रीय विस्तार सेवा' स्थापित की गयी। इसके लिए सारे देश को विकास खण्ड में बांट दिया गया। प्रत्येक विकास खण्ड का प्रशासनिक अधिकारी विकास अधिकारी को बनाया गया। जनता का सहयोग लेने के लिए तदर्थ सलाहकारी समितियां बनायी गयी परन्तु इनमें नामित सरकारी अधिकारी ही अधिक होते थे। इसमें सामुदायिक विकास के प्रशासन का उत्तरदायित्व नौकरशाही के कंधों पर था। किन्तु विद्यमान संगठनात्मक ढ़ाँचे में हेर फेर कर दिया गया था। इस कार्यक्रम के अधीन सरकार ने ग्रामीणों के सहयोग से विकास योजनाएं बनायी थी तथा इस बात का ध्यान रखा गया था कि ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता और खण्ड विकास अधिकारी दोनों का नीति निर्धारण में समन्वय बना रहे। सामुदायिक विकास के संगठन और प्रशासन ने जनता का विश्वास नहीं किया। अतः अपेक्षित जन सहयोग के अभाव यह कार्यक्रम अपने निहित उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहा। इन सभी कदमों ने स्वायतशासी इकाईयों के रूप में पंचायतों को पनपने नहीं दिया।

अतः सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन करने तथा ग्रामीण विकास की अवधारणा को पुर्नस्थापित करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने 1956 ई0 में एक समिति की नियुक्ति की जिसका नाम 'सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा का अध्ययन दल' था, इसके अध्यक्ष बलवन्त राय मेहता थे। इसलिए इसको बलवन्त राय मेहता समिति भी कहा जाता है। इस समिति का कार्यक्षेत्र सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता के कारणों की जांच करने के साथ-साथ स्थानीय स्वशासन की स्थापना के मजबूत आधार का उल्लेख करना था। ग्रामीण विकास या स्थानीय शासन के इतिहास में यह समिति तथा इसके सुझाव मील के पत्थर साबित हो रहें है।

## 4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- यह समझ पाओगे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायत व्यवस्था का विकास कैसे प्रारम्भ हुआ।

- पंचायती राज के वर्तमान स्वरूप को स्थापित करने में इस समिति का क्या योगदान था, इस सम्बन्ध में जान पाओगे।
- त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था की नींव कब और कैसे पड़ी, इस सम्बन्ध में जान पाओगे।

## 4.2 बलवन्त राय मेहता समिति का उद्देश्य

बलवन्त राय मेहता समिति का निर्माण भारत सरकार के अधीन 'कमेटी ऑन प्लान प्रोजेक्ट्स' (आयोजक परियोजना समिति) ने सामुदायिक विकास परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा का अध्ययन करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए की थी। इसलिए इसका पूरा नाम 'सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा का अध्ययन दल' है। विशेष रूप से समिति को निम्नलिखित बिन्दुओं का अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना था-

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा हेतु कर्मचारियों की आवश्यकता का आकलन और प्रशिक्षण की विद्यमान सुविधाओं का परीक्षण जिससे कार्यक्रम के प्रसार के लिए कर्मचारियों की बढ़ती हुई आवश्यकता की पूर्ति की जा सके।
2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार-सेवा की उपलब्धियों का जिक्र करने के लिए अपनायी गयी पद्धतियां।
3. केन्द्र सरकार के विभिन्न विभागों, मन्त्रालयों, केन्द्र-राज्य सरकारों तथा सामुदायिक विकास प्रशासन के विभिन्न अभिकरणों तथा राज्य सरकार के संगठनों एवं विभागों के बीच तालमेल।
4. सामुदायिक विकास परियोजना के कार्यक्रम की अन्तर्वस्तु तथा इसके अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्षेत्रों के लिए निर्धारित की गयी प्राथमिकताएं।
5. इस बात की जांच करना कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त करने में तथा ऐसी संस्थाओं का निर्माण करने में कहाँ तक सफल हुआ, जिनके द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास तथा सामाजिक दशा के सुधार की प्रक्रिया को निरन्तर जारी रखा जा सके।
6. अन्य किसी प्रकार के सुझाव जिनको समिति ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा के क्रियान्वयन में मितव्ययता लाने हेतु आवश्यक समझे।

मेहता समिति ने देश भर के चुने हुए ब्लाकों, स्थानीय जनता, स्थानीय अधिकारियों, जिला स्तरीय अधिकारियों, प्रतिनिध्यात्मक संगठनों के प्रतिनिधियों, विभागों के अध्यक्षों और विकास विभाग के सरकारी सचिवों से बातचीत की। समिति ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि तत्कालीन स्थानीय संस्थाएं कार्य कर सकती हैं या नहीं, यदि नहीं तो फिर कौन सी नयी संस्थाएं किस क्षेत्र किन शक्तियों और साधनों के साथ निर्मित की जाय। तत्कालीन जिला बोर्ड का अध्ययन करते हुए समिति ने उनकी अयोग्यताओं पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला। समिति का मानना था कि जिला बोर्डो ने उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं की, जिनके लिए उनको स्थापित किया गया था। उन्हें लोगों को स्वशासन की शिक्षा देनी चाहिए थी, लेकिन यह उनकी परम्परा नहीं रही और न तो उनके पास इस तरह के साधन थे कि वे ऐसा कर सकें। उन्हें कार्य तो सौंप दिया गया था। लेकिन उन्हें इतना साधन सम्पन्न नहीं बनाया गया था, जिससे वे अपनी समस्याओं का समुचित समाधान कर सकें। अध्यक्ष व सदस्य इस स्थिति में नहीं थे कि वे तत्कालीन समस्याओं को सुलझाने के लिए समय दे सकें। वे अधिकांश कार्यों को अधिकारियों पर छोड़ने के लिए बाध्य थे, इसलिए अनुभवी अधिकारियों की नियुक्ति आवश्यक थी। राज्यों की भी प्रवृत्ति यह रही कि उन्होंने जिला बोर्डों से कई कार्य वापस ले लिये। इसके अलावा वहाँ दोहरे शासन की स्थिति भी पायी जाती थी।

समिति ने प्राथमिक शिक्षा को जिला बोर्डो के अधिकार में रखने की व्यवस्था से भी असहमति प्रकट किया, क्योंकि जिला बोर्ड स्वयं अपने दायित्वों के निर्वहन के लिए आर्थिक रूप से सरकार पर निर्भर थे। इसलिए वे उनकी समस्याओं में बहुत ही कम रूचि दिखाते थे। पंचायतों को भी जिला बोर्डों से जोड़ने के विचार को श्रेयस्कर नहीं माना गया। समिति का विचार था कि पंचायतों को जिला बोर्ड से सीधे जोड़ना न तो सरल होगा और न ही सुविधानक और व्यवहारिक। कई राज्यों में एक ही जिले में कई सौ ग्राम पंचायतें हैं और उनमें से कई का क्षेत्र बहुत बड़ा है। उनकी इतनी बड़ी संख्या भी असुविधा का एक बड़ा कारण है। ऐसी स्थिति में जिला बोर्ड और पंचायतों के बीच सामंजस्य एक बड़ी समस्या है।

## 4.3 बलवन्त राय मेहता समिति का प्रतिवेदन

उपर्युक्त समस्याओं का अध्ययन करने के पश्चात समिति ने 24 नवम्बर 1957 ई0 को अपना प्रतिवेदन तत्कालीन सरकार को सौंपा। जिसमें उसके द्वारा कई महत्वपूर्ण जानकारियों पर भारी आश्चर्य व्यक्त किया गया था। समिति ने देखा कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम व राष्ट्रीय प्रसार सेवा के कार्यक्रम जनता में अभिक्रम की प्रवृत्ि पैदा करने में सफल नहीं हुए। जिससे जनता इन कार्यक्रमों में सक्रिय सहयोग नहीं की। पंचायतों द्वारा भी सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन नहीं किया गया। पंचायत स्तर के ऊपर के स्थानीय

निकायों द्वारा भी सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का उत्साह नहीं दिखाया गया। इन तथ्यों से समिति को गहरा आघात लगा।

समिति का दृष्टिकोण था कि इन व्याधियों को समाप्त करने के लिए सबसे बढ़िया उपाय यह है कि राज्य के नीचे के स्तरों पर शक्ति तथा उत्तरदायित्व का विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय। उसका सुझाव था कि ''शक्ति को एक ऐसे निकाय को अन्तरित कर दिया जाय जो निर्मित हो जाने पर अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत विकास कार्य का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले ले। सरकार पथ-प्रदर्शन, परिवीक्षण तथा उच्चतर आयोजन का काम अपने हाथों में सुरक्षित रखे और जहाँ आवश्यक हो वहाँ अतिरिक्त वित्तीय सहायता प्रदान करें।'' अर्थात समिति का प्रमुख निष्कर्ष यह था कि आम लोगों को ग्रामीण विकास योजनाओं में भागीदार बनाने के लिए यह आवश्यक है कि योजना और प्रशासनिक सत्ता दोनों का विकेन्द्रीकरण हो। इस रिपोर्ट में पहली बार विकेन्द्रीकरण के साथ लोकतान्त्रिक शब्द जोड़ा गया। इसका आशय था कि जो लोकतान्त्रिक पद्धति हमारे देश में अपनायी गयी है उसमें सभी ग्रामीण सक्रिय रूप से भाग लें। जिससे सामान्य नागरिक यह महसूस करें कि शासन प्रक्रिया में उसका भी योगदान है। समिति के रिपोर्ट में कहा गया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय प्रसार सेवा का विकास इसलिए नहीं हो पाया कि इसमें जनता के सहभागिता का अभाव था। जनता स्थानीय क्रियाकलापों में तभी सक्रिय रूचि लेगी जबकि उसके लिए प्रतिनिधि सभाएं गठित की जाय।

विकेन्द्रीकरण को स्पष्ट करते हुए समिति ने कहा कि सरकार के कार्यों व अधिकारों को निचले स्तर पर स्थानान्तरित करने के साथ-साथ उनको वित्तीय दृष्टि से भी सबल बनाया जाना चाहिए। यह तभी सम्भव है जबकि विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक ढ़ाँचा निर्वाचित निकायों के हाथों में हो। रिपोर्ट में कहा गया कि बिना जिम्मेदारी और अधिकारों के विकास कार्यों में प्रगति नहीं हो सकती। सामुदायिक विकास सही अर्थों में तभी हो सकता है जब समुदाय अपनी समस्याओं को समझे, आवश्यक अधिकारों का प्रयोग कर सके और स्थानीय प्रशासन पर लगातार और समझदारी के साथ निगाह रख सके। इस उद्देश्य से हम शीघ्र ही चुने हुए संविधानिक एवं निर्वाचित निकायों की स्थापना की सिफारिश करते हैं और आवश्यक संसाधन, अधिकार तथा प्राधिकार सौंपे जाने की संस्तुति करते हैं।

## 4.4 बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियां

बलवन्त राय मेहता समिति के द्वारा विकेन्द्रीकरण को प्रभावी बनाने के लिए प्रमुख रूप से निम्नलिखित संस्तुतियां की गयी थी -

1. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण हेतु प्रस्तावित पंचायती राज की योजना ग्राम से लेकर जिला स्तर तक त्रि-स्तरीय होनी चाहिए (शीर्ष पर जिला परिषदें, बीच में पंचायत समिति तथा निचले स्तर पर ग्राम पंचायत की स्थापना की जाय)। ये तीनों स्तर एक-दूसरे से जुड़े होने चाहिए। रिपोर्ट में पंचायत समिति को इस ऋंखला की सबसे अहम कड़ी बताया गया। समिति के अनुसार इन संस्थाओं को कानूनी दर्जा मिलना चाहिए, इनके अधिकार व कर्तव्य साथ-साथ परिभाषित होने चाहिए और इन्हें सरकारी नियन्त्रण में नहीं रखा जाना चाहिए।
2. सरकार को क्षेत्रीय विकास सम्बन्धी कुछ कार्यों एवं दायित्वों को इन निकायों को सौंप देना चाहिए और अपने को केवल निर्देशन, परीक्षण और उच्च नियोजन तक ही सीमित रखना चाहिए।
3. विकास खण्ड स्तर पर अपने क्षेत्र में विकास सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन करने हेतु एक निर्वाचित स्वशासित संस्था की स्थापना की जाय।
4. समिति ने इस बात पर अधिक बल दिया कि लोकतन्त्रीय संस्थाओं का विकेन्द्रीकरण किया जाय ताकि निर्णय लेने के केन्द्र जनता के अधिक निकट हो और जनता इन निर्णयों में भाग ले सके साथ ही नौकरशाही अथवा सरकारी कर्मचारी स्थानीय जनता के नियन्त्रण में काम करें। इसके अनुसार जनता द्वारा निर्वाचित पंचायती राज संस्थाओं के पर्याप्त अधिकार दिये गये। उन्हे अपने क्षेत्र के विकास-विषयक कार्यकलापों के लिए उत्तरदायी बनाया गया।
5. इन निकायों को अपना कार्य करने के लिए समुचित वित्तीय साधन मिलना आवश्यक है, इसके लिए एक कानून बनाकर आप के कुछ साधन इन्हें सौंप देने चाहिए। इसके अलावा राज्य सरकार इनको पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान करे जिसमें पिछड़े हुए क्षेत्र हेतु विशेष ध्यान दिया गया हो।

   पंचायत समिति का गठन ग्राम पंचायतो द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चुने हुए सदस्यों द्वारा हो। इनका क्षेत्राधिकार इतना व्यापक नहीं होना चाहिए कि वह अपने उद्देश्य में विफल हो जाय, साथ ही साथ इतना सीमित भी नहीं होना चाहिए कि वे मितव्ययता व कार्यकुशलता के मार्ग में बाधक बन जाय।
6. पंचायत समिति को कृषि विकास, पशुपालन, स्वास्थ्य और सफाई सम्बन्धी कार्य सौंपे जाऐं। विकास सम्बन्धी इन योजनाओं को कार्यान्वित करने हेतु पंचायत समिति को राज्य सरकार के अभिकर्ता के रूप में कार्य करना चाहिए।

7. समस्त केन्द्रीय व राजकोष जो विकास खण्ड क्षेत्र के विकास हेतु दिये गये हो पंचायत समिति द्वारा ही खर्च किये जाने चाहिए। समिति ने आषा व्यक्त की कि सरकार पंचायत समिति के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले विषयों में काम बन्द कर देगी और यदि किन्ही विशेष परिस्थितियों में उसे करना भी पड़ा तो वह पंचायत समिति के अभिकरण के द्वारा ही करेगी।
8. यद्यपि सरकार को पंचायत समिति के कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किन्तु साथ ही साथ उसका यह भी विचार था कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में सरकार का नियन्त्रण आवश्यक होगा। उदाहरण स्वरूप सरकार के हाथों में सार्वजनिक हित में पंचायत समिति के कार्यों को स्थगित करने तथा उसको भंग करने का अधिकार होना चाहिए। जिलाधिकारी को यह अधिकार हो कि यदि पंचायत समिति का कोई प्रस्ताव शान्ति भंग करने वाला, संविधान विरूद्ध अथवा राष्ट्रीय कानून के विरूद्ध हो तो वह उसे स्थगित कर दे।
9. पंचायतों के गठन के सम्बन्ध में समिति का सुझाव था कि ग्राम पंचायत स्तर पर चुने गये सदस्यों में दो महिलाएं, एक अनुसूचित जाति तथा एक अनुसूचित जनजाति से होना चाहिए। ग्राम पंचायत का चुनाव ग्राम सभा द्वारा किया जाय। मध्य स्तर पर सदस्यों का चुनाव ग्राम पंचायतें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से करें। चुने हुए सदस्यों में दो महिलाएं हो जो बच्चों और महिलाओं के काम में दिलचस्पी लेती हों। इसमें अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति को आरक्षण देने की सिफारिश भी की गई थी। पंचायत समितियों के प्रधानों के अलावा सांसद व राज्य विधान सभा के सदस्य भी जिला परिषद के सदस्य होगें। जिला परिषद पंचायत समितियों व सरकार के बीच कड़ी का काम करें।
10. पंचायतों के आय का मुख्य स्रोत सम्पत्ति कर, गृहकर, बाजार था सवारी पर कर, चुंगी कर बिजली व पानी कर, पशु मेले पर कर एवं पंचायत समिति से प्राप्त वित्तीय आय होनी चाहिए।
11. ग्राम पंचायतों के बजट का अनुमोदन पंचायत समिति द्वारा होना चाहिए तथा ग्राम पंचायत का स्थगन केवल राज्य सरकार द्वारा जिला परिषद की संस्तुति पर होनी चाहिए।
12. ग्राम पंचायतों के आवश्यक कर्तव्यों में जलपूर्ति, सफाई, रोशनी, सड़कों का रख-रखाव, भूमि प्रबन्ध, भूलेखों का संकलन और प्रबन्ध तथा पिछड़े वर्गों के कल्याण सम्बन्धी कार्य आते हैं।
13. न्याय पंचायतों का क्षेत्र ग्राम सभा से ज्यादा बड़ा होगा। विभिन्न पंचायत समितियों के मध्य समनवय स्थापित करने के लिए एक जिला परिषद होगी। जिसमें इन समितियों के प्रमुख, उस क्षेत्र के लोक सभा

और विधान सभा के चुने हुए सदस्य एवं जिला स्तर के अन्य अधिकारी होगें। जिलाधिकारी उसका अध्यक्ष होगा।

14. समिति के विचार में जिला परिषद के कार्यकारी काम नहीं होगें, क्योंकि इससे अन्य स्थानीय संस्थाओं ग्राम पंचायत और पंचायत समिति के स्वतन्त्रता का हनन होगा। जिसके फलस्वरूप प्रारम्भिक समिति में पंचायत समितियों की प्रभावकारिता पर आंच आयेगी।
15. जिला परिषद मात्र पंचायत समितियों के बजट को स्वीकृति देगी, मांगों को सरकार की ओर अग्रसर करेगी, सरकार से प्राप्त धन को खण्डों में वितरित करेगी, योजनाओं में सामंजस्य स्थापित करेगा और समितियों के गतिविधियों का मार्ग निर्देशन आदि कार्य करेगा।

## 4.5 पंचायत की त्रिस्तरीय व्यवस्था

बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों में पंचायत व्यवस्था के त्रिस्तरीय स्वरूप की सिफारिश की गई थी। निचले स्तर पर ग्राम पंचायत, मध्य स्तर पर क्षेत्र पंचायत और सबसे ऊपर जिला परिषद अर्थात् ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, विकास खण्ड स्तर पर क्षेत्र पंचायत तथा जिला स्तर पर जिला परिषद। जिनका संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकाता है-

### 4.5.1 ग्राम पंचायत

त्रिस्तरीय व्यवस्था में सबसे निचले स्तर पर ग्राम पंचायत होगी। जिसका निर्माण निर्वाचन द्वारा किया जाना चाहिए। इसके सदस्यों का चुनाव ग्राम सभा द्वारा किया जाय। चुने हुए सदस्यों में दो महिलाएं, दो अनुसूचित जाति तथा दो अनुसूचित जनजाति में से लिए जाने चाहिए। आईये ग्राम पंचायत को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

1. **ग्राम पंचायत के कार्य-** समिति के द्वारा ग्राम पंचायतों को निम्नलिखित कार्य एवं अधिकार देने की संस्तुति की गई- जल की व्यवस्था करना, गांव के साफ-सफाई का प्रबन्ध करना, गलियों, नालियों व तालाबों के रख-रखाव का प्रबन्ध करना, गांव की गलियों में प्रकाश की व्यवस्था, भूमि प्रबन्ध, गांव की सड़कों, पुलियों, पुलों व नालों की देख-रेख, संकट में सहायता देना, प्राथमिक पाठशालाओं का परिवीक्षण, पशुओं से सम्बन्धित अभिलेखों का रख-रखाव आकाड़ों को एकत्रित करना और संरक्षण देना, पिछड़े हुए वर्गों का कल्याण और भू-राजस्व की वसूली आदि। इन कामों के अतिरिक्त ग्राम पंचायत

विभिन्न विकास परियोजनाओं अथवा अन्य कार्यकलापों में पंचायत समिति के अभिकरण के रूप में भी कार्य कर सकती है।

2. **वित्त-व्यवस्था या आय व्यवस्था-**समिति ने ग्राम पंचायत के अन्य के मुख्य स्रोतों को निम्न प्रकार वर्णित किया है- सम्पत्ति कर अथवा गृह कर, हाटों तथा बाजारों पर कर, चुंगी व सीमा कर, साईकिलों, गाड़ियों, बोझा ढोने वाले पशुओं, नावों आदि पर कर, सफाई और जल कर, गांव क्षेत्र में बिकने वाले पशुओं पर पंजीकरण शुल्क,बूचड़खानों पर कर, मवेशी खानों से आय और पंचायत समिति से प्राप्त अनुदान।

   कर की वसूली सन्तोषजनक नहीं थी, इसलिए समिति ने सुझाव दिया कि कानून द्वारा यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि जो व्यक्ति पिछले वर्ष के करो को अदा नहीं किया है। उसे आने वाले पंचायत के चुनाव में मतदान का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। यदि किसी पंचायत सदस्य के द्वारा छः महीने से अधिक तक कर अदा नहीं किया जाय तो उसकी सदस्यता स्वतः समाप्त हो जानी चाहिए।

3. **नियन्त्रण-** मेहता समिति के अनुसार पंचायत समिति को ग्राम पंचायत के पुनरीक्षण व स्वीकृति का अधिकार दिया जाना चाहिए। जिससे पंचायत समिति ग्राम पंचायत के ऊपर नियन्त्रण रखने का कार्य भी करें।

### 4.5.2 पंचायत समिति

मध्यम स्तरीय या खण्ड स्तरीय निकाय को मेहता समिति ने पंचायत समिति का नाम दिया। समिति के अनुसार पंचायत समिति एक निर्वाचित व संविधानिक निकाय होनी चाहिए। उसके कार्य विस्तृत हो तथा उसके पास आवश्यक कार्यकारी शक्ति और समुचित साधन हो। इसे सरकार के हस्तक्षेप या व्यापक नियन्त्रण से मुक्त रहकर कार्य का अधिकार हो। सरकार द्वारा उसे आवश्यक पथ-प्रदर्शन भी मिलना चाहिए। पंचायत समिति को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

1. **पंचायत समिति के कार्य-** समिति के द्वारा त्रिस्तरीय व्यवस्था में पंचायत समिति को सबसे महत्वपूर्ण इकाई माना गया क्योंकि समिति का मानना था कि ग्राम पंचायत इतनी छोटी है कि उसे प्रशासन की सफल इकाई नहीं बनाया जा सकता है और जिला परिषद जनता से इतनी दूर होगी कि जनता उसमें सक्रिय रूप से भाग नहीं ले सकेगी। यह ग्रामीण स्थानीय शासन की इकाई के रूप में कार्य करने के साथ-साथ अपने क्षेत्र के सभी विकास कार्यों की भी एकमात्र सत्ताधारी संस्था होगी। इस हेतु वह कृषि,

पशुपालन, ग्रामीण-उद्योग, सहकारिता, लघु सिंचाई, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य, स्थानीय संचार साधन, स्थानीय सुविधाएं आदि विकास कार्यों को सम्पन्न करेगी। इसलिए सरकार उसके कार्यक्षेत्र में कोई कार्य नहीं करेगी और यदि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में करना भी पड़ा तो वह पंचायत समिति के अभिकरण द्वारा ही करेगी। इस प्रकार राज्य पर्यवेक्षण, मार्ग दर्शन, उच्च स्तरीय आयोजन व वित्तीय सहायता देने तक ही अपने को सीमित रखेगा।

2. **वित्तीय व्यवस्था-** बलवन्त राय मेहता समिति ग्रामीण संस्थाओं के वित्तीय समस्याओं से भलीभाँति परिचित थी। इसलिए उसने इस समस्या की ओर समुचित ध्यान दिया और पंचायत समिति के आय के लिए निम्नलिखित साधन पंचायत समितियों को सुपुर्द करने की संस्तुति की- विकास खण्ड में वसूल किये जाने वाले भू-राजस्व का एक निश्चित प्रतिशत भाग, व्यवसायों तथा उद्यमों पर कर, विकास खण्ड की अचल सम्पत्तियों, घाटों, मत्स्य क्षेत्र से प्राप्त कर व लाभ, सड़क व पुलों पर प्राप्त चुंगी कर, मनोरंजन के साधनों से प्राप्त कर, प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी उप-कर, समय-समय पर लगने वाले मेलों व हाटों पर लगने वाले कर, ऐच्छिक सार्वजनिक चन्दे, मोटर-गाड़ी कर का एक भाग, तीर्थ यात्री कर, जल कर तथा भू-राजस्व कर आदि पर उप-कर और सरकार से प्राप्त अनुदान।

   समिति की संस्तुति है कि विकास खण्ड क्षेत्र में केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा जो भी धनराशि खर्च की जाय वह निर्अपवाद रूप से पंचायत समिति को दे दी जानी चाहिए और उसको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खर्च करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो केवल उन संस्थाओं को अपवाद माना जा सकता है जिनको सहायता देना या तो पंचायत समिति के कार्य कलाप के बाहर है या उनके वित्तीय साधनों से परे है।

3. **नियन्त्रण-** बलवन्त राय मेहता समिति ने संस्तुति की कि पंचायत समिति के कार्यों में सरकार को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किन्तु कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में समिति ने सरकार का नियन्त्रण आवश्यक माना। ये विशेष परिस्थितियां है, यदि समिति के किसी प्रस्ताव से शान्ति भंग की आशंका हो, प्रस्तावित कार्य संविधान या देश के किसी प्रचलित कानून के विरूद्ध हो तो जिलाधिकारी उसे स्थगित कर सकता है।

4. **कर्मचारीगण-** मेहता समिति के अनुसार पंचायत समिति में दो प्रकार के कर्मचारी व अधिकारी होंगे। प्रथम, खण्ड स्तर पर और द्वितीय, ग्राम पंचायत स्तर पर। खण्ड स्तर के अधिकारियों में खण्ड विकास अधिकारी, कृषि, सिचाई, सड़कों, इमारतों, लोक स्वास्थ्य, पशुपालन, सहकारिता, सामाजिक शिक्षा,

प्राथमिक शिक्षा आदि की देखरेख करने वाले तकनीकी तथा प्रसार अधिकारी सम्मिलित होंगे। खण्ड विकास अधिकारी कार्यकारी अधिकारी होगा। समिति के अनुसार खण्ड विकास अधिकारी में सांविधिक रूप से प्रशासकीय शक्ति निहित होनी चाहिए।

ग्राम स्तरीय कर्मचारियों में ग्राम सेवक, प्राथमिक पाठशाला के अध्यापक आदि आते हैं। इनकी भर्ती जिला परिषद द्वारा की जानी चाहिए तथा इन्हें विभिन्न पंचायत समितियों को सुपुर्द कर दिया जाना चाहिए। ये कर्मचारी प्रशासन और कार्य दोनों के दृष्टि से खण्ड विकास अधिकारी द्वारा नियन्त्रित होंगे।

### 4.5.3 जिला परिषद

बलवन्त राय मेहता समिति का मानना था कि जिले स्तर पर भी कोई ऐसा संगठन होना चाहिए जो जिले के पंचायत समितियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का कार्य करे। इस हेतु उसने जिला स्तर पर जिला परिषद के स्थापना की संस्तुति की और कहा कि जिला परिषद पंचायत समितियों में तालमेल स्थापित करने के साथ-साथ उसके परिवीक्षण का कार्य करेगी किन्तु उसके हाथों में कार्यकारी शक्ति नहीं होनी चाहिए।

1. **जिला परिषद के सदस्य-** जिला परिषद में जिले के अन्तर्गत आने वाले सांसद, विधायक, पंचायत समितियों के अध्यक्ष, कृषि, लोक स्वास्थ्य, पशु चिकित्सा, शिक्षा, लोक स्वास्थ्य, अभियन्त्रण, सार्वजनिक निर्माण तथा विकास विभागों के जिला स्तर के अधिकारी आदि सदस्य होंगे। जिलाधिकारी जिला परिषद का अध्यक्ष होगा तथा एक अन्य अधिकारी उसका सचिव होगा।
2. **जिला परिषद के कार्य-** जिला परिषद का मुख्य कार्य केवल पंचायत समितियों का परिवीक्षण तथा उनमें समन्वय स्थापित करना था। समिति की संस्तुति थी कि ‘‘हमारा ऐसा विचार नहीं है कि इस परिषद के कार्यकारी काम होगे। उससे तो स्थानीय अभिक्रम को ठेस पहुँचेगी तथा फलस्वरूप प्रारम्भिक वर्षों में पंचायत समितियों की प्रभावकारिता पर भी आंच आयेगी।’’ समिति की संस्तृतियों में जिला परिषद के निम्नलिखित कार्यों की अनुशंसा की गयी थी-
    - जिला परिषद सरकार द्वारा जिले के लिए दी गयी धनराशि को पंचायत समितियों को वितरित करेगी।
    - जिला परिषद जिले के समस्त पंचायत समितियों के बजट का परिवीक्षण तथा अनुमोदन करेगी।
    - जिला परिषद जिले की विकास खण्ड योजनाओं को एकीकृत व समन्वित करेगा।

- जिला परिषद पंचायत समितियों द्वारा अनुदानों हेतु दिये गये आवेदन पत्रों को एकीकृत कर सरकार को अग्रसारित करेगी।
- जिले के पंचायत समितियों के कार्यों का परिवीक्षण भी जिला परिषद के द्वारा किया जायेगा।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बलवन्त राय मेहता समिति ने स्थानीय स्वशासन के लिए त्रिस्तरीय व्यवस्था की संस्तुति की। मेहता समिति की संस्तुतियों ने विद्यमान ग्रामीण शासन की व्यवस्था को प्रभावमयी व उचित व्यवस्था में रूपान्तरित कर दिया। इसकी संस्तुतियां वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था को आधार प्रदान करने का कार्य की। वर्तमान व्यवस्था के स्थापना में समिति की संस्तुतिया मील का पत्थर साबित हो रही है।

## 4.6 बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों का क्रियान्वयन

बलवन्त राय मेहता समिति का मत था कि ये संस्तुतियां उस शासन तन्त्र का एक व्यापक चित्र हैं। जिसे हम लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए आवश्यक समझते हैं और जिसके द्वारा प्रभावकारी ग्रामीण विकास सम्भव हो सकता है। लेकिन कुछ राज्य सरकारों ने यह मत व्यक्त किया कि उनके राज्य में जो परिस्थितियां हैं, उनको देखते हुए वे एक ऐसे स्थानीय निकाय का शक्ति अन्तरित करना उचित तथा सुविधाजनक समझते हैं जिसका अधिकार क्षेत्र जिले जितना बड़ा हो। यद्यपि हमारा विश्वास  है कि, एक छोटे निकाय को शक्ति अन्तरित करना लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का सबसे प्रभावकारी तरीका होगा। फिर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि इस प्रकार का अन्तरण जिले के निकाय को ही किया जा सकता है।

बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों का अध्ययन केन्द्रीय सरकार द्वारा किया गया। तत्पश्चात इसे राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष रखा गया। जिसमें वहस के उपरान्त समिति के प्रायः सभी सिफारिशों को राष्ट्रीय विकास परिषद ने यथावत स्वीकार कर लिया। इसके बाद इस प्रस्ताव को केन्द्र सरकार ने राज्यों के पास भेज दिया। राज्यों को यह विशेषाधिकार दिया गया कि हर राज्य इस सम्बन्ध में अपने-अपने नियम बनाये और अपनी इच्छानुसार पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना करें। स्थानीय शासन की केन्द्रीय परिषद ने इस बात का समर्थन किया कि पंचायती राज का वह स्वरूप स्वीकार किया जाय जो परिस्थितियों के अनुकुल हो, जटिल न हो, क्योंकि हमारा देश अत्यन्त विशाल है। इसलिए इसका रूप भिन्न-भिन्न राज्यों के अनुरूप भिन्न-भिन्न हो सकता है। सन् 1959 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने संस्तुति की कि वाह्य ढ़ाँचा व प्रधान तत्वों में एक रूपता हो सकती है किन्तु आकार,

प्रकार में जटिलता नहीं होनी चाहिए। वस्तुतः देश इतना विशाल है और पंचायती राज (लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण) इतना जटिल विषय है तथा उसके परीक्षण की पूरी-पूरी गुंजाइश है। अधिक महत्व की बात यह है कि जनता को शक्ति का अन्तरण करना है। यदि यह सुनिश्चित हो जाय तो रूप व आकार-प्रकार में विभिन्न राज्यों में विद्यमान परिस्थितियों के अनुसार भिन्नताएं हो सकती हैं।

प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरु के सुझाव के अनुसार इस त्रिस्तरीय प्रशासन की प्रक्रिया का विशुद्ध भारतीय नाम 'पंचायती राज' रखा गया। मद्रास राज्य 1957 के आरम्भ से ही जनवादी विकेन्द्रीकरण के एक अगुवा खण्ड को प्रयोग के तौर पर अपने ढंग से चला रहा था। इस खण्ड के अनुभव मौजूद थे। आन्ध्र प्रदेश के हर जिले में इस तरह का एक खण्ड था। बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों के अनुसार राजस्थान राज्य के अनुभवों से प्रेरित होकर 02 अक्टूबर (महात्मा गाँधी का जन्मदिन) 1959 ई0 में सम्पूर्ण प्रदेश को जनवादी विकेन्द्रीकरण के अधीन लाने की पहल पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने नागौर जिले में दीपक जलाकर पंचायती राज का उद्-घाटन किया। जिसके तहत सम्पूर्ण राज्य को 232 सामुदायिक विकास खण्डों में बांट दिया गया और राज्य के विकास की जिम्मेदारी जनता और पंचायत से शुरु कर उनके ऊपर के प्रतिनिधियों को सौप दी गयी। 1959 ई0 में आन्ध्र प्रदेश सभी सक्रिय सामुदायिक विकास खण्डों और सब जिलों की जिला परिषदों में जनवादी विकेन्द्रीकरण की यह योजना लागू कर दी। इसके पश्चात दूसरे राज्यों ने भी इसके ढ़ाँचे , कार्यों और साधनों में कुछ अनिवार्य परिवर्तन के साथ उसे स्वीकार कर लिया।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. बलवन्त राय मेहता समिति के गठन का कारण क्या था?
2. सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा दल' के अध्यक्ष कौन थे?
3. बलवन्त राय मेहता समिति का गठन कब किया गया था?
4. क्या पंचायत का त्रिस्तरीय ढ़ाँचा बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों का परिणाम है?
5. बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुति में ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला परिषद में सबसे महत्वपूर्ण किसे माना गया?
6. बलवन्त राय मेहता समिति के सिफारिशों के अनुरूप पंचायती राज व्यवस्था का प्रारम्भ सर्वप्रथम किस राज्य में हुआ?
7. नगौर जिला किस राज्य में स्थित है ?

## 4.7 सारांश

भारत गांव प्रधान देश है, अतः भारत के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है कि गांवों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। गांवों का विकास चाहे वह आर्थिक क्षेत्र में हो अथवा राजनीतिक क्षेत्र में नियोजित तरीके से ही सम्भव हो सकेगा। इसी बात को ध्यान में रखकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात गांवों का शासन गांव स्तर पर चलाने तथा लोकतन्त्र को मजबूती प्रदान करने के लिए जन सहभागिता प्राप्त करने के उद्देश्य से पंचायती राज की स्थापना की गई।

ग्रामीण विकास के उद्देश्य से ही प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरु ने 1952 ई0 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा 1953 ई0 में राष्ट्रीय प्रसार सेवा का प्रारम्भ किया। इसका उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक नियोजन के विरूद्ध गांवों में सक्रिय चेतना जागृत करना था, लेकिन यह प्रयास मात्र सरकारी प्रयास बनकर रह गया। ग्रामीण विकास कार्यक्रम की असफलता तथा उसे ग्रामीण जनता का सहयोग न मिलने के कारणों की जांच के लिए सर्वप्रथम 1956 में बलवन्त राय मेहता के नेतृत्व में 'सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विकास सेवा का अध्ययन दल' नामक समिति का गठन किया गया।

समिति ने देश की स्थितियों का अध्ययन किया और पाया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता का सबसे प्रमुख कारण जनता के सहयोग का अभाव था। समिति ने अपनी रिपोर्ट नवम्बर 1957 में भारत सरकार को सौंपा, इसमें विकास कार्यों में जनता के सहयोग को बढ़ाने के लिए समिति ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। लोकतन्त्रिक विकेन्द्रीकरण के अलावा समिति के रिपोर्ट में कहा गया था कि विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक ढ़ाँचा निर्वाचित निकायो के हाथों में होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समिति ने निम्न तीन स्तरों पर पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिश की ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद। इनमें पंचायत समिति को ऋंखला की सबसे अहम कड़ी बताया गया। सरकार के द्वारा समिति के प्रतिवेदन का अध्ययन करने पश्चात इसे राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष रखा गया। परिषद की स्वीकृति मिलने के उपरान्त इसे राज्यों को इस विशेषाधिकार के साथ भेज दिया गया कि वे अपनी स्थितियों व परिस्थितियों के अनुरूप नियम बनाकर पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना करें।

बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों को लागू करने के लिए प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने महात्मा गाँधी के जन्म दिवस 02 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में दीपक जलाकर इसका उद्-घाटन किया। जवाहर लाल नेहरु के सुझाव पर ही इस प्रक्रिया को 'पंचायती राज' नाम दिया गया।

## 4.8 शब्दावली

संविधान-किसी राज्य की शासन व्यवस्था के लिए विधित बनाये गये आधारभूत नियमों का संग्रह, समिति- किसी निश्चित उद्देश्य से निर्मित लघु संगठन, परियोजना- दीर्घ काल के लिए निर्मित योजना, सामुदायिक- सर्व समुदाय के लिए की गयी व्यवस्था, प्रतिवेदन- अधिकारी के पास भेजी जाने वाली रिपोर्ट, संस्तुति- किसी कार्य के करने के लिए प्रबल सिफारिश, पंचायती- पंचायत द्वारा किया हुआ, विकेन्द्रीकरण- शक्तियों का केन्द्र से बाहर की ओर प्रवाह, प्रशासनिक- राज्य शासन की कार्यकारिणी से सम्बन्धित, स्वशासित- स्वयं द्वारा शासित होने की स्थिति, नियोजित- नियुक्त किया हुआ या योजनाबद्ध तरीके से कुछ करना।

## 4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन करना और राष्ट्रीय प्रसार सेवा का मूल्याकंन करना, **2.** बलवन्त राय मेहता, **3.** 1956 ई0 में, **4.** हॉं, **5.** क्षेत्र पंचायत को, **6.** राजस्थान, **7.** राजस्थान में

## 4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महीपाल, पंचायती राज- अतीत, वर्तमान और भविष्य, सारांश प्रकाशन प्रा0लि0, दिल्ली।
2. डॉ0 श्रीराम माहेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।
3. एम0पी0 त्यागी और आर0 के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
4. एस0के0 डे, पंचायती राज (हिन्दी में), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. त्रिवेदी प्रसाद गुप्त एवं चन्द्रिका प्रसाद उपाध्याय, पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास, किरण बुक कम्पनी, इलाहाबाद।
6. देवेन्द्र उपाध्याय, पंचायती राज व्यवस्था, जगदीश भारद्वाज, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली।

## 4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 श्रीराम माहेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।
2. एम0पी0 त्यागी और आर0 के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।

## 4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बलवन्त राय मेहता समिति की स्थापना के उद्देश्यों एवं उसके प्रतिवेदन का उल्लेख कीजिये।

2. भारत में स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं के सम्बन्ध में बलवन्त राय मेहता समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन का संक्षेप में विवेचन कीजिये।

# इकाई- 5 ग्राम पंचायत

**इकाई की संरचना**

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 ग्राम पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

5.2.1 वैदिक काल में ग्राम पंचायत

5.2.2 महाकाव्य काल में ग्राम पंचायत

5.2.3 मौर्यकाल में ग्राम पंचायत

5.2.4 राजपूत काल में ग्राम पंचायत

5.2.5 मुगलकाल में ग्राम पंचायत

5.2.6 ब्रिटिश काल में ग्राम पंचायत

5.2.7 स्वतन्त्र भारत में ग्राम पंचायत

5.3 ग्राम पंचायत का संगठन

5.4 ग्राम पंचायत और कर्मचारी तथा राज्य सरकार

5.5 ग्राम पंचायत की वित्तीय व्यवस्था

5.6 ग्राम पंचायत के अधिकार और कार्य

5.7 ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायत की भूमिका

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.13 निबन्धात्मक प्रश्न

## 5.0 प्रस्तावना

मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति जब मानवीय सभ्यता की ओर अग्रसर हुआ तभी गांवों की स्थापना हो गयी। मानव स्वभाव ने ही व्यक्ति को सामाजिक संगठनों के विकास के लिए प्रेरित किया। भारत में पंचायतों का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन काल से रहा है। जो जन कल्याण की भावना से ओत-प्रोत थी। विकास तथा मानव कल्याण के साथ-साथ ये ग्रामीण समुदाय के न्याय का काम भी करती थी। ग्राम पंचायत जिन्हें ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की सबसे लोकप्रिय इकाई माना जाता था। अपने आप में स्थानीय स्वशासन की समर्थ इकाईयां हुआ करती थी। प्राचीन काल में इसी पंचायत व्यवस्था के कारण प्रत्येक ग्रामीण समाज अपने आप में छोटा सा राज्य था। जो भारत की जनता को एकता के सूत्र में आबद्ध कर रखा था। हर्षदेव मालवीय के अनुसार ''भारत में पंचायतों का उद्-भव प्राचीन था, क्योंकि हमारी संस्कृति को विकसित तथा समृद्धिशाली बनाने में इसने प्रकार्यात्मक दृष्टि से शक्तिशाली आधार प्रदान किया है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि भारत विश्व का प्रथम देश था, जहाँ पंचायत के सदस्यों को पंच-परमेश्वर कहा जाता था। गांव के किसी झगड़े या विवाद को हल करने के लिए पंचायत होती थी, जिसमें पांच व्यक्तियों के प्रतिनिधिमण्डल की एक समिति गठित होती थी, जो दोनों पक्षों के वाद-विवाद सुनने के बाद अपना फैसला सुनाती थी जिसे सबको मानना पड़ता था।''

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही महात्मा गांधी के द्वारा ग्राम स्वराज्य की अवधारणा का प्रतिपादन किया गया। उन्होंने कहा था कि ''भारत की स्वाधीनता गांव से प्रारम्भ होनी चाहिए। गांव की जनता को पूरे-पूरे अधिकार प्राप्त होने चाहिए। पंचायतों को जितने ही अधिक अधिकार प्राप्त होगें, उतनी ही जनता की भलाई होगी और हमारे गांवों में ग्राम स्वराज्य, सर्वोदय तथा राम राज्य की परिकल्पना साकार हो सकेगी।'' गांधी जी द्वारा सूत्रित ग्राम स्वराज्य की यह अवधारणा असल में आदर्श ग्राम पंचायत की परिकल्पना प्रस्तुत करती है। गांधी जी पंचायतों को स्थानीय स्वशासन की कमोवेश आत्म-निर्भर इकाई बनाना चाहते थे।

15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन का नवयुग प्रारम्भ हुआ। संविधान निर्माताओं ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि प्रजातान्त्रिक राज में लोग अपने कल्याण के लिए स्वयं कार्य करे। संविधान निर्माता इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि चूँकि देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। अतः भारत का विकास तभी होगा जबकि भारत के गांवों का विकास हो। इसलिए ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के बारे में भारतीय संविधान के भाग चार में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अन्तर्गत अनुच्छेद- 40 में कहा गया कि ''राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठायेगा तथा उनमें इतनी

शक्तियां और सत्ता सौंपेगा कि उनको ग्रामीण स्थानीय शासन की स्वायत्त इकाई के रूप में विकसित किया जा सके।''

यह इकाई ग्राम पंचायत से सम्बन्धित है जो पंचायती राज व्यवस्था की सबसे लोकप्रिय और निचले स्तर की इकाई है। इसमें ग्राम पंचायत के ऐतिहासिक विवरण के साथ-साथ उनकी संरचना, कार्य व शक्तियां, वित्तीय व्यवस्था तथा उस पर नियन्त्रण का उल्लेख किया गया है।

## 5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- ग्राम स्वराज्य या ग्राम पंचायत की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण में ग्राम पंचायत की स्थिति को समझ सकेंगे।
- ग्राम पंचायत के उद्देश्य व सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- वर्तमान ग्राम पंचायतों की स्थिति व व्यवहारिक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायत के योगदान का मूल्यांकन कर सकेंगे।

## 5.2 ग्राम पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

निः सन्देह पंचायत प्रथा की प्राचनिता भारत भूमि की एक अटूट प्राचीन विशेषता रही है। यह सृष्टि के प्रारम्भ से ही किस प्रकार फली-फूली है, उसके सापेक्ष आधार हमें वैदिक साहित्य से भली-भाँति मिल जाते हैं। उस समय उसे सभा या समिति की संज्ञा दी जाती थी। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए डॉ0 के0 पी0 जायसवाल ने लिखा है कि ''आरम्भिक काल में राष्ट्रीय जीवन और उनकी गतिविधियों का उल्लेख तत्कालीन लोकप्रिय सभा और समितियों के माध्यम से प्राप्त होता है।''

### 5.2.1 वैदिक काल में ग्राम पंचायत

ऋग्वैदिक कालीन राजनीतिक व्यवस्था में प्रत्येक ग्राम का एक अधिकारी होता था जिसे 'ग्रामणी' कहते थे। ग्रामणी का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण होता था, क्योंकि वह ग्राम का एक मात्र प्रशासनिक अधिकारी होता था। मानव सृष्टि के प्रारम्भ से ही जीवन की यात्रा को सुखमय बनाने के लिए सामाजिक संगठनों की आवश्यकता महसूस हुई। जिसमें व्यक्ति को समाज तथा समाज को व्यक्ति के लिए कुछ कर्तव्य करना अपेक्षित था। यजुर्वेद में इसका आभास इस प्रकार मिलता है-

‘‘अन्धुतमः प्रविषान्ति ये सुभंतिमुवासते।

ततो भूव इव ते तमों य उसंमुत्वा छरताः।।’’

मानव सृष्टि के प्रारम्भिक काल में मानव जीवन को आनन्दमय बनाने के उद्देश्य से जनशक्ति एकत्र हुई और उत्क्रान्त होकर ’विराड’ या वैराज की स्थापना की जिसमें सभी स्त्री-पुरूष प्रत्यक्ष रूप से भाग लेकर नियम बनाते थें। इसे प्रारम्भिक राज्य विहीन शासन कहा जा सकता है। इस वैराज शासन का दर्शन अथर्ववेद में इस प्रकार होता है-

‘‘विराड्वा इद्धग आसीत तस्या जतायाः सर्वभविमेदिय भविष्यतीर्ति’’

वैराज्य अथवा राजविहीन शासन में कोई अध्यक्ष नहीं होता था। फलतः सभी व्यक्तियों को स्वतः सभी नियमों का निर्माण करना पड़ता था। जो छोटे गांव या समाज में ही सम्भव था। अतः इसके कार्यान्वयन में कठिनाई महसूस हुई। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए एकत्रित जनशक्ति पुनः उत्क्रान्त हुई और जनसभा में परिणत हुई-

‘‘रसाउद क्रमात या सामायान्व क्रामत’’

इस प्रकार ग्राम सभा के अध्यक्षों का निर्वाचन हुआ जो ग्राम का शासन करते थे। इस व्यवस्था में गांव के सभी लोगों के स्थान पर उनके द्वारा निर्वाचित गांव के थोड़े सदस्यों की सभा की ओर गांव के लोग नेतृत्व भाव से देखते थे। साथ ही साथ गांव के सदस्य भी दायित्व के साथ अपने कर्तव्यों का सम्पादन करते थे। ग्राम सभा का कार्यक्षेत्र गांव तक ही सीमित और मर्यादित था, जिसमें जनशक्ति भी कम थी। जनशक्ति को बढ़ाकर बड़े-बड़े कार्यों का सम्पादन करने के विचार से अनेक गांवों को मिलाकर समाज का विस्तार कर समिति बनाने की भावना लोगों में उठी। फलतः जनशक्ति और अधिक उत्क्रान्त होकर समिति में परिणत हुई-

‘‘सोदं क्रामत स समितो न्याक्रामाता’’

समिति का अर्थ राष्ट्र समिति से है। जो अनेक गांवों का निरीक्षण करने के लिए अनेक गांवों को मिलाकर बड़ी समिति के रूप में संगठित हुई। अब तक संघीय शक्ति अनेक गांवों में बिखरी हुई थी जो इस समिति के शासन के अन्तर्गत संगठित हो गयी। इस प्रकार अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा समिति का संगठन हुआ। समिति के संगठन तक राजा के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की गयी थी। शासन व्यवस्था पूरी तरह जनतान्त्रिक था।

राष्ट्र समिति में ग्राम सभा के प्रतिनिधि बैठकर नियम बनाते थे, जिसके कार्यान्वयन के लिए कार्यकारिणी समिति की आवश्यकता प्रतीत हुई। फलतः जनशक्ति और अधिक उत्क्रान्त हुई और आमंत्रण अर्थात मन्त्रिमण्डल में परिणत हुई।

इस प्रकार भारत वर्ष में पंचायत व्यवस्था की प्राचीनता, सृष्टि के प्रारम्भ से ही देखने को मिलती है। इस व्यवस्था के प्रचलन के पर्याप्त साक्ष्य वैदिक साहित्य, उपनिषदों एवं जातक कथाओं में विद्यमान है।

**5.2.2 महाकाव्य काल में ग्राम पंचायत**

रामायण व महाभारत काल में भी इस प्रकार की सभाओं और समितियों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि शासन के केन्द्रीय स्तर पर तत्कालीन समय में बड़े-बड़े साम्राज्यों का भी वर्णन मिलता है फिर भी प्रशासन के सुविधा के दृष्टि से बड़े-बड़े साम्राज्यों को विभिन्न इकाईयों में विभक्त किया गया था। जिसकी सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' थी, जिसके अधिकारी को 'ग्रामिक' कहते थे। मनु स्मृति भी गांव के अधिकारी को ग्रामिक ही कहा गया है। उसका प्रमुख कार्य कर वसूली करना था।

डॉ0 अल्टेकर के अनुसार बौद्ध काल में गणराज्यों में ग्राम की अपनी सीमाएं होती थी। जिनका अधिवेशन गांव के संथागार में होता था। इसमें स्थानीय विषयों पर विचार किया जाता था। इस सभा में गांव के प्रत्येक परिवार को प्रतिनिधित्व प्राप्त था।

डॉ0 डी0डी0 शुक्ल ने भी लिखा है कि ''बौद्ध कालीन गणराज्यों में भी सभा का महत्व कम नहीं था। सभा के कार्य बहुमत से होते थे। इस काल में गणराज्यों के ग्राम की व्यवस्था ग्राम सभाओं द्वारा होती थी।''

**5.2.3 मौर्यकाल में ग्राम पंचायत**

मौर्यकाल में कौटिल्य (चाणक्य) द्वारा लिखित 'अर्थशास्त्र' भारत में राजनीति पर लिखा गया प्रथम प्रमाणिक ग्रन्थ कहा जाता है। इसके पूर्व की राजनीतिक व्यवस्था का हमारा अधिकांश ज्ञान जातकों एवं धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर की गयी कल्पना पर निर्भर था। कौटिल्य के अनुसार उस समय की सम्पूर्ण व्यवस्था कृषि की आवश्यकता से प्रभावित थी। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि उस समय राज्य ग्रामीण जीवन में बहुत कम हस्तक्षेप करता था। शासन के सुविधा के लिए प्रान्तों के उपविभाग किये गये थे। जो इस प्रकार थे- जनपद, द्रोणमुख, स्वार्वतिक, संग्राम तथा ग्राम/जनपद का अधिकारी मुखिया स्थानिक कहलाता था। ग्राम का अधिकारी ग्रामिक कहलाता था।

सम्राट चन्द्र गुप्त की शासन व्यवस्था का पर्याप्त अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय स्थानीय शासन की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। चन्द्रगुप्त ने स्वायत्त शासन प्रणाली विकसित कर बड़ी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया था। डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है कि सम्राट गुप्त ने यद्यपि भारत में बहुत बड़ा साम्राज्य पाया तथा एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना की परन्तु उसने भी ग्राम समाज के प्रति अहस्तक्षेप की नीति का पालन किया। उस समय का प्रत्येक गाँव अपने विषय में स्वतन्त्र तथा स्वायत्तशासी था। प्रत्येक गाँव में अपनी

सभा होती थी जो गाँव से सम्बन्धित सभी विषयों पर वाद-विवाद करती थी। समाज में सुव्यवस्था के लिए नियम बनाये गये और उनको तोड़ने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था की गयी। सभा गाँव के अनेक रूपी कार्यों का केन्द्र थी। गुप्त काल में भी पंचायत व्यवस्था की गयी। सभा गाँव के अनेक रूपी कार्यों का केन्द्र थी। गुप्त काल में भी पंचायत व्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया।

### 5.2.4 राजपूत काल में ग्राम पंचायत

राजपूत काल में ग्राम पंचायतों का महत्व कम हो गया, क्योंकि उन पर भी सामान्तों की अधिकार-सत्ता छा गयी। सामान्तगण न केवल स्थानीय शासन को कम महत्व देते थे बल्कि वे केन्द्रीय शासन से नियन्त्रण मुक्त होने का भी प्रयत्न करते रहते थे। ग्राम शासन दक्षिण भारत में जितना संगठित था उतना उत्तर भारत में नहीं था। तत्कालीन शासन (राज्य के विशाल होने पर) प्रान्तों, जिलों, अधिष्ठानों और गांवों में विभक्त होता था। इस दृष्टि से राजपूत कालीन पद्धति गुप्त कालीन शासन पद्धति पर ही आधारित थी। राजपूतों के शासन काल के पश्चात सल्तनत शासन काल में भी शासन की सबसे छोटी इकाई गांव थे। गांवों का प्रबन्धभार लम्बरदारों, पटवारियों, पंचायतों आदि पर था। लम्बरदार शान्ति बनाये रखता था और भूमिकार एकत्रित करने में सहायता देता था। इस प्रकार गांवों को अपने मामलों में काफी स्वतन्त्रता मिली हुई थी।

### 5.2.5 मूगल काल में ग्राम पंचायत

भारतीय शासन के मुगलकालीन इतिहास के पन्नों को पलटने से यह प्रतीत होता है कि इस काल में भी देश में स्थानीय शासन विद्यमान था। मुगल काल में गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई थे। परगने गाँवों में विभाजित थे। गाँव के प्रबन्ध पंचायतें करती थीं। यद्यपि मुस्लिम शासकों ने इन पंचायतों के अधिकार क्षेत्र में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं की फिर भी उन्हें कम या नष्ट करने का भी प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत यह ऐतिहासिक सच्चाई है कि शासन ने जहाँ तक बन पड़ा अपने हित में इन पंचायतों का खूब फायदा उठाया। ग्रामीण शासन व्यवस्था में जमीनदार या जागीदार व्यवस्था का विकास हुआ। इस प्रथा के अधीन समृद्ध किसान या तो स्वयं कर लेकर या अपने एजेटों के द्वारा कर वसूल कर अन्य ग्रामीणो पर नियन्त्रण रखते थे। व्यवहारतः ग्राम पंचायतों के क्रियाकलाप इन्हीं जमीनदारों या जागीरदारों द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा। इस प्रकार ग्रामीण शासन पूर्ण-रूपेण उनके सामन्ती चपेट में आ गया परन्तु उनका अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ, लेकिन पंचायतें विश्रृंखलित हो गयी।

**5.2.6 ब्रिटिश काल में ग्राम पंचायत**

यद्यपि भारत में ग्रामीण स्थानीय शासन की व्यवस्था अत्यन्त प्राचीन काल से है, फिर भी संगठन और कार्यप्रणाली के दृष्टि से उसका व्यवस्थित प्रादुर्भाव ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही हुआ। गाँवों के विकास की ओर सर्वप्रथम ध्यान 1863 ई0 में 'शाही स्वच्छता आयोग' की रिपोर्ट के बाद दिया गया। इस रिपोर्ट में भारतीय गाँवों के साफ-सफाई सम्बन्धी दुर्दशा के बारे में बताया गया था और कहा गया कि गांवों के स्वच्छता की ओर ध्यान देना आवश्यक है। इसके बाद विभिन्न राज्यों में ग्रामीण स्वच्छता अधिनियम पारित किये गये। 14 दिसम्बर 1870 को लार्ड मेयो ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण और स्वायत्त सत्ताशासी संस्थाओं के गठन के लिए कौंसिल में प्रस्ताव पारित करवाया। यह ग्रामीण क्षेत्रों में स्वायत्त शासन स्थापित करने का पहला प्रयास था। इसका उद्देश्य प्रशासनि क्षमता को बढ़ाना तथा वित्तीय साधन जुटाना था। 1907 ई0 में चार्ल्स हाबहाऊस की अध्यक्षता में 'रायल कमीशन' की नियुक्ति की गयी। जिसकी रिपोर्ट 1909 ई0 में प्रकाशित हुई। आयोग का यह निष्कर्ष था कि स्वायत्त शासन की संस्थाएं सफल नहीं हो रही हैं, जिसका कारण निर्वाचन का अभाव, वित्तीय उत्तरदायित्व की कमी तथा संस्थाओं के कर्मचारियों पर नियन्त्रण का शैथिल्य था।

कमीशन का विचार था कि स्वायत्त शासन के संस्थाओं की शुरूआत ग्राम स्तर से होनी चाहिए न कि जिला स्तर से जैसा कि प्रचलन में था। उसका यह भी विचार था कि पंचायतें ग्रामीण विकास व दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों के अलावा न्याय सम्बन्धी कार्य भी करें। जिससे लोगों को कोर्ट कचहरी से दूर रखा जा सके। आयोग ने सिफारिश की कि ग्रामीण जनता अपने प्रतिनिधि स्वयं चुनें। फौजदारी व दीवानी मुकदमें सुनने के अलावा गांव की सफाई, तालाब, कुएं एवं सड़कों का निर्माण, प्राथमिक शिक्षा आदि पंचायतों के काम में शामिल किये गये।

इस बात को समझते हुए कि वित्तीय साधनों के अभाव में कार्य सौंपने का कोई अर्थ नहीं हैं। आयोग ने पंचायतों की वित्तीय स्थिति सुधारने और उनके लिए आय के साधन जुटाने के लिए निम्न सुझाव दिये-

1. भूमि कर (जिसे जिला बोर्डों द्वारा लगाया जाता है) का एक हिस्सा ग्राम पंचायतों को दिया जाय।
2. जिला बोर्ड तथा जिलाधीश द्वारा स्थानीय सुधार के लिए विशेष अनुदान दिया जाय।
3. तालाबों व बाजार आदि से प्राप्त आय पंचायतों को मिले।
4. उन मुकदमों की मामूली फीस भी रखी जाय, जिनकी सुनवाई ग्राम पंचायत करे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कमीशन की सिफारिशें पंचायतों को वास्तव में जन प्रतिनिधित्व की संस्थाऐं बनाने और उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत करने की दिशा में सराहनीय कदम था। लेकिन आयोग की सिफारिषें कागज

तक ही सीमट कर रह गयी और उसका कोई नतीजा नहीं निकला, क्योंकि सरकार ने कमीशन के प्रतिवेदन पर कोई निर्णय नहीं किया।

स्वतन्त्रता पूर्व महात्मा गांधी ने गाँवों का शासन गाँव स्तर पर चलाये जाने तथा पंचायती राज कायम करने की बात स्पष्ट की, जो कि उनके इस कथन से स्पष्ट है कि ''हमारे गाँवों की सेवा करने से ही सच्चे स्वराष्ट्र की स्थापना होगी, अन्य सभी प्रयत्न निरर्थक होगें। अगर गाँव नष्ट हो जायेगा तो हिन्दुस्तान नष्ट हो जायेगा, वह हिन्दुस्तान ही नहीं रह जायेगा, दुनिया में उसका अपना मिशन खत्म हो जायेगा।'' गांधी जी कमोवेश ग्राम पंचायतों को स्थानीय स्वशासन की आदर्श और आत्मनिर्भर इकाई बनाना चाहते थे, पर यह सोच बाकी कांग्रेस नेतृत्व की नहीं रही। अतः राष्ट्रीय नेतृत्व ब्रिटिश प्रशासकों पर पंचायती व्यवस्था के क्रियान्वयन के लिए प्रभावशाली ढंग से कभी जोर नहीं डाल सका। इस प्रकार ब्रिटिश काल में पंचायतों को सशक्त बनाने के लिए न तो राजनैतिक इच्छा शक्ति थी और न ही प्रशासनिक सहयोग। इस पूरे दौर में यदि कही पंचायतें गठित भी हुई तो उसमें नौकरशाही का बोलबाला रहा। ब्रिटिश काल में गाँवो की राजनीतिक इच्छा को नष्ट करने का प्रयास शुरु था। इस काल में जो न्याय व्यवस्था थी उसमें गाँव के झगड़े दूर न्यायालय में ले जाये जाने लगे। इससे गाँव के निर्भरता में कमी आयी। गाँव के मुखिया, लेखपाल व अन्य अधिकारियों को जो गाँव के प्रतिनिधि माने जाते थे, वेतन देने की प्रथा शुरु की गयी। जिसके कारण ग्रामीण समुदाय ने अपने नेताओं को खो दिया। इसके अतिरिक्त शिक्षा-प्रणाली एवं औद्योगीकरण ने भी ग्रामीण समुदाय को शहरों की ओर आकर्षित करना प्रारम्भ किया। जिसके परिणामस्वरूप गाँव के स्वायत्ता और आत्मनिर्भरता में कमी आयी।

**5.2.7 स्वतन्त्र भारत में ग्राम पंचायत**

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन का विधिवत् शुभारम्भ 1947 में संयुक्त प्रान्त पंचायत राज अधिनियम के रूप में हुआ। कांग्रेस ने पंचायती राज की स्थापना से शीघ्र ही अपने नीतियों एवं व्यवहारों को प्रभावित करना शुरू किया। 1948 में केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री की पहल पर राज्यों के स्वायत्त मन्त्रियों का एक सम्मेलन राजधानी में आयोजित किया गया। इसको सम्बोधित करते हुए तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री ने कहा कि मुझे विश्वासहै कि भारत में इस प्रकार का सम्मेलन इससे पूर्व कभी नहीं बुलाया जा सका, क्योंकि स्थानीय स्वायत्त शासन पूर्ण तथा प्रान्तीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र में आता था। सम्मेलन का उद्-घाटन करते हुए प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा कि ''स्थानीय स्वायत्त शासन सच्ची प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का आधार है और होना भी चाहिए, क्योंकि हमलोगों की आदत हो गयी है कि हम प्रजातन्त्र को शासन के ऊँचे स्तर पर ही सोचते हैं, नीचे

के स्तरों पर नहीं। जब तक नीचे की इन आधारशिलाओं पर प्रजातन्त्र का निर्माण और विकास नहीं किया जाता तब तक वह उच्च स्तरों पर कदापि सफल नहीं हो सकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात संविधान निर्माता इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि चूकि देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों मे निवास करती है। इसलिए ग्रामीण स्थानीय शासन को संविधान के भाग चार में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अन्तर्गत अनुच्छेद- 40 में स्थान दिया गया। इसके लिए संविधान के अनुच्छेद-246 (3) में देश के प्रत्येक राज्य की विधानसभाओं को यह अधिकार दिया गया कि वह स्थानीय शासन से सम्बद्ध व्यवस्थाओं के लिए कानून पारित करें, जिससे वे स्वायत्त शासन के इकाई के रूप में कार्य कर सके।

भारतीय संविधान में पंचायती राज के महत्व को स्वीकार करते हुए हर्ष देव मालवीय ने कहा है कि भारतीय संविधान में पंचायत के विचार को संलग्न करना अत्यन्त महत्व की घटना थी, जिसका राज्य की बनावट पर बड़ा सुदुरगामी प्रभाव होने वाला था। पंचायती राज की अवधारणा को संविधान में शामिल करने का पूरे देश भर में स्वागत किया गया। इसके द्वारा उस सिद्धान्त को मान्यता दे दी गयी जो पहले केवल शब्दों तक सीमित था। राज्य के नीति निदेशक सिद्धातों में स्थान मिलने के बाद से ही भारत में ग्राम पंचायतों का संगठन किया जाने लगा और शीघ्र ही ये पंचायतें लोकप्रिय होने लगी। कांग्रेस पार्टी ने भी शीघ्र ही अपनी नीतियों एवं व्यवहारों को प्रभावित किया। पंचायती व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से ही तत्कालीन सत्तारुढ़ कांग्रेस पार्टी की कार्य समिति ने मई 1954 में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया, जिसकी संरचना इस प्रकार थी- यह कार्यकारिणी समिति विभिन्न राज्यों में पंचायती राज के स्थापना के महत्व को जानती है। यह न केवल प्राचीन भारत के परम्पराओं को बनाये रखने का एक तरीका है वरन यह आज की परिस्थितियों में भी उपयुक्त है। आधुनिक राज्य धीरे-धीरे केन्द्रीकरण की तरफ बढ़ते जा रहे हैं। इस प्रवृति को स्थानीय स्वायत्त सरकार की स्थापना करके संतुलित करना चाहिए, ताकि जनता स्वयं अपने शासन में भाग ले सके तथा सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओं जैसे- आर्थिक, न्यायिक में भी सक्रियता से योगदान कर सके। यह सबसे अच्छी प्रकार से तभी किया जा सकता है जबकि भारत के गांवों में पंचायतों का विकास किया जा सके। इन पंचायतों को न्यायिक कार्यो की भाँति प्रशासनिक कार्य भी सौंपे जायेंगे।

बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों में त्रिस्तरीय प्रणाली को स्वीकार किया गया। जिसमें सबसे नीचे के स्तर पर ग्राम पंचायत के स्थापना की बात की गयी। बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों के अनुरुप ही अधिकांश राज्यों ने ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायतों का गठन किया। किन्तु 1977 में गठित अशोक मेहता समिति ने तो अपनी सिफारिश में ग्राम पंचायत के अस्तित्व को ही समाप्त करने की संस्तुति की। इससे पंचायत व्यवस्था के मूल इकाई

के ही समाप्त होने का खतरा महसूस किया गया, इसलिए समिति के एक सदस्य सिद्धराज चड्ढा ने इस ओर संकेत करते हुए कहा कि, मुझे जिला परिषद व मंडल पंचायत से आपत्ति नहीं है, किन्तु समिति ने ग्राम सभा की कोई चर्चा नहीं की है, जबकि पंचायती राज संस्थाओं का धरातल तो ग्राम सभा को ही बनाया जाना चाहिए था।

1988 ई0 में कार्मिक लोक सेवा संघ एवं पेंशन मन्त्रालय के तत्वाधान में पी0के0 थुंगन की अध्यक्षता में गठित उप-संसदीय समिति ने भी पंचायतों के त्रिस्तरीय स्वरुप को बनाये रखने की सिफारिश की, जिसमें सबसे निचले स्तर पर ग्राम पंचायत की स्थापना की बात की गयी। इसके साथ ही साथ समिति ने यह भी कहा कि ग्राम पंचायत के न्यायिक कार्यों को पुनर्जीवित किया जाना चाहिए, जिससे साधारण विवाद ग्राम स्तर पर ही सुलझाये जा सकें।

73वें संविधान संसोधन अधिनियम 1992 द्वारा ग्राम पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इस संसोधन के पूर्व पंचायत व्यवस्था का प्रावधान राज्य के नीति निदेश कतत्वों के तहत किया गया था। जिसे लागू करना सरकारों के लिए बाध्यकारी नहीं था। जिसके कारण कभी-कभी इनके चुनावों को 10 से15 साल टालकर इनको निष्क्रिय बना दिया जाता था। लेकिन इस संसोधन के उपरान्त पंचायतों का गठन सरकारों के लिए संवैधानिक बाध्यता हो गया है। इस लिए अब इनके चुनावों को छः महीने से अधिक नहीं टाला जा सकता हैं। इसमें पंचायत व्यवस्था का सबसे निचला स्तर ग्राम पंचायत घोषित किया गया। यद्यपि के चुनाव की विधि निश्चित करने का अधिकार राज्यों के विधानमण्डलों को हैं। इसके द्वारा ग्राम पंचायतों के एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिया गया है। इस संसोधन के साथ 11वीं अनुसूची जोड़ी गयी है। इसमें कुल 29 विषयों का उल्लेख किया गया है। जिनका क्रियान्वयन गांव स्तर पर ग्राम पंचायतों द्वारा किया जाना है।

भारत सरकार ने संविधान के भाग-9 में उल्लिखित 73वें संविधान संसोधन की पांचवी अनुसूची में वर्णित अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों पर लागू करने के लिए कानून की मुख्य विशेषताओं पर सिफारिश करने हेतु दसवीं लोक सभा के सदस्य दिलीप सिंह भूरिया के अध्यक्षता में कुछ चुने हुए संसद सदस्यों और विशेषज्ञों की समिति जून 1994 में गठित की गयी। जिसने अपनी रिपोर्ट 1995 ई0 में सरकार को सौंपा। जिसमें कहा गया कि पांचवीं अनुसूची के अन्तर्गत वर्णित आदिवासी क्षेत्रों में ग्राम पंचायत और पंचायत संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार व स्वतंत्रता दी जाय। यदि किसी ग्राम पंचायत में एक से अधिक गाँव हों तो प्रत्येक गाँव की अपनी ग्राम सभा हो। पुलिस, आबकारी, वानिकी, राजस्व सम्बन्धी विभागों के निचले स्तर के कर्मचारियों की भूमिका आदिवासी क्षेत्रों में कम होनी चाहिए और उन्हें सम्बन्धित पंचायत के अधीन कार्य करना चाहिए। ग्राम सभा को ऐसी शक्तियां दी जानी चाहिए ताकि वे सामुदायिक भूमि, वन (आरक्षित वनों को छोड़कर) जल, हवा व

अन्य प्राकृतिक संसाधनों को विनियमित कर सके और उनका इस्तेमाल कर सकें। इन अधिकारों और कार्यों को प्रदान करने से पंचायतें सही मायने में 'स्वशासन की इकाई' के रूप में कार्य कर सकेंगी। स्वशासन के इस नूतन प्रयोग से ग्राम स्वराज का प्रसार होगा। इससे लोकतन्त्र को एक नयी दिशा मिलेगी। जिससे आम जन की सहभागिता का मार्ग प्रशस्त होगा। समिति के रिपोर्ट के आधार पर संसद ने दिसम्बर 1996 ई0 में एक विधेयक पारित किया। इस नये अधिनियम द्वारा पाचवीं अनुसूची के आदिवासी क्षेत्रों की पंचायत प्रणाली में ग्राम सभा को ज्यादा शक्तियां प्रदान की गयी है।

इस प्रकार यह देखने को मिलता है कि भारत में ग्राम पंचायतों की एक लम्बी परम्परा रही है। समय-समय पर इनके अधिकारों एवं दायित्वों का मूल्यांकन विभिन्न समितियों एवं संस्थाओं द्वारा किया गया। तद्रुसार इनके स्वरूप में परिवर्तन भी समय-समय पर किया गया। वर्तमान ग्राम पंचायतें उस लम्बी परम्परा के सीख का प्रतिफल कहीं जा सकती हैं, जो वर्तमान में ग्राम शासन की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य कर रही हैं।

## 5.3 ग्राम पंचायत की संरचना या संगठन

उत्तराखण्ड त्रिस्तरीय पंचायत राज संसोधन अधिनियिम संख्या- 8, सन् 2002 के द्वारा उत्तर प्रदेश ग्राम पंचायत विधि में संसोधन करते हुए व्यवस्था की गयी है कि 'उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1947' और 'क्षेत्र पंचायत एवं जिला पंचायत अधिनियम 1961' तथा उसके उपरान्त किये गये संसोधनों में जहाँ-जहाँ उत्तर प्रदेश आया है, वहाँ उत्तराखण्ड पढ़ा जायेगा। इसमें ग्राम पंचायत की संरचना हेतु व्यवस्था की गयी है कि पवर्ततीय क्षेत्र में न्यूनतम 03 सौ या अधिकतम 01 हजार तथा मैदानी क्षेत्र में न्यूनतम 01 हजार तथा अधिकतम 05 हजार मतदाताओं वाले किसी ग्राम क्षेत्र को ग्राम पंचायत घोषित किया जायेगा। ग्राम पंचायत के निर्वाचन की जिम्मेदारी राज्य निर्वाचन आयोग की होगी। 18 वर्ष की आयु प्राप्त व्यक्ति ग्राम पंचायत का मतदाता होगा। इसके लिए सम्पूर्ण ग्राम पंचायत के मतदाताओं की मतदाता सूची राज्य निर्वाचन आयोग के देखरेख में तैयार की जायेगी। ग्राम पंचायत के प्रधान तथा सदस्यों का चुनाव ग्राम पंचायत के इन्हीं मतदाताओं द्वारा किया जायेगा। ग्राम पंचायत प्रधान पद तथा सदस्य पद के प्रत्याशियों में सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले व्यक्ति को ग्राम पंचायत का प्रधान या सदस्य निर्वाचित घोषित किया जाता है। प्रधान ही ग्राम पंचायत का अध्यक्ष होता है। उप-प्रधान को निर्वाचित करने का कार्य ग्राम पंचायत के सदस्य बहुमत के आधार पर करते हैं, जो ग्राम पंचायत का उपाध्यक्ष होता है। इसके अतिरिक्त ग्राम पंचायत के कार्यों को सुचारु रूप से संचालित करने तथा उसकी देख-रेख के लिए विभिन्न समितियों का भी गठन किया जाता है।

ग्राम पंचायत प्रधान, उप-प्रधान तथा सदस्यों के पदो को अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े-वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षित किया जाता है, किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि इनके लिए पदों का आरक्षण क्रमश: 21, 02 तथा 27 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। कुल पदों का एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित होता है। यह आरक्षण अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के आरक्षित पदों में भी उस वर्ग की महिलाओं को प्राप्त होता हैं। आरक्षित पदों को प्रत्येक निर्वाचन के पूर्व चक्रानुक्रम में परिवर्तित कर दिया जाता है। अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़े वर्गों के लोगों को आरक्षण का लाभ तभी तक मिलेगा जब तक कि उनको संविधान द्वारा आरक्षण प्रदान किया जायेगा।

ग्राम पंचायत का कार्यकाल उसके प्रथम बैठक के दिनांक से पांच वर्ष होता है। ग्राम पंचायत का चुनाव उसका कार्यकाल समाप्त होने के छः माह के भीतर अनिवार्य रूप से करा लिया जायेगा। यदि किसी ग्राम पंचायत को किसी कारणवश उसके कार्यकाल से पूर्व विघटित कर दिया जाता है तो अगली पंचायत का चुनाव उसके शेष कार्यकाल के लिए ही किया जायेगा। यदि कार्यकाल के अवसान के पूर्व किन्हीं कारणों से चुनाव नहीं कराया जा सका तो राज्य सरकार पंचायतों के कृत्यों का सम्पादन करने के लिए प्रशासक नियुक्त कर सकेगी।

## 5.4 ग्राम पंचायत और कर्मचारी तथा राज्य सरकार

ग्राम पंचायत में एक सचिव होता है। इसकी नियुक्ति राज्य सरकार के द्वारा की जाती है। इसके अतिरिक्त खण्ड विकास स्तर पर सहायक विकास अधिकारी होता है। जो समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा निश्चित कर्तव्यों का पालन करते हुए ग्राम पंचायत का पथ प्रदर्शन, नियमन तथा नियन्त्रण करता हैं।

राज्य सरकार पंचायतों के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। वह ग्राम पंचायत के क्षेत्राधिकार को सीमित या परिवर्तित कर सकती है। वह किसी ग्राम पंचायत का दूसरे ग्राम पंचायत में विलय कर सकती है, उसे समाप्त कर सकती है। उसका नियन्त्रण पंचायत के कार्य के हर क्षेत्र में फैला हुआ हैं जैसे कर्मचारियों की नियुक्ति, अभिलेखों का प्रबन्ध, वित्तीय प्रशासन, चुनाव इत्यादि। यदि कोई ग्राम पंचायत अपने निर्धारित दायित्वों का निर्वहन करने में असफल रहती तो राज्य सरकार उसे अपना कोई कर्मचारी नियुक्त करके पूरा करा सकती है और उसका खर्च पंचायत से वसूल कर सकती है। राज्य सरकार ग्राम पंचायत से आवश्यक रिर्पोट तथा अभिलेख मांग सकती है। यदि किसी ग्राम पंचायत के किसी प्रस्ताव को कार्यान्वित करने से सार्वजनिक जीवन, स्वास्थ्य, अथवा सम्पत्ति के लिए खतरा उत्पन्न होता है तो उस प्रस्ताव को स्थागित कर सकती है। विशेष परिस्थितियों में वह किसी ग्राम प्रधान को उसके पद से हटा सकती है। यदि कोई ग्राम पंचायत अपने शक्ति का दुरूपयोग कर रही हो अथवा अपने निर्धारित कर्तव्यों

का निर्वहन करने में लगातार असफल रहती है और जनहित में उसका बना रहना वांछनीय न रह जाय तो राज्य सरकार उसे निलम्बित कर सकती है।

## 5.5 ग्राम पंचायत की वित्तीय व्यवस्था

भारत में ग्राम पंचायतों का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन काल से है लेकिन यह सर्वविदित है कि इन संस्थाओ की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ नहीं रही है जबकि इनकी सफलता काफी हद तक इनके वित्तीय साधनों और शक्तियों पर निर्भर है। इसलिए वर्तमान समय में प्रत्येक ग्राम पंचायत के अधिकारों एवं कार्यों के सुचारू रूप से संचालित करने के लिए प्रत्येक ग्राम पंचायत में एक ग्राम निधि की स्थापना की गयी है। जिसमें मुख्य रूप से दो स्रोतों से वित्त की व्यवस्था की जाती है। प्रथम राज्य सरकार ग्राम पंचायत को ग्राम के विकास हेतु कुछ अनुदान देती है तथा द्वितीय ग्राम पंचायतों को कुछ कर लगाने का भी अधिकार है जिससे वह अपनी वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा कर सके। ग्राम निधि में निम्नलिखित धनराशि जमा की जायेगी-

1. इस अधिनियम के अधीन लगाये गये किसी कर की आय।
2. राज्य सरकार द्वारा ग्राम पंचायत को दी गयी समस्त धनराशियां।
3. वे धनराशियां, जिन्हें न्यायालय या किसी अन्य नियम के अन्तर्गत ग्राम निधि में जमा करने का निर्देश दिया गया हो।
4. 'विलेज पंचायत एक्ट' के अधीन पहले से विद्यमान विलेख पंचायत के नाम जमा अवशेष(Balance) यदि कोई हो।
5. धारा- 104 के अधीन प्राप्त समस्त धनराशि।
6. ग्राम पंचायतों के सेवकों द्वारा संग्रहित (Collected) धूल, गन्दगी, गोबर, कूडा-करकट, पशुओं के शव आदि के विक्री से प्राप्त धन।
7. नजूल की सम्पत्ति और लगान का हिस्सा, जो राज्य सरकार ग्राम निधि में जमा करने का निर्देश दे।
8. जिला पंचायत अथवा किसी अन्य स्थानीय प्राधिकारी द्वारा ग्राम निधि में अंशदान के रूप में दी गयी धनराशि।
9. ऋण अथवा दान के रूप में प्राप्त धनराशियां।
10. ऐसी अन्य धनराशियां जो राज्य सरकार की किसी सामान्य अथवा विशेष आज्ञा द्वारा ग्राम निधि को अभ्यर्पित की जाय।

11. समस्त धनराशियां, जो धारा- 24 अथवा किसी अन्य विधि के अधीन किसी व्यक्ति अथवा निगम अथवा राज्य सरकार से ग्राम पंचायत को प्राप्त हुई हो।
12. राज्य की संचित निधि से सहायता अनुदान के रूप में प्राप्त समस्त धनराशियां।

ग्राम निधि में से धन का समस्त आहरण और उसका वितरण ग्राम पंचायत के प्रधान और सचिव द्वारा संयुक्त रूप से किया जायेगा।

## 5.6 ग्राम पंचायत के अधिकार और कार्य

ग्राम पंचायत को प्रायः वे सभी कार्य करने का अधिकार दिया गया है, जिन्हें करने की समान्यतः एक स्थानीय प्रशासन से अपेक्षा की जाती है। ग्राम पंचायत मुख्यतः निम्नलिखित कृत्यों का सम्पादन करेगी-

1. कृषि और बागवानी का विकास और प्रोन्नति।
2. बंजर भूमि और चारागाह भूमि का विकास और उनके अनधिकृत कब्जों की रोकथाम करना।
3. भूमि विकास, भूमि सुधार और भूमि संरक्षण में सरकार और अन्य एजेंसियों की सहायता व चकबन्दी में सहायता करना।
4. लघु सिंचाई परियोजनाओं से जल वितरण में सहायता करना। लघु सिंचाई परियोजनाओं का निर्माण, मरम्मत तथा उनकी सुरक्षा में सहायता करना।
5. पशुपालन, दुग्ध उद्योग, मुर्गीपालन को ग्रामीण क्षेत्र में बढ़ावा देना और पशुओं की नस्लों को सुधारने का प्रत्यन करना।
6. गांव में मछली पालन के विकास में सहायता करना।
7. सड़कों तथा सार्वजनिक भूमि के किनारे वृक्षारोपण करना और उनकी रक्षा करना।
8. लघु वन उत्पादों की उन्नति और विकास करना।
9. लघु उद्योगों के विकास में सहायता करना, तथा स्थानीय बाजारों के उन्नति का प्रयत्न करना।
10. कृषि और अन्य उद्योगों के विकास में सहायता करना, ग्रामीण क्षेत्र में कुटीर उद्योगों की उन्नति को प्रोत्साहन देना।
11. ग्रामीण आवास कार्यक्रमों को लागू करने में सहायता करना तथा आवास स्थलों का वितरण और उनसे सम्बन्धित अभिलेखों को सुरक्षित रखना।

**12.** पीने, कपड़े धोने, स्नान करने के लिए जल की व्यवस्था करने हेतु कुओं, तालाबों का निर्माण कराना, उनकी मरम्मत और सुरक्षा करना और पीने के पानी के लिए अन्य स्रोतो का विकास करना।

**13.** ईधन और चारा से सम्बन्धित पौधों का विकास करना तथा चारा भूमि के अनियमित अन्तरण पर नियन्त्रण रखना।

**14.** सड़कों, पुलियों, पुलों, नौका घाट, जल-मार्ग और संचार के साधनों का विकास करना तथा सार्वजनिक स्थलों से अतिक्रमणों को हटाना।

**15.** सार्वजनिक स्थलों तथा मार्गों पर प्रकाश की व्यवस्था और उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध करना।

**16.** ग्राम में गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के कार्यक्रमों का विकास, प्रोन्नति और सुरक्षा का प्रबन्ध करना।

**17.** गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को लागू करना।

**18.** प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालय के विकास में सहायता करना और शिक्षा के प्रति सार्वजनिक चेतना पैदा करना।

**19.** तकनीकी प्रशिक्षण, व्यवसायिक शिक्षा, ग्रामीण कला और शिल्पकारों की उन्नति में सहायता करना।

**20.** प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से प्रौढ़ साक्षरता की प्रोन्नति करना।

**21.** सामाजिक और सांस्कृतिक क्रियाकलापों की उन्नति करना, विभिन्न त्यौहारों पर सांस्कृतिक संगोष्ठियों का आयोजन करना तथा खेलकूद के लिए ग्रामीण क्लबों की स्थापना करना और उनकी सुरक्षा करना।

**22.** पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना करना तथा उनकी व्यवस्था व सुरक्षा करना।

**23.** पंचायत की भूमि पर मेलों बाजारों तथा हाटों को लगवाना एवं विनियम करना।

**24.** ग्रामीण स्वच्छता की व्यवस्था करना, महामारियों तथा बीमारियों की रोकथाम करना, मनुष्य तथा पशुओं को टीका लगवाना, आवारा पशुओं को रोकना, जन्म, मृत्यु तथा विवाह का लेखा-जोखा रखना।

**25.** परिवार कल्याण कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए व्यवस्थाओं को लागू करने में कर्मचारियों की मदद करना।

**26.** ग्राम पंचायत क्षेत्र के विकास के लिए योजना तैयार करना और उनके क्रियान्वयन में सहयोग करना।

**27.** ग्राम पंचायत स्तर पर महिला एवं बाल विकास कार्यक्रमों को लागू करने में सहायता करना, बाल स्वास्थ्य तथा पोषण कार्यक्रमों की उन्नति करना।

**28.** वृद्धावस्था और विधवा पेंशन योजनाओं में सहायता करना, विकलांगों तथा मानसिक रूप से मन्दबुद्धि के व्यक्तियों के कल्याण को सम्मिलित करते हुए समाज कल्याण कार्यक्रमों में भाग लेना।

**29.** अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गों के लिए विशेष कार्यक्रमों को लागू करने में सहायता करना। सामाजिक न्याय के लिए योजनाऐं तैयार करना और उनको लागू करने में सहायता करना।

**30.** आवश्यक वस्तुओं के वितरण में भाग लेना और लोगों में सार्वजनिक चेतना पैदा करने का प्रयत्न करना।

इनके अतिरिक्त राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए जैसी उसमें विनिर्दिष्ट की जाय कुछ कार्यो को ग्राम पंचायतों को समनुदेशित कर सकती है जिसमें प्रमुख है-

- पंचायत क्षेत्र में स्थित किसी वन की व्यवस्था करना और सुरक्षा की व्यवस्था करना।
- पंचायत क्षेत्र के भीतर स्थित सरकार की बंजर भूमि, चारागाह भूमि या खाली पड़ी भूमि की व्यवस्था करना।
- किसी कर या भू-राजस्व का संग्रह और सम्बन्धित अभिलेखों का अनुरक्षण।

## 5.7 ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायत की भूमिका

भारत गांवों का देश है। अतः भारत का विकास तभी होगा जबकि भारतीय गांवों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाय। इसी उद्देश्य से स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात से ही गांवों का शासन गांव के स्तर पर संचालित करने दिशा में मजबूत पहल प्रारम्भ हुई। ग्रामीण विकास की दिशा में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रथम प्रयास सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा के माध्यम से प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात समय-समय पर गांवों के विकास की व्यवहारिकता की जांच करने के लिए विभिन्न समितियों की स्थापना की गयी, जिनकी संस्तुतियों के आधार पर ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाएं संचालित की जाती रही है।

ग्रामीण क्षेत्रों के महिलाओं और बच्चों के उत्थान को दृष्टिगत रखकर 1983-84 में एकीकृत ग्राम विकास योजना के उपयोजना के रूप में महिलाओं एवं बच्चों का उत्थान कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया, इसमें गरीबी-रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली 10-15 महिलाओं का समूह बनाकर उन्हें इच्छित व्यवसायों में प्रशिक्षित कर आय में बृद्धि के लिए स्वावलम्बी बनाया जाता था। इसके लिए उन्हें 25 हजार रूपये 'रिवाल्विंग फंड' की राशि उपलब्ध करायी जाती थी।

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या को दूर करने, स्थायी प्रकृति की सामुदायिक परिसम्पत्तियां सृजित करने एवं ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन स्तर को बेहतर बनाने के उद्देश्य से वर्ष 1980-81 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा वर्ष 1983-84 से ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये थे। रोजगार कार्यक्रमों की गुणवत्ता में सुधार लाने तथा प्रत्येक गाँव पंचायत को विकसित करने के उद्देश्य से उपरोक्त योजनाओं को समाप्त कर वर्ष 1989-90 में जवाहर रोजगार योजना प्रारम्भ की गयी। जिसमें मिट्टी की सड़क, खडण्जा, नाली, हैण्डपम्प, वृक्षारोपण, पंचायत भवन, साफ-सफाई आदि कार्य किये जाते थे।

गरीबी-रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले ऐसे निर्धन व्यक्तियों जिन्हें वास्तव में रोजगार की आवश्यक ता हो रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 02 अक्टूबर 1983 में सुनिश्चित रोजगार योजना का सूत्रपात किया गया। इस योजना के अन्तर्गत जल संरक्षण, भू-संरक्षण, मेडों द्वारा अवरोध, वनारोपण, कृषि, बागवानी, वन, चारागाह, सिचाई, सड़क, प्राथमिक स्कूलों में भवनों का निर्माण, आगनबाड़ी के लिए भवनों का निर्माण आदि कार्य किया जाना था।

वर्तमान में मनरेगा के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र के समस्त विकास कार्यों को गांवों के जाबकार्ड धारक मजदूरों से कराने का निश्चय किया गया है। इस प्रकार हम कह सकते है वर्तमान में ग्राम पंचायत ग्रामीण विकास के सबसे सशक्त साधन के रूप में कार्य कर रही है। आज ग्राम पंचायत के बिना ग्रामीण विकास की कल्पना करना आकाश कुसुम चुनने के समान होगा।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. ऋग्वैदिक काल में ग्राम के अधिकारी को क्या कहा जाता था?
2. रायल कमीशन का गठन कब किया गया था?
3. ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था संविधान के किस भाग में गयी है?
4. बलवन्त राय मेहता समिति का गठन कब किया गया था?
5. 73वां संविधान संसोधन किससे सम्बन्धित है?
6. क्या उत्तराखण्ड में पंचायत की त्रिस्तरीय व्यवस्था पायी जाती है?
7. ग्राम पंचायत का चुनाव उसका कार्यकाल समाप्त होने के कितने दिनों के भीतर बाध्यकारी रूप से आवश्यक है?
8. ग्राम निधि से पैसों का आहरण एवं वितरण कौन करता है ?

**9.** पंचायत व्यवस्था की सबसे निचली इकाई कौन है ?

## 5.8 सारांश

भारत की 80 प्रतिशत आबादी गांवों में निवास करती है, जिनके विकास का उत्तरदायित्व अत्यन्त प्राचीन काल से गांव पंचायतो पर है। इसलिए इनका अस्तित्व वैदिक काल से लेकर अब तक किसी न किसी रूप में बना हुआ है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही महात्मा गांधी के द्वारा गांवों का शासन गांव स्तर पर संचालित करने का प्रबल समर्थन किया। गांधी जी के विचारों को दृष्टिगत रखकर ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गांवों को स्वशासन के इकाई के रूप में स्थापित करने का दायित्व संविधान के अनुच्छेद- 40 (राज्य के नीति निदेश क तत्वों) के आधीन राज्यों को दिया गया। इनको मजबूत करने के उद्देश्य से समय-समय पर विभिन्न समितियों का गठन किया गया। जिनकी संस्तुतियों के अनुरूप वर्तमान ग्राम पंचायत की व्यवस्था ग्रामीण विकास का प्रबल साधन बन चुकी है। आज गांव पंचायत के विकास की कोई कल्पना गांव पंचायत से हटकर नहीं की जा सकेगी। इसलिए उत्तराखण्ड त्रिस्तरीय पंचायत राज संसोधन अधिनियम संख्या-08, सन् 2002 में पारित किया गया। जिसके द्वारा पूर्व में निर्मित सभी अधिनियमों में संसोधन करके उत्तराखण्ड के परिस्थितियों के अनुकुल ग्राम पंचायत को विकास की धुरी के रूप में स्थापित करने का सम्पूर्ण प्रयास किया गया है। यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं होगा कि भविष्य में ग्राम के विकास की कोई योजना ग्राम पंचायत से पृथक होकर नहीं बनायी जा सकेगी। अर्थात ग्राम पंचायत ग्रामीण विकास का अतीत, वर्तमान और भविष्य प्रतीत होने लगा है। इसके लिए अधिनियमों के द्वारा ग्राम पंचायत को इतना अधिकार दिया जा चुका है, जिससे वे अपने विकास के दायित्वों का बखूबी निर्वहन करते हुए ग्रामीण विकास के सपनो को साकार करती हुई प्रतीत हो रही है।

## 5.9 शब्दावली

वैदिक- वेदों के समय का, महाकाव्य- किसी महापुरूष या उच्च कुलोदभव महापुरूष के जीवन का आद्यन्त वृतान्त

स्वतन्त्र- जो अपने नियमों द्वारा संचालित होता हो, अधिकार- सामाजिक जीवन की वह परिस्थिति जिसमें व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त हो, संस्कृति- सभ्य जाति के सदाचार के लक्षण को संस्कृत कहा जाता है, स्वराज्य- अपना राज्य, नीति निदेशक- नीति के निर्धारण हेतु मार्ग-दर्शक, कार्य कारिणी- किसी कार्य को सम्पादित करने के लिए कुछ प्रमुख व्यक्तियों की समिति, गणराज्य- जिस राज्य का प्रमुख प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप

से जनता द्वारा चुना जाता है, संवैधानिक- संविधान के व्यवस्थाओं के अनुकुल, अधिनियम-किसी नियम या विधि के अधीन बनाया गया नियम या उपविधि

## 5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** ग्रामिक , **2.** 1901 ई0 में, **3.** भाग- 4, **4.** 1956, **5.** ग्रामीण पंचायतों से, **6.** हाँ , **7.** छः माह, **8.** ग्रामप्रधान और सचिव दोनों, **9.** ग्राम पंचायत

## 5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1947, हिन्द पब्लिशिंग हाउस, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद।
2. उत्तरांचल संसोधन अधिनियम- 7 और 8, सन् 2002,
3. हैबले ई0जी0 द्वारा उद्धृत पंचायती राज, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।
4. के0के0 शर्मा, भारत में पंचायती राज, कालेज बुक डिपो, जयपुर।
5. अवध नारायण दूबे, पंचायती राज का बदलता स्वरूप, मिश्रा ट्रेडिंग कार्पोरेशन, वाराणसी।


## 5.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. के0के0 शर्मा, भारत में पंचायती राज, कालेज बुक डिपो, जयपुर।
2. अवध नारायण दूबे, पंचायती राज का बदलता स्वरूप, मिश्रा ट्रेडिंग कार्पोरेशन, वाराणसी।


## 5.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में ग्राम पंचायतों के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त उल्लेख करें।
2. ग्राम पंचायत के अधिकार एवं कार्यों का उल्लेख करें।
3. ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायत की भूमिका का उल्लेख करें।

# इकाई- 6 क्षेत्र पंचायत

## इकाई की संरचना


6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 क्षेत्र पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

6.2.1 स्वतन्त्रता पूर्व क्षेत्र पंचायत (पंचायत समिति)

6.2.2 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद क्षेत्र पंचायत

6.3 क्षेत्र पंचायत की संरचना

6.4 क्षेत्र पंचायत, राज्य सरकार और कर्मचारीगण

6.5 क्षेत्र पंचायत की वित्तीय व्यवस्था

6.6 क्षेत्र पंचायत के कार्य (अधिकार) और दायित्व

6.6.1 क्षेत्र पंचायत के कार्य

6.6.2 क्षेत्र पंचायत के दायित्व

6.7 ग्रामीण विकास और क्षेत्र पंचायत

6.8 सारांश

6.9 शब्दावली

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.13 निबन्धात्मक प्रश्न


## 6.0 प्रस्तावना

भारत में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं अत्यन्त प्राचीन काल से देखने को मिलती हैं जो कई स्तरों पर विभाजित थीं। इनके मध्य समन्वय बनाये रखने के लिए तभी से मध्यवर्ती संस्थाओ का अस्तित्व भी देखने को मिलता है। मानव समाज के विकास के साथ-साथ इसका स्वरूप भी परिस्कृत होता रहा है। प्राचीन काल में ये संस्थाऐं सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई थीं और इनकी कार्यप्रणाली अत्यन्त प्रभावशाली तथा सक्रिय थीं। मानव

जाति के प्रारम्भिक सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में देखने पर ये अत्यन्त कौतूहल पूर्ण प्रतीत होती है। वर्तमान प्रजातान्त्रिक व्यवस्थाओं के सफल संचालन के लिए स्वतन्त्र स्थानीय संस्थाओं का अस्तित्व अत्यन्त आवश्यक है।

1952 ई0 में प्रारम्भ किये गये सामुदायिक विकास कार्यक्रम का केन्द्र विकास खण्ड को ही बनाया गया था तथा इसके संचालन का दायित्व विकास खण्ड अधिकारी के कंधों पर डाल दिया गया था। किन्तु अपेक्षित जनसहयोग प्राप्त न होने के कारण यह कार्यक्रम सफल नहीं हुआ। इसलिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन व ग्रामीण स्थानीय शासन की इकाईयों को सुदृढ़ स्थिति प्रदान करने के उद्देश्य से बलवन्त राय मेहता समिति का गठन 1956 ई0 में किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट 1957 ई0 में प्रस्तुत करते हुए मध्य स्तर पर पंचायत समिति के स्थापना की प्रबल संस्तुति की।

समिति की सिफारिशों को दृष्टिगत रखकर ही सन् 1961 में ‘उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद अधिनियम’ उत्तर प्रदेश विधानमण्डल के द्वारा पारित किया गया। जिसका उद्देश्य, ग्राम स्तर के ऊपर विकास खण्ड स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद की स्थापना कर प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण सुनिश्चित करना था। बदलते परिदृश्य में 73वें संविधान संसोधन के उपरान्त सन् 1994 में ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत का पुनर्गठन किया गया है। वर्तमान में क्षेत्र पंचायत ग्रामीण विकास के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हो रही है। जनता के करीब होने के कारण यह संस्था लोकप्रिय भी होती जा रही है।

यह इकाई क्षेत्र पंचायत से सम्बन्धित है जो पंचायती राज व्यवस्था की मध्यवर्ती संस्था है। इसमें क्षेत्र पंचायत के प्राचीन स्वरूप के साथ-साथ इसकी वर्तमान संरचना (संगठन), वित्तीय व्यवस्था, अधिकार व कृत्य तथा सरकारी कर्मचारियों व सरकार से इसके सम्बन्धों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

## 6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- क्षेत्र पंचायत की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- पंचायत राज प्रणाली में क्षेत्र पंचायत की भूमिका को जान सकेंगे।
- क्षेत्र पंचायत के उद्देश्य तथा सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- क्षेत्र पंचायत की वर्तमान में व्यवहारिक स्थिति को समझ सकेंगे।
- ग्राम विकास में क्षेत्र पंचायत की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

## 6.2 क्षेत्र पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद भारत में मौजूद शासन-व्यवस्थाओं के स्वरूप और संचालन के सन्दर्भ में क्षेत्र पंचायत के इतिहास को जानने का प्रयास करते हैं।

### 6.2.1 स्वतन्त्रता पूर्व क्षेत्र पंचायत(पंचायत समिति)

क्षेत्र पंचायत (पंचायत समिति) की औपचारिक संरचना तो 'पंचायत समिति तथा जिला परिषद अधिनियम 1961' के द्वारा की गयी, लेकिन ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की मध्यवर्ती इकाईयों का अस्तित्व भी भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से देखने को मिलता है। वैदिक काल में ग्राम के अधिकारी को 'ग्रामीक' अनेक गांवों के अधिकारी को 'विषपति' तथा सबसे ऊपर के अधिकारी को 'गोप' कहा जाता था। गोप प्रायः राजा ही होता था। विषपति मध्यवर्ती संस्था का मुखिया होता था हिन्दू राजनीति के प्रसिद्ध लेखक डॉ0 के0पी0 जायसवाल के अनुसार ''प्रारम्भिक काल में जिस राष्ट्रीय जीवन एवं क्रियाओं का अभिलेख मिलता है, वे जनसभाओं तथा संस्थाओं द्वारा सम्पन्न की जाती थीं। ये संस्थाएं भी कई स्तरों पर निर्मित थीं।''

अथर्ववेद में देखने को मिलता है कि ग्रामसभा के अध्यक्षों का निर्वाचन होता था, जिनका कार्यक्षेत्र ग्राम तक ही सीमित एवं मर्यादित था, जिसमें जनशक्ति कम थी। जनशक्ति को बढ़ाकर बड़े-बड़े कार्यों का सम्पादन करने के उद्देश्य से अनेक ग्रामों को मिलाकर समिति बनाने की भावना विचारको में उठी। इस प्रकार अब तक जो संघीय शक्ति अनेक गांवों में बिखरी हुई थी, इस समिति के अन्तर्गत संगठित हो गयी। समिति के संगठन तक राजा के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की गयी थी। समिति के अन्तर्गत प्रत्येक ग्राम सभा के प्रतिनिधि बैठकर नियम बनाते थे। जिसके क्रियान्वयन के लिए कार्यकारिणी समिति अर्थात मन्त्रिमण्डल की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस प्रकार पंचायत की नीचे से ऊपर तक एक अटूट परम्परा प्राचीन काल से देखने को मिलती है। इसका पर्याप्त साक्ष्य वैदिक साहित्य, उपनिषदों एवं जातक कथाओं में भी विद्यमान है।

रामायण और महाभारत काल के साहित्य में भी इस प्रकार के सभाओं और समितियों का उल्लेख मिलता है। शासन के केन्द्रीय स्तर पर तत्कालीन समय में बड़े-बड़े साम्राज्यों के बाबजूद प्रशासन को सुविधा के दृष्टि से विभिन्न इकाईयों में विभक्त किया गया था। सबसे छोटी इकाई ग्राम था। जिसके ऊपर दस ग्राम, विषतिग्राम, शत ग्राम, सहस्रग्राम तथा राज्य थे। इन इकाईयों के अधिकारियों को क्रमश: ग्रामिक, विषतीय, शतग्रामी, अधिपति व राजा कहते थे। इन पदाधिकारियों का कर्तव्य लगान वसूल करना, अपराधियों को दण्डित करना व अपने कार्यक्षेत्र में शान्ति बनाये रखना था। मनु स्मृति के अनुसार ग्राम का अधिकारी ग्रामिक, दस गांव का अधिकारी दषिक, बीस

गांव का अधिकारी विषातीय, सौ गांवों का अधिकारी शतपाल तथा हजार गांव का अधिकारी सहस्रपति कहलाता था।

बौद्ध साहित्य में महात्मा बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व एवं उनके समय में महाजनपदों के अस्तित्व का पता चलता है। महात्मा बुद्ध के समय अनेक गणतन्त्रात्मक राज्य थे, जिनमें प्रशासन की वास्तविक शक्ति सभा में निहित होती थी जिसके सदस्य मिलकर राज्य की समस्याओं का समाधान करते थे। डॉ0 डी0डी0 शुक्ल ने लिखा है कि बौद्धकालीन गणराज्यों में भी सभा का महत्व कम नहीं था। सभा के कार्य बहुमत से होते थे। इस काल में राज्यों में महामात्य, बोहारिक, सूत्रधार, अष्टकुल, सेनापति, उपराजा आदि पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है और सम्भवत ये पदाधिकारी न्याय और प्रशासनिक दोनों प्रकार के कार्य करते रहे होंगे। इस काल के गणराज्यों में गांव की व्यवस्था गांव सभाओं द्वारा होती थी। इस प्रकार की संस्थाएं प्रत्येक स्तर पर मौजूद थीं। उस समय की स्थानीय लोकप्रिय संस्थाओं को अनेक नामों से पुकारा जाता था। उदाहरण के लिए कुल, गण, जाति, पुरा, ब्रत, श्रेणी, संघ, समुदाय, समूह, परिषद, चरण आदि।

मौर्यकाल में भी स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं काफी विकसित थी। शासन की सुविधा के लिए प्रान्तों के उप-विभाग किये गये थे, जो अर्थशास्त्र के अनुसार इस प्रकार थे- जनपद, द्रोणमुख, स्वार्वतिक, संग्राम तथा ग्राम/जनपद। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन व्यवस्था का पर्याप्त अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय स्थानीय शासन की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। चन्द्रगुप्त ने शासन में विकेन्द्रीकृत शासन प्रणाली अपनाकर बड़ी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया। डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है कि सम्राट चन्द्रगुप्त ने यद्यपि भारत में बहुत बड़ा साम्राज्य पाया तथा भारत में एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना की परन्तु उन्होंने भी स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाईयों के प्रति अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया। ये संस्थाएं अपने विषयों में स्वतन्त्र तथा स्वायत्तशासी होती थी।

राजपूत काल में स्थानीय शासन का महत्व कम हो गया, क्योंकि उन पर सामन्तों की अधिकार सत्ता छा गयी। सामन्तगण न केवल स्थानीय शासन को ही कम महत्व देते थे, बल्कि वे केन्द्रीय शासन से नियन्त्रण मुक्त होने का भी प्रयत्न करते रहते थे। तत्कालीन शासन(राज्य के विशाल होने पर) प्रान्तों, जिलों, अधिष्ठानों और ग्रामों में विभक्त होता था। शासन विकेन्द्रीकरण की भावना पर आधारित होने के कारण केन्द्रीय शक्ति को हमेशा खतरा बना रहता था।

स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं, फिर भी संगठन एवं कार्यप्रणाली के दृष्टि से उसका व्यवस्थित प्रादुर्भाव ब्रिटिश शासन के अन्तगर्त ही हुआ। 1882 ई0 में लार्ड रिपन द्वारा पारित प्रस्ताव स्थानीय स्वायत्त शासन आन्दोलन को नया बल प्रदान किया। इस प्रस्ताव से स्थानीय शासन को व्यवस्थित करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय बोर्डों का विस्तार करने में सहायता मिली। इसलिए इस प्रस्ताव को भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन का महालेख (मैग्नाकार्टा) कहा जाता है। 1883 ई0 में एक अधिनियम बनाकर पिछड़े इलाकों को छोड़कर प्रत्येक तहसील व जिले में एक लोकल बोर्ड की स्थापना की गयी। इस प्रकार लार्ड रिपन का प्रस्ताव भारतीय शासन को वास्तविकता एवं व्यवहारिकता के निकट लाने का प्रयास था, लेकिन इसे सफलता नहीं मिली। बाद में 1909 में शाही आयोग, 1919 में मांण्टेग्यू चैम्स फोर्ड रिपोर्ट आदि के रूप में ग्रामीण जनता की चेतना को जागृत करने का प्रयास किया गया। 1919 के अधिनियम के द्वारा पंचायतों को प्रान्तीय सरकारों सौंप दिया गया। इसी समय 1920-21 के आस-पास गांधी जी की ग्रामोद्योग योजना तथा एम0एन0 राय की जनता योजना महत्वपूर्ण थी।

1935 में भारत सरकार अधिनियम के पारित होने के पश्चात प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना हुई। जिससे प्रान्तों में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हुआ तथा देहाती क्षेत्रों में पंचायतों का निर्माण होने लगा और स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओं को अधिकाधिक लोकतन्त्रीय बनाये जाने की चेष्टा की गयी। किन्तु 1939 ई0 में प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों के त्याग-पत्र देने तथा द्वितीय विश्व युद्ध के कारण स्थानीय संस्थाओं की प्रगति रूक गयी। जिसके फलस्वरूप इन संस्थाओं के पुनर्जीवन के लिए स्वतन्त्र भारत की प्रतीक्षा थी।

### 6.2.2 स्वतन्त्रता बाद क्षेत्र पंचायत

सूक्ष्म अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक स्थानीय स्वायत्त शासन की स्थिति ऊहापोह की रही है। लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान में विधिवत स्थान प्राप्त कर लेने के उपरान्त भी इनके उत्थान और पतन की कहानी पूर्व की भाँति दृष्टिगोचर होती है। स्वातन्त्रोत्तर भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन के इतिहास में नये युग का सूत्रपात हुआ और इस दिशा में नये सिरे से 'शासन के विकेन्द्रीकरण की नीति' का आलम्बन किया गया।

1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ इस उद्देश्य से किया गया कि जनता के सहयोग से विकास योजनाएं बनायी व क्रियान्वित की जायेगी। इसी उद्देश्य से 1953 में राष्ट्रीय प्रसार सेवा का भी प्रारम्भ किया गया, जिसमें ग्राम स्तरीय कार्यकर्ताओं और खण्ड विकास अधिकारी दोनों में समन्वय बनाने की कोशिष की गयी।

उदाहरणार्थ- खण्ड स्तरीय सलाहकार समिति में ग्राम समितियों के सदस्य, विधानमण्डल व संसद के वे सदस्य जिनके निर्वाचन क्षेत्र में विकास खण्ड था तथा सहकारी समितियों व प्रगतिशील किसानों को सम्मिलित किया गया था। इस तरह यह व्यवस्था शासन के विकेन्द्रीकरण को दृष्टिगत रखते हुए किया गया था, किन्तु इसे अपेक्षित जन सहयोग नहीं मिला।

इसलिए भारत सरकार ने 1956 में बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। मेहता समिति ने पूरे देश में चुने हुए ब्लाकों, स्थानीय जनता, अधिकारियों, जिला स्तरीय अधिकारियों, प्रतिनिधि संगठनों के सदस्यों, विकास विभाग और अन्य विभागों के सचिवों से बातचीत की। तत्पश्चात इस प्रश्न पर विचार किया कि तत्कालीन संस्थाएं कार्य कर सकती हैं या नहीं और यदि नहीं तो कौन सी नयी संस्थाएं किस स्तर तथा किन शक्तियों एवं साधनों के साथ निर्मित की जाय। समिति ने अपनी रिपोर्ट 24 नवम्बर 1957 को सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया।

बलवन्त राय मेहता समिति ने ग्राम स्तर से जिला स्तर तक स्थानीय निकाय के त्रिस्तरीय स्वरूप को मान्यता प्रदान की। समिति ने ब्लाक स्तरीय निकाय को 'पंचायत समिति' का नाम दिया। अपनी त्रिस्तरीय योजना में समिति ने इस निकाय को सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई माना और इसे विकास खण्ड स्तर पर स्थापित किये जाने पर बल दिया। पंचायत समिति के गठन के सम्बन्ध में समिति का सुझाव था कि पंचायत समिति का संगठन ग्राम पंचायतों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से होगा। खण्ड के अन्तर्गत आने वाली ग्राम पंचायतों के समूह को इकाई मानकर उनके सभी पंचों द्वारा निर्धारित संख्या में पंचायत समिति के सदस्यों का चुनाव किया जायेगा। निर्वाचित सदस्यों द्वारा दो महिला सदस्यों का अनुमेलन किया जायेगा। यदि विकास खण्ड में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की जनसंख्या 05 प्रतिशत से अधिक है और इस वर्ग का कोई सदस्य निर्वाचित न हो तो उस दशा में इस वर्ग के भी एक-एक सदस्यों का अनुमेलन किया जायेगा। प्रशासन, सार्वजनिक जीवन और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में विशिष्ट अनुभव रखने वाले दो व्यक्तियों को भी पंचायत समिति अनुमेलित कर सकती है। पंचायत समिति का कार्यकाल पांच वर्ष होगा। इसका एक निर्वाचित अध्यक्ष होगा।

मेहता समिति ने पंचायत समिति के कार्यों में कृषि-विकास, बीजों का चुनाव, संरक्षण एवं वितरण, सहकारी बैंकों एवं शासकीय सहायता के साथ स्थानीय कृषि वित्त की व्यवस्था, लघु सिंचाई का विकास, स्थानीय उद्योगों का विकास, पेयजल आपूर्ति, स्वच्छता और जन स्वास्थ्य, औषधि सहायता, स्थानीय तीर्थ स्थलों एवं उत्सवों के सम्बन्ध में व्यवस्था, प्राथमिक पाठशालाओं की व्यवस्था और प्रशासकीय नियन्त्रण, पिछड़े वर्गों के लोगों का

कल्याण, मजदूरी का निर्धारण, ग्राम पंचायतों की सड़कों को छोड़कर स्थानीय महत्व के सड़कों की मरम्मत और निर्माण तथा आकड़ों का संग्रह एवं रख-रखाव आदि को शामिल किया। पंचायत समिति विकास योजनाओं के क्रियान्वयन एवं हस्तान्तरण सम्बन्धी क्रियाकलापों के सम्पादन में राज्य के अभिकरण के रूप में कार्य करेगी।

मेहता समिति ने पंचायत समितियों को आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाने पर विशेष बल दिया, जिससे कि वे विकास कार्यक्रमों को प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वित कर सकें, क्योंकि समिति के अनुसार ग्रामीण स्थानीय स्वायत्त शासन की विफलता का एक महत्वपूर्ण कारण उनमें संसाधनों का अत्यधिक अभाव रहा है। समिति ने ग्रामीण क्षेत्रों के सम्पूर्ण विकास का दायित्व पंचायत समितियों को सौंपने की प्रबल संस्तुति की। समिति ने पंचायत समिति के आय के लिए निम्नलिखित स्रोतो की अनुशंसा की-

1. विकास खण्ड से जो भू-राजस्व राज्य सरकार द्वारा वसूल किया जाय उसका एक निश्चित भाग पंचायत समिति को स्थानान्तरित हो।
2. भू-राजस्व एवं जल कर देने आदि पर विचार।
3. सड़कों एवं पुलों पर चुंगी कर।
4. अचल सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर कर।
5. व्यवसायों तथा उद्यमों पर कर।
6. घाटों तथा मत्स्य क्षेत्रों से मिलने वाला किराया और लाभ।
7. मनोरंजन के साधनों पर कर।
8. तीर्थ स्थानों पर कर।
9. प्राथमिक शिक्षा पर कर।
10. मोटर गाड़ी पर लगने वाले कर का एक निश्चित भाग भी राज्य सरकार द्वारा पंचायत समिति को स्थानान्तरित हो।
11. मेलों, बाजारों व हाटों से होने वाली आय।
12. जनता से विभिन्न प्रकार की आय।
13. शासन द्वारा दिया गया अनुदान।

पंचायत समिति को ग्रामीण अंचलों में अधिक प्रभावी व उपयोगी बनाने हेतु मेहता समिति द्वारा पर्याप्त शासकीय अनुदान की संस्तुति की गयी। समिति के अनुसार विकास खण्ड में व्यय की जाने वाली समस्त केन्द्रीय एवं प्रान्तीय

सरकारों की राशि पंचायत समिति को ही सौंप दी जानी चाहिए, जिससे वह ग्रामीण विकास के लिए प्रत्यक्ष रूप से खर्च कर सके।

मेहता समिति के द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती राज के प्रथम और द्वितीय सोपान पर क्रमश: ग्राम पंचायत तथा पंचायत समितियों को मुख्य इकाईयां मानते हुए तृतीय सोपान पर जनपद स्तर पर जिला परिषद के गठन की संस्तुति की गयी। समिति के अनुसार जिला परिषद ग्राम पंचायत एवं पंचायत समितियों के मध्य समन्वयात्मक कड़ी के रूप में कार्य करेगी। इसमें जिले के पंचायत समितियों के अध्यक्ष, जनपद के समस्त सांसद तथा विधायक, चिकित्सा, लोक स्वास्थ्य, कृषि, पशु चिकित्सा, अभियन्त्रण, शिक्षा, पिछड़ा वर्ग कल्याण, सार्वजनिक निर्माण तथा अन्य विकास विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी सदस्य के रूप में सम्मिलित होने चाहिए। जिला परिषद का कार्य प्रशासकीय नहीं होगा, क्योंकि इससे अन्य स्थानीय संस्थाओं- ग्राम पंचायत एवं पंचायत समिति के कार्य करने की स्वतन्त्रता का हनन होगा। जिला परिषद पंचायत समितियों के बजट की जांच करेगी उसकी मांगों को सरकार की ओर अग्रसर करेगी, सरकार से प्राप्त धन का खण्डों में वितरण करेगी, योजनाओं में सामंजस्य स्थापित करेगी और उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान करेगी तथा उनके गतिविधियों की सामान्य निगरानी करेगी।

बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों और सिफारिशों को केन्द्रीय सरकार और राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा परस्पर विचार-विमर्श के पश्चात स्वीकार कर लिया गया और राज्य सरकारों को उनकी अनुशंषाओं के आधार पर पंचायती राज की स्थापना करने का निर्देश दे दिया गया। समिति की रिपोर्ट पंचायती राज के कार्य एवं निर्देशन की एक मोटी संरचना थी। वह भारत के स्थानीय शासन का संविधान नहीं थी, जिससे विचलित न हुआ जा सके। भारत सरकार के निर्देशानुसार सत्ता के विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखकर उत्तर प्रदेश में क्षेत्र पंचायत तथा जिला परिषद अधिनियम 1961 पारित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा गांव सभा, क्षेत्र पंचायत और जिला परिषद को एक सूत्र में बांधा गया। यही से क्षेत्र पंचायत की विधिवत स्थापना उत्तर प्रदेश मे मानी जा सकती है।

बलवन्त राय मेहता समिति के प्रतिवेदन और संस्तुतियों के आधार पर विभिन्न राज्यों में पंचायत व्यवस्था का पुनर्गठन किया गया। लगभग एक दशक पश्चात इन संस्थाओं का मूल्यांकन कर इन्हें अधिक प्रभावी बनाने के उद्देश्य से 12 दिसम्बर 1977 को अशोक मेहता के नेतृत्व में एक 13 सदस्यीय समिति का गठन किया गया, जिसने अध्ययनोपरान्त पंचायती राज संस्थाओं के सुधार हेतु विभिन्न सुझाव दिये। इस समिति के द्वारा पंचायत के परम्परागत त्रिस्तरीय ढ़ाँचे के स्थान पर द्विस्तरीय ढ़ाँचे की सिफारिश की गयी। अर्थात जनपद स्तर पर जिला

परिषद तथा निम्न स्तर पर मण्डल पंचायत। इस प्रकार इस समिति ने जिला स्तर के नीचे ब्लाक को विकेन्द्रीकरण का स्तर नहीं माना और गांव तथा ब्लाक के मध्य कई गावों को मिलाकर 15 से 20 हजार की जनसंख्या पर मण्डल पंचायत स्थापित करने की संस्तुति की। इस मण्डल पंचायत को जिला परिषद के बाद विकास के कार्यप्रणाली का द्वितीय सोपान माना। इस समिति के द्वारा ग्राम पंचायत तथा क्षेत्र पंचायत दोनों के अस्तित्व को नकार दिया गया। समिति के संस्तुतियों पर विचार करने के लिए 1979 में राज्यों के मुख्यमन्त्रियों का सम्मेलन आहूत किया गया। जिसमें अधिकांश राज्यों ने पंचायतों के द्विस्तरीय ढ़ाँचे की सिफारि को अस्वीकार कर दिया। इसलिए केन्द्रीय स्तर पर समिति के सिफारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं की गयी, लेकिन तीन राज्यों- पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक ने अपने-अपने राज्यों में पंचायती राज को सुदृढ़ करने हेतु कदम उठाये।

पांचवी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सघन विकास करने एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के लिए प्रशासनिक प्रबन्ध पर जी0वी0के0 राव की अध्यक्षता में 1985 में एक समिति बनायी गयी। समिति द्वारा स्थानीय स्तर पर राज्य की शक्तियों को हस्तान्तरित करने की आवश्यकता पर बल देते हुए पूरे देश में पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने की सिफारिश की गयी। इसमें राज्य विकास परिषद, जिला परिषद, पंचायत समिति तथा ग्राम सभा प्रमुख संस्थाएं होंगी। यद्यपि समिति ने जिला परिषद को प्रमुख निकाय बनाने की अनुशंसा की, फिर भी खण्ड विकास अधिकारी को ऊँचा उठाने तथा विकास खण्ड के विकास को गति प्रदान करने के लिए खण्ड विकास स्तर पर एक सहायक विकास कमिश्नर के पद सृजन की भी अनुशंसा की। जिस पर 25 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति की नियुक्ति की जाय। मैदानी क्षेत्र में एक लाख तथा पहाड़ी क्षेत्र में 50 हजार की जनसंख्या पर विकास खण्ड बनाया जाय।

31 अक्टूबर 1984 को इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद अचानक राजीव गाँधी जैसे युवा नेता का पदार्पण भारत सरकार के प्रधानमन्त्री के रूप में हुआ। पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास की दुर्दशा ने राजीव गाँधी के हृदय को झकझोर कर रख दिया। युवा प्रधानमन्त्री में महसूस किया कि जब तक सत्ता राजनेताओं के चंगुल में बन्द रहकर फड़फड़ाती रहेगी तब तक देश के क्षितिज पर आम जनता की खुशहाली का स्वर्णिम प्रभात उदित नहीं होगा, इसलिए उन्होंने घोषणा की कि जो सत्ता राजनेताओं को जनता द्वारा मतदान के माध्यम से सौंपी जाती है वह सत्ता जनता को लौटा दी जाय। उन्होंने एक नारे का उद्-घोष किया ‘‘जनता को सत्ता सौंप दो।’’ इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर 1989 में 64वां संविधान संसोधन विधेयक लोकसभा में पेश किया गया। इस विधेयक में 20 लाख से अधिक आबादी वाले राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत का

प्रावधान किया गया था, लेकिन कतिपय कारणों से यह विधेयक लोकसभा में पारित होने के बाद राज्य सभा में पारित नहीं हो सका।

73वां संविधान संसोधन अधिनियम 1992 पी0बी0 नरसिंह राव के प्रधानमन्त्रित्व काल में संसद द्वारा पारित किया गया। इस संसोधन के द्वारा संविधान में 9वां भाग जोड़कर यह सुनिश्चित किया गया कि पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना अब संविधान द्वारा राज्यों का अनिवार्य कर्तव्य है। यह अधिनियम 64वें संविधान संसोधन की खामियों को दूर कर बनाया गया था। इसके द्वारा पंचायत की त्रिस्तरीय व्यवस्था, महिलाओं, अनुसूचित जाति, जनजाति के लिए स्थानों का आरक्षण, वित्त आयोग का गठन आदि व्यवस्थाएं की गयी। जिसके आलोक में उ0प्र0 पंचायत विधि संसोधन विधेयक 1994 प्रवृत्त हुआ। इसके प्रावधानों के अनुरूप त्रिस्तरीय पंचायतों को सौपे जाने वाले कार्यों एवं दायित्वों का निर्धारण करने हेतु उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अगस्त 1994 में जे0 एल0 एल0 बजाज की अध्यक्षता में 'प्रशासनिक सुधार एवं विकेन्द्रीकरण समिति' का गठन किया गया। समिति ने क्षमता के अनुसार 32 विभागों के कार्यों को पूर्ण रूपेण पंचायती संस्थाओं को सौंपने की संस्तुति की। समिति ने व्यक्त किया कि प्रत्येक विकास खण्ड में एक किसान सेवा केन्द्र की स्थापना की जानी चाहिए जो वस्तुओं और सेवाओं का निक्षेप करेगी। इस उपयोगी योजना का क्रियान्वयन क्षेत्र पंचायत करेगी तथा ए0डी0ओ0 स्तर का एक अधिकारी इसके संयोजक के रूप में नामांकित किया जायेगा। बजाज समिति के सिफारिशों को क्रियाविन्त करने के पूर्व समिति के सिफारिशों पर विचार करने के लिए दिसम्बर 1995 में पुनः कृषि उत्पादन आयुक्त भोलानाथ तिवारी की अध्यक्षता में एक 'उच्चाधिकार समिति' का गठन किया गया। जिससे विचारोपरान्त बजाज समिति के सिफारिशों को स्वीकृति प्रदान की। 09 नवम्बर 2000 में उत्तराखण्ड के पृथक राज्य के रूप में अस्तित्व में आने के बाद उत्तराखण्ड संसोधन अधिनियम संख्या- 8, सन् 2002 में पारित किया गया। जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश पंचायत विधि संसोधन अधिनियम 1994 को स्वीकार करते हुए व्यवस्था की गयी कि उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1947 तथा क्षेत्र पंचायत व जिला पंचायत अधिनियम 1961 में जहाँ-जहाँ उत्तर प्रदेश शब्द आया है, वहाँ उत्तराखण्ड पढ़ा जायेगा।

## 6.3 क्षेत्र पंचायत की संरचना

राज्य सरकार गजट में अधिसूचना द्वारा प्रत्येक खण्ड के लिए एक क्षेत्र पंचायत स्थापित करेगी, जिसका नाम विकास खण्ड के नाम पर होगा। क्षेत्र पंचायत का एक प्रमुख होगा, जो इसका पीठासीन होगा। इसके अलावा खण्ड विकास के समस्त ग्राम पंचायतों के प्रधान, निर्वाचित सदस्य जो पंचायत क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र से प्रत्यक्ष

निर्वाचन द्वारा चुने जायेंगे, (प्रादेशिक निर्वाचन पर्वतीय क्षेत्र में 25 हजार तक की जनसंख्या पर 20 तथा 25 हजार से अधिक जनसंख्या पर अधिकतम् 40 होगी एवं मैदानी क्षेत्र में 50 हजार तक की जनसंख्या पर 20 तथा 50 हजार से ऊपर अधिकतम् 40 होंगी। किन्तु किसी क्षेत्र पंचायत के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र में किसी संघटक ग्राम पंचायत का प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र भागतः सम्मिलित नहीं किया जायेगा)। लोक सभा और राज्य की विधान के ऐसे सदस्य जिनका क्षेत्र, क्षेत्र पंचायत सीमा में सम्मिलित हो तथा राज्य सभा और राज्य विधान परिषद के सदस्य जो खण्ड विकास के अन्दर मतदाता के रूप में रजिस्ट्रीकृत है, से मिलकर बनेगी। केवल अविश्वास प्रस्ताव को छोड़कर अन्य सभी कार्यवाहियों में सभी सदस्यों को भाग लेने का अधिकार होगा।

निर्वाचित सदस्यों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों के सदस्यों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित होगा। पिछड़े वर्गों के लिए भी उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित होगा लेकिन यह चौदह प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। आरक्षित स्थानों की संख्या का आधे से कम स्थान उस वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित होगा तथा कुल स्थानों के आधे से अन्यून स्थान भी महिलाओं के लिए आरक्षित होगा। यह आरक्षण चक्रानुक्रम में जैसा नियत किया जाय परिवर्तित होता रहेगा। क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों के द्वारा अपने में से ही एक प्रमुख, एक ज्येष्ठ उपप्रमुख तथा एक कनिष्ठ उपप्रमुख का चुनाव किया जाता है। क्षेत्र पंचायत के प्रमुखों के स्थान भी उपर्युक्त वर्णित प्रकार से ही आरक्षित होंगे। किन्तु आरक्षित वर्ग के लोगों को सामान्य स्थानों से चुनाव लड़ने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है।

क्षेत्र पंचायत के कार्यों व दायित्वों के सुचारु व सरल संपादन के लिए निर्माण एवं कार्य समिति, नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति और समय-समय पर राज्य सरकार जैसी अपेक्षा करे समितियों का गठन किया जायेगा। इसके अतिरिक्त क्षेत्र पंचायत आवश्यक समझे तो किसी विषय के जांच या परामर्श देने के लिए भी समय-समय पर अधिनियम के अधीन एक या अधिक परामर्श समितियां नियुक्त कर सकती है। समितियों के गठन का उद्देश्य सामूहिक विचार-विमर्श के आधार पर पारदर्शी निर्णय लेने के लिए किया जाता है।

## 6.4 क्षेत्र पंचायत, राज्य सरकार और कर्मचारीगण

73वें संविधान संसोधन के द्वारा तीनों स्तर की पंचायत संस्थाओं में एक रूपता लाने का प्रयास किया गया है। क्षेत्र-पंचायत अपने दायित्वों का निर्वहन निष्ठा पूर्वक करे, इसके लिए क्षेत्र पंचायत पर राज्य सरकार को नियन्त्रण रखने का अधिकार कुछ निश्चित सीमाओं के तहत दिया गया है। राज्य सरकार को यदि यह प्रतीत हो जाय कि क्षेत्र

पंचायत या उसके किसी समिति के द्वारा अपने कार्यों को करने में कोई त्रुटि की गयी है तो वह उसे सुधारने का अवसर एक निश्चित समयावधि में दे सकती है। यदि उस समयावधि में क्षेत्र पंचायत उस कार्य को अच्छे प्रकार से नहीं करती तो राज्य सरकार अपने किसी अधिकारी के माध्यम से उस कार्य को करवा सकती है। ऐसी स्थिति में उस कार्य पर होने वाले खर्च का वहन क्षेत्र पंचायत द्वारा उठाया जायेगा।

यदि क्षेत्र पंचायत के किसी सदस्य या प्रमुख के द्वारा अपने पद पर रहते हुए अपने किसी कृत्य से स्वयं अथवा किसी के व्यवसायिक हित को लाभ पहुँचाया गया हो या वह शारीरिक या मानसिक रूप से अक्षम हो गया हो या उसके किसी कृत्य से क्षेत्र पंचायत को क्षति पहुँची हो तो ऐसे लोगों को नियत रीति से उनके पद से हटाया जा सकता है, किन्तु ऐसा करने से पूर्व उस व्यक्ति को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर अवश्य दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त क्षेत्र पंचायत यदि अधिनियम द्वारा निर्धारित कर्तव्यों का पालन सुचारु रूप से न करे या अपने अधिकारों का दुरूपयोग करे तो राज्य सरकार उससे स्पष्टीकरण मांग सकती है यदि जाचोपरान्त यह सिद्ध हो जाय कि क्षेत्र पंचायत के आकृत्य उसे विघटित करने के लिए पर्याप्त है तो वह उसे विघटित कर उनके कृत्यों का सम्पादन करने के लिए किसी एक या एक से अधिक व्यक्तियों को नियुक्त कर सकती है। ऐसे विघटन के छः माह के भीतर क्षेत्र पंचायत का नये सिरे से निर्वाचन कराकर गठन करना आवश्यक होता है।

जिलाधिकारी जिले का मुखिया होने के कारण क्षेत्र पंचायत के ऊपर नियन्त्रण रखता है। वह उसके कार्यों का निर्देशन, नियन्त्रण व जांच कर सकता है। क्षेत्र पंचायत का एक पृथक प्रशासनिक तन्त्र होता है जिसका मुख्य कार्यपालक अधिकारी या अगुवा खण्ड विकास अधिकारी होता है, वह क्षेत्र पंचायत के सचिव के रूप में भी कार्य करता है। वह उन विकास अधिकारियों के दल का भी नेता होता है जो पशुपालन, सहकारिता, पंचायती राज, लघु सिचाई, लोक स्वास्थ्य, उद्योग आदि विभागों में कार्य करते हैं। ये अधिकारी पेशेवर लोक सेवक होते हैं और राज्य सरकार के नौकर के रूप में कार्य करते है। खण्ड विकास में क्षेत्र पंचायत के अन्तर्गत खण्ड विकास अधिकारी, प्रसार अधिकारी(कृषि), प्रसार अधिकारी (पशुपालन), प्रसार अधिकारी (सहकारिता), प्रसार अधिकारी (पंचायत), प्रसार अधिकारी (ग्रामीण उद्योग), सर्वेक्षक (ओवरसियर), मुख्य सेविका, ग्राम सेवक, ग्राम सेविकाएं, प्रगति सहायक, लेखाकार एवं भण्डारी, वरिष्ठ लिपिक, रोकड़िया, टंकणकर्ता, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, पशुपालन भण्डारी, संदेश वाहक, पशु चिकित्सा, चिकित्साधिकारी, कम्पाउण्डर, सफाई निरीक्षक, महिला स्वास्थ्य निरीक्षक, दाईयां, सफाई कर्मचारी आदि होते है।

## 6.5 क्षेत्र पंचायत की वित्तीय व्यवस्था

क्षेत्र पंचायतों अपने दायित्व का उचित तरीके से निर्वहन कर सके, इसके लिए वित्तीय व्यवस्था परम आवश्यक है, इसलिए प्रत्येक क्षेत्र पंचायत के अधीन एक क्षेत्र निधि की स्थापना की जाती है। जिसमें राज्य सरकार के प्राप्त समस्त अनुदान तथा जिला पंचायत की ओर से प्राप्त की गयी समस्त धनराशियां जमा की जाती हैं। इसके अतिरिक्त क्षेत्र पंचायत नकद अथवा वस्तु के रूप में ऐसा अंशदान स्वीकार कर सकती है जो कोई व्यक्ति सार्वजनिक उपयोगिता के किसी कार्य के लिए देता है। इसे जहाँ कहीं आवश्यक हो, क्षेत्र पंचायत अपने अंशदान सहित कार्य के निष्पादन में लगायेगी। क्षेत्र पंचायत, निधि में से धन का समस्त आहरण और उसका वितरण प्रमुख और खण्ड विकास अधिकारी द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता है।

क्षेत्र पंचायत को नियमों के अधीन कुछ कर लगाने व वसूलने का अधिकार भी होता है यथा जलकर- जहाँ वह पीने के पानी, सिचाई या किसी अन्य प्रयोजन के लिए पानी की व्यवस्था या किसी योजना का निर्माण या अनुरक्षण करती है। विद्युतकर, जहाँ वह किसी सार्वजनिक मार्ग या सार्वजनिक स्थान पर प्रकाश की व्यवस्था या उसका अनुरक्षण करती है। तथा कोई अन्य ऐसा कर संविधान द्वारा राज्य को दिया गया हो और राज्य सरकार ने क्षेत्र पंचायत को प्राधिकृत किया हो। क्षेत्र पंचायत उन लाइसेंसों, स्वीकृति या अनुमति के लिए भी शुल्क ले सकती है जो उपविधि द्वारा उसे दिये गये हों। ऐसे बाजार जो क्षेत्र पंचायत द्वारा स्थापित तथा अनुरक्षित हैं उसमें होने वाले व्यवसाय पर शुल्क वसूल सकती हैं।

## 6.6 क्षेत्र पंचायत के कार्य(अधिकार) और दायित्व

पंचायतीराज व्यवस्था में क्षेत्र पंचायत मध्यम स्तरीय संस्था है। क्षेत्र पंचायत को अधिनियम द्वारा निम्नलिखित अधिकार एवं कृत्य सौंपे गये हैं-

### 6.6.1 क्षेत्र पंचायत के कार्य

1. कृषि और बागवानी की प्रोन्नति और विकास तथा सब्जियों, फलों एवं पुष्पों की खेती और विपणन की प्रोन्नति।
2. सरकार के भूमि सुधार, भूमि संरक्षण और चकबन्दी कार्यक्रम के कार्यान्वयन में सरकार और जिला पंचायत की सहायता करना।
3. लघु सिचाई कार्यों के निर्माण और अनुरक्षण में सरकार और जिला पंचायत की सहायता करना एवं सामुदायिक और वैयक्तिक सिचाई कार्यों का कार्यान्वयन।

4. पशु सेवाओं का अनुरक्षण, पशु, कुक्कुट और अन्य पशुओं के नस्लों का सुधार, दुग्ध उद्योग, कुक्कुट पालन एवं सूअर पालन की प्रोन्नति।
5. मत्स्य पालन के विकास की प्रोन्नति।
6. सड़कों और सार्वजनिक भूमि के किनारों पर वृक्षारोपण एवं परिरक्षण, सामाजिक वानिकी और रेशम उत्पादन का विकास और प्रोन्नति।
7. लघु वन उत्पादों की प्रोन्नति और उसका विकास।
8. ग्रामीण उद्योग के विकास में सहायता करना, कृषि उद्योगों के विकास की सामान्य जानकारी का सृजन करना।
9. कुटीर उद्योगों के उत्पादों की प्रोन्नति एवं उसके विपणन की व्यवस्था करना।
10. ग्रामीण आवास कार्यक्रम में सहायता देना और उसका कार्यान्वयन।
11. पेयजल की व्यवस्था करना तथा उसके विकास में सहायता देना, प्रदूषित जल को पीने से बचाना, ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देना और उसका अनुश्रवण करना।
12. ईधन और चारा से सम्बन्धित कार्यक्रमों को प्रोन्नति, पंचायत क्षेत्र में सड़कों के किनारे वृक्षारोपण।
13. गांवों के बाहर सड़कों, पुलियों का निर्माण और उनका अनुरक्षण, पुलों का निर्माण, नौकाघाटों और जलमार्गों के प्रबन्ध में सहायता।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण की प्रोन्नति।
15. गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के प्रयोग को बढ़ावा देना और उसकी प्रोन्नति।
16. गरीबी उपशमन कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।
17. प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा का विकास, प्रारम्भिक और सामाजिक शिक्षा की प्रोन्नति।
18. ग्रामीण शिल्पकारों एवं व्यवसायिक शिक्षा की प्रोन्नति।
19. प्रौढ़ साक्षरता और अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का पर्यवेक्षण।
20. ग्रामीण पुस्तकालयों की प्रोन्नति और पर्यवेक्षण।
21. सांस्कृतिक कार्यों का पर्यवेक्षण, क्षेत्रीय लोक गीतों, नृत्यों और ग्रामीण खेलकूद की प्रोन्नति एवं आयोजन तथा सांस्कृतिक केन्द्रों का विकास तथा प्रोन्नति।

22. ग्राम पंचायत के बाहर मेलों और बाजारों (जिसमें पशु मेला भी सम्मिलित है) की प्रोन्नति, पर्यवेक्षण और प्रबन्ध।
23. प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालयों की स्थापना और अनुरक्षण, महामारियों का नियन्त्रण एवं ग्रामीण स्वच्छता एवं स्वास्थ्य कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।
24. परिवार कल्याण और स्वास्थ्य कार्यक्रमों की प्रोन्नति।
25. महिलाओं और बाल स्वास्थ्य के विकास एवं पोषण सम्बन्धी कार्यक्रमों में संगठनों की सहभागिता के लिए कार्यक्रमों की प्रोन्नति।
26. समाज कल्याण कार्यक्रमों, जिसके अन्तर्गत विकलांगों एवं मानसिक रूप से मन्द व्यक्तियों के कल्याण भी हैं, में भाग लेना तथा वृद्धावस्था एवं विधवा पेंशन का अनुश्रवण करना।
27. अनुसूचित जातियों और कमजोर वर्गों के कल्याण को प्रोन्नति, सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना और कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।
28. आवश्यक वस्तुओं का वितरण।
29. सामुदायिक आस्तियों के परिरक्षण और अनुरक्षण का अनुश्रवण और मार्ग दर्शन करना।
30. आर्थिक विकास के लिए योजनाएं तैयार करना, ग्राम पंचायतों के योजनाओं का पुनर्विलोकन, समन्वय तथा एकीकरण, खण्ड तथा ग्राम पंचायत विकास योजनाओं के निष्पादन को सुनिश्चित करना, सफलताओं तथा लक्ष्यों की नियतिकालिक समीक्षा तथा खण्ड योजना के कार्यान्वयन से सम्बन्धित विषयों के सम्बन्ध में सामग्री एकत्र करना तथा आंकड़े रखना।
31. नियत प्रक्रिया के अनुसार ग्राम पंचायतों को अनुदानों का वितरण, ग्राम पंचायत के क्रियाकलाप के ऊपर नियमों के अनुसार सामान्य पर्यवेक्षण।
32. प्राकृतिक आपदाओं में सहायता देना।

### 6.6.2 क्षेत्र पंचायत के दायित्व

उपरोक्त अधिकारों एवं कृत्यों के अतिरिक्त क्षेत्र पंचायत के द्वारा निम्नलिखित दायित्वों का भी निर्वहन किया जाता है-

1. ग्राम पंचायत के प्रधान तथा न्याय पंचायत के पंचों, सरपंचों एवं सहायक सरपंचों के पद की शपथ दिलाना।

2. सिंचाई की छोटी योजनाओं को हाथ में लेना तथा ग्राम पंचायत के प्रस्तावों को स्वीकृत करना।
3. प्राइमरी स्कूल तथा आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक अथवा यूनानी अस्पताल या औषधालय स्थापित तथा अनुरक्षित करने के लिए खण्ड में स्थित पास-पड़ोस के ग्राम पंचायतों के किसी समूह को परस्पर सम्मिलित होने का निर्देश देना।
4. पंचायत द्वारा किसी ऐसे पदों के सृजन का अनुमोदन करना, जिसके लिए उसके बजट में व्यवस्था न हो।
5. पंचायत कर्मचारियों का खण्ड के अन्दर या खण्ड से बाहर स्थानान्तरण करना।
6. न्याय पंचायतों के अधीन सेवकों की नियुक्तियां स्वीकृत करना तथा उनके सम्बन्ध में स्थानान्तरण, दण्ड, पद-मुक्ति तथा पदच्युति के अधिकारों का प्रयोग करना।
7. पंचायत सचिवों पर छुट्टी, स्थानान्तरण तथा अन्य अनुशासन सम्बन्धी अधिकार जिनमें नियुक्ति, पदोन्नति, पदच्युति तथा हटाये जाने सम्बन्धी अधिकार सम्मिलित नहीं है।
8. खण्ड के अन्दर संयुक्त समिति के संघटक इकाईयों के मध्य विवादों को तय करना।
9. गलती से छोड़े गये किसी व्यक्ति पर कर या उप शुल्क लगाने के लिए ग्राम पंचायतों को निर्देश देना।
10. यदि ग्राम पंचायत अपने अदेयों की मालगुजारी के बकाया के रूप में वसूल करने के लिए तीन महीने के भीतर संकल्प पारित ना करे तो पंचायत करों का मालगुजारी के बकाया के रूप में वसूल किया जाना प्राधिकृत करना।
11. किसी कर या उप शुल्क से पूर्णतः या अंशतः छूट देने के, ग्राम पंचायत के निर्णय को अनुमोदित करना।
12. उस अनुपात को निर्धारित करना जिसमें न्याय पंचायत के व्यय सर्किल में सम्मिलित ग्राम पंचायत की निधियों (Gaonfunds) पर भारित होंगे।
13. ग्राम पंचायत द्वारा कोई अन्य कर्तव्य या कृत्य किये जाने का निर्देश देना।

## 6.7 ग्रामीण विकास और क्षेत्र पंचायत

क्षेत्र पंचायत, पंचायती राज व्यवस्था की धुरी है, क्योंकि इसका आकार न तो जिला पंचायत जैसे इतना बड़ा है कि यह जनता के पहुँच से दूर हो जाय और न ही ग्राम पंचायत जैसे इतना छोटा कि वह प्रभावी संस्था के रूप में कार्य न कर सके। बल्कि यह मध्य स्तरीय ऐसी की संस्था है जो जन सामान्य के अत्यन्त नजदीक होती है। इसलिए क्षेत्रीय ग्रामीण विकास और उन्नति का सबसे अधिक दायित्व भी इसी के कंधो पर होता है। 1955 ई0 में राष्ट्रीय विकास सेवा के अन्तर्गत समस्त विकास योजनाओं को लागू करने के लिए अविकसित क्षेत्रों में शैडो ब्लाक की

स्थापना की गयी। 1967 में उ0प्र0 के पूर्व मुख्यमन्त्री स्व0 चरण चौधरी ने शैडो विकास खण्डों को राष्ट्रीय प्रसार सेवा (NES) में पुनः मिला दिया। विकास प्रक्रिया के प्रथम चरण में कृषि उत्पादन, शिक्षा, स्वास्थ्य, पशुपालन, सहकारिता एवं सिचाई के मदों पर पूर्ण ध्यान केन्द्रित कर हरित क्रान्ति लाने का प्रयास किया गया। इसके साथ ही गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों के लिए 02 अक्टूबर 1980 से पूरे भारत में एकीकृत ग्राम विकास योजना लागू की गयी जिसके अन्तर्गत कृषि एवं सिचाई, पशुपालन, उद्योग, व्यवसाय एवं सेवा के क्षेत्रों में लगे लोगों को ऋण व अनुदान की सुविधा प्रदान कर उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया गया।

क्षेत्र पंचायत एक तरफ विकास खण्ड के समस्त ग्राम पंचायतों के कार्यों एवं नीतियों में समन्वय स्थापित करता है तो वहीं दूसरी तरफ खुद क्षेत्र के विकास के लिए योजनाओं का निर्माण और कार्यान्वियन करती है। क्षेत्र पंचायत के अधिकांश सदस्य ग्राम क्षेत्र से निर्वाचित होते हैं, जो ग्रामीण समस्याओं से भली-भाँति अवगत होते हैं। ग्रामीण विकास के लिए प्राप्त अनुदानों को इन्हीं के प्रस्ताव पर खर्च किया जाता है। नयी व्यवस्था के तहत पंचायतों में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किये गये हैं, जिनको सामाजिक विकास हेतु शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषक आहार जैसी सुविधाओं से शैशवावस्था से ही वंचित रखा जाता है। इसका असर निश्चित रूप से उनकी प्रतिभा पर भी पड़ता है। इस व्यवस्था से आधी आबादी के विकास को भी निश्चित रूप से बल मिल रहा है। ग्रामीण विकास की तमाम योजनाओं के क्रियान्वयन में महिलाओं की सहभागिता बढ़ रही है। जिसका प्रभाव निश्चित रूप से उनके जीवन स्तर पर पड़ रहा। क्षेत्र पंचायत द्वारा अपने संसाधनों का प्रयोग वर्तमान में 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी कार्यक्रम' के तहत किया जा रहा है। जिससे एक तरफ जहाँ गांवों में रास्ता, साफ-सफाई, पेयजल, नाली, वृक्षारोपण, सिंचाई आदि से सम्बन्धित कार्यों को मूर्तता प्रदान की जा रही है तो वहीं दूसरी तरफ गरीबी और लाचारी का जीवन व्यतीत करने वाले लोगों को रोजगार मुहैया हो रहा है। जिससे प्राप्त आय उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में महती भूमिका निभा रही है। ग्रामीण जनता के दिन-प्रतिदिन के सम्पर्क मे होने के कारण क्षेत्र पंचायत अपने दायित्वों से विमुख होने की स्थिति में भी नहीं है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिला पंचायत और ग्राम पंचायत के बीच अवस्थित होने के कारण निश्चित रूप से क्षेत्र पंचायत का महत्व एवं भूमिका बढ़ जाती है। एक तरफ यह ग्राम पंचायतों के विकास कार्यक्रमों में उनका पथ प्रदर्शन व नियन्त्रण करती है तो दूसरी तरफ ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों तथा योजनाओं को जिला पंचायत की तरफ अग्रेसित भी करती है। मध्यम स्तरीय संस्था होने के कारण यह ग्राम पंचायत तथा जिला पंचायत के बीच कड़ी के रूप में कार्य करते हुए ग्रामीण विकास को गति प्रदान करने में महती भूमिका निभाती है। क्षेत्र पंचायत के

बिना वर्तमान ग्रामीण विकास का कल्पना भी अधूरी होगी। क्षेत्र पंचायत के माध्यम से क्षेत्रीय जनता अपनी समस्याओं और उलझनों से निपटने के लिए स्वयं जागरूक एवं चैतन्य रहती है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. बौद्धकालीन गणतन्त्रात्मक राज्यों में प्रशासन की वास्तविक शक्ति किसमें निहित होती थी?
2. स्वतन्त्रता पूर्व सर्वप्रथम किस अधिनियम द्वारा पंचायतों को प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया गया?
3. अशोक मेहता समिति का गठन कब किया गया था?
4. पंचायत व्यवस्था के सम्बन्ध में उत्तराखण्ड संसोधन अधिनियम संख्या- 8, किस वर्ष पारित किया गया?
5. क्षेत्र पंचायत का पीठासीन कौन होता है?
6. पर्वतीय क्षेत्र में 25 हजार की जनसंख्या पर क्षेत्र पंचायत के लिए कितने सदस्यों के चुने जाने की व्यवस्था है?
7. मैदानी क्षेत्र में 50 हजार से अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र पंचायत में निर्वाचित सदस्यों की संख्या अधिकतम कितनी होगी?
8. क्षेत्र पंचायत का सचिव कौन होता है?
9. पंचायत व्यवस्था के मध्य स्तरीय संरचना को क्या कहा जाता है?

## 6.8 सारांश

भारत में प्राचीनकाल से पंचायतों का गठन कई स्तरों पर होता रहा है, जिसमें उच्च और निम्न स्तर के संस्थाओं के बीच कड़ी के रूप मध्यवर्ती संगठनों का अस्तित्व भी तभी से किसी न किसी रूप में देखने को मिलाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पंचायतों को विधिक स्थिति प्रदान रकने के उद्देश्य से 1947 में संयुक्त प्रान्त पंचायत विधि अधिनियम बनाया गया। 1957 में बलवन्त राय मेहता समिति के द्वारा त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को स्थापित करने की संस्तुति की गयी। केन्द्रीय सरकार तथा राष्ट्रीय विकास परिषद की स्वीकृति मिलने के बाद विभिन्न राज्यों ने इसके आधार पर पंचायतों का पुनर्गठन किया। इसी क्रम में 1961 में उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत अधिनियम विधान मण्डल के द्वारा पारित किया गया। इसका उद्देश्य ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत में एकरूपता लाता था। क्षेत्र पंचायत में सुधार के लिए समय समय पर प्रयास किये जाते रहे। लेकिन इस दिशा में 73वां संविधान संसोधन मील का पत्थर साबित हो रहा है। इस अधिनियम के द्वारा क्षेत्र पंचायत को संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया है। अब क्षेत्र पंचायतों को अपने कृत्यों के सम्पादन में काफी स्वायत्तता मिल

गयी है। महिलाओं के लिए पदों के आरक्षण के कारण इस आधी आबादी की भी प्रजातन्त्र के आधारभूत स्तर पर सहभागिता सुनिश्चित हो गयी है। इस वर्ग के द्वारा अपने दायित्वों के निर्वहन में निश्चित रूप से रूचि ली जाने लगी है। यद्यपि अभी उनकी भूमिका खुलकर देखने को नहीं मिल रही है। उत्तराखण्ड के उत्तर प्रदेश से पृथक होने पर कुछ मामूली परिवर्तन करते हुए उत्तर प्रदेश पंचायत विधि अधिनियमों को स्वीकार कर लिया गया है। उत्तराखण्ड में महिलाओं को ज्यादा प्रतिनिधित्व देने का भी प्रयास किया गया है जो निश्चित रूप से सराहनीय कदम है। क्षेत्र पंचायत, ग्राम पंचायत और जिला पंचायत की कड़ी के रूप में तो कार्य करता ही है, इसके साथ-साथ यह स्वयं भी ग्रामीण विकास के एक महत्वपूर्ण अभिकरण के रूप में इनके कार्यों में भरपूर सहयोग दे रही है।

## 6.9 शब्दावली

सभ्यता- मानव के सभ्य होने की समूची प्रक्रिया, रिपोर्ट- सूचनाओं का संग्रह, संविधान संसोधन- संवैधानिक व्यवस्था में समयानुकुल परिवर्तन, अभिलेख- प्राचीन लिखित धरोहर, संस्था- किसी खास उद्देश्य के लिए गठित की गयी इकाई, संघ- कुछ खास व्यक्तियों का समूह जो खास उद्देश्य के लिए कार्य करता हो, साहित्य- एक ऐसी रचना जो लोगों के हित के लिए कार्य करें, अधिकारी- विशेष क्षेत्र में अधिकार प्राप्त व्यक्ति, बहुमत- किसी व्यवस्था के आधे से अधिक लोग, स्वायत्तशासी- जो स्वयं द्वारा शासित हो, स्वतन्त्रता- अपने द्वारा विकसित तन्त्र का शासन, अनुमेलन- किसी पूर्व निर्धारित व्यवस्था में दूसरी व्यवस्था का समायोजन, योजना- किसी कार्य को पूर्ण करने के लिए तैयार की गयी युक्ति।

## 6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** सभा में, **2.** 1919 ई0 में, **3.** 1977 ई0 में, **4.** 2000 ई0 में, **5.** क्षेत्र पंचायत प्रमुख, **6.** 20 सदस्य, **7.** 40, **8.** खण्ड विकास अधिकारी, **9.** क्षेत्र पंचायत

## 6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. डा0 प्रभुदत्त शर्मा, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1986
2. देवेन्द्र उपाध्याय, पंचायती राज व्यवस्था, जगदीश भारद्वाज सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली।
3. अरूण श्रीवास्तव, भारत में पंचायती राज, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।
4. महीपाल, पंचायती राज- अतीत, वर्तमान और भविष्य, सारांश प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली।

5. के0के0 राय, उ0प्र0 एवं उत्तरांचल के लिए, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत अधिनियम 1961, एलिया लॉ एजेंसी, इलाहाबाद।
6. डॉ0 निकुंज, पंचायती राज व्यवस्था एक दृष्टि एवं दृष्टिकोण, निकुंज प्रकाशन, बड़वानी, 1995 (सम्पादन)


## 6.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. डा0 प्रभुदत्त शर्मा, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1986
2. देवेन्द्र उपाध्याय, पंचायती राज व्यवस्था, जगदीश भारद्वाज सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली।
3. अरूण श्रीवास्तव, भारत में पंचायती राज, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।
4. महीपाल, पंचायती राज- अतीत, वर्तमान और भविष्य, सारांश प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली।


## 6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्षेत्र पंचायतों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का संक्षेप में उल्लेख करें।
2. क्षेत्र पंचायत के अधिकार एवं शक्तियों पर एक निबन्ध लिखें।

# इकाई- 7 जिला पंचायत

**इकाई की संरचना**

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 जिला पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

7.2.1 स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व जिला पंचायत (परिषद)

7.2.2 स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त जिला पंचायत

7.3 जिला पंचायत की संरचना

7.4 जिला पंचायत, राज्य सरकार और कर्मचारीगण

7.5 जिला पंचायत की वित्तीय व्यवस्था

7.6 जिला पंचायत के कार्य (अधिकार) और दायित्व

7.6.1 जिला पंचायत के कार्य (अधिकार)

7.6.2 जिला पंचायत के दायित्व

7.7 ग्रामीण विकास में जिला पंचायत की भूमिका

7.8 सारांश

7.9 शब्दावली

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

## 7.0 प्रस्तावना

भारत में पंचायतों का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन काल से रहा है। ग्राम स्तरीय संस्थाएं सबसे निचले स्तर पर थीं। इनको नियन्त्रित व निर्देशित करने के लिए किसी उच्च संस्था कि आवश्यकता प्रारम्भ से ही महसूस की जा रही थी। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ मानव जीवन की जटिलताएं भी उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। अतः

पंचायत के स्वरूप में भी परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गयी। जिसे देखते हुए मध्य स्तर और उच्च स्तर के संस्थाओं की स्थापना की गयी।

बौद्ध साहित्य में महात्मा बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व एवं उनके समय में महाजनपदों के अस्तित्व का पता चलता है। महात्मा बुद्ध के समय अनेक गणतन्त्रात्मक राज्य थे, जिनका वर्णन बौद्ध साहित्य में मिलता है। बौद्ध ग्रन्थों में बौद्ध संघों की प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था का विस्तृत वर्णन है। उस समय छोटे-छोटे गणराज्य थे, जिसका अध्यक्ष चुनाव के द्वारा निश्चित समय के लिए चुना जाता था।

मौर्यकाल में स्थानीय स्वशासन काफी विकसित था। शासन की सुविधा के लिए प्रान्तों के उपविभाग किये गये थे, जो अर्थशास्त्र के अनुसार इस प्रकार थे- जनपद, द्रोणमुख, स्वार्वतिक, संग्राम। जनपद का अधिकारी मुखिया 'स्थानिक' कहलाता था। शासन को सुविधाजनक व उपयोगी बनाने के लिए प्रारम्भ से ही भारत में प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण देखने को मिलता है। जिसमें ग्राम, दस ग्राम, बीस ग्राम, सौ ग्राम, तथा हजार गांव का संगठन प्रमुख था। इस प्रकार उच्च स्तर, मध्य स्तर और निम्न स्तर पर प्रशासन का लोकतान्त्रिक संगठन प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है।

यह इकाई जिला पंचायत से सम्बन्धित है जो ग्रामीण पंचायत व्यवस्था की सबसे ऊपरी संस्था है। इसमें जिला पंचायत के प्राचीन स्वरूप जिला समिति या जिला बोर्ड के साथ-साथ वर्तमान में इनकी संरचना (संगठन) अधिकार व कार्य, वित्तीय प्रबन्ध तथा राज्य सरकार व उसके अधिकारियों के साथ सम्बन्ध का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

## 7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- जिला पंचायत की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- पंचायत व्यवस्था में जिला पंचायत की स्थिति को समझ सकेंगे।
- जिला पंचायत के उद्देश्य व सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- वर्तमान में जिला पंचायत की व्यवहारिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- ग्रामीण विकास में जिला पंचायत की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

## 7.2 जिला पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जिला पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन सुविधा की दृष्टि ने निम्नांकित शीर्षकों के आधार पर कर सकते हैं-

### 7.2.1 स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व जिला पंचायत

यद्यपि अपने वर्तमान स्वरूप में जिला पंचायत स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की संस्था है। लेकिन उसकी स्थिति या उसके जैसे संगठन का अस्तित्व भी भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से देखने को मिलता है। वैदिक काल में ग्राम पंचायतों को नियन्त्रित व निर्देशित करने के लिए उसके ऊपर की संस्थाओं का अस्तित्व देखने को मिलता है। गांवों के ऊपर अनेक गांवों का समूह या संगठन 'विष' कहलाता था जिसका अधिकारी 'विषपति' कहा जाता था। अनेक विष मिलकर 'जन' की रचना करते थे। जन के प्रधान अधिकारी को 'गोप' कहते थे।

मनु स्मृति के अनुसार गांव के अधिकारी को 'ग्रामिक' कहते थे तथा गांवों का सबसे बड़ा अधिकारी सहस्रपति होता था, जिसके अधीन लगभग एक हजार गांव होते थे। उस समय स्थानीय कार्यकलाप यथा प्रशासन व न्याय सुव्यवस्थित समितियों या पंचायतों के द्वारा राज्य के आदेश से प्रशासित होता था। इस समय के शिलालेख बताते हैं कि स्थानीय समस्याओं को निपटाने के लिए बाग, तालाब तथा स्वर्ण निरीक्षण समितियों का गठन किया जाता था।

1857 ई0 में स्वतन्त्रता संग्राम के प्रारम्भ के उपरान्त भारत का शासन प्रबन्ध ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के हाथों से निकलकर सीधे ब्रिटिश महारानी के हाथों में आ गया। अब भारतीय प्रशासन सीधे ब्रिटिश सरकार के अधीन होने के कारण स्वायत्त शासन संस्थाओं के विकास का मार्ग भी खुल गया। इसके अतिरिक्त आर्थिक कारणों एवं अन्य भौतिक आवश्यकताओं से विवश होकर अंग्रेजों को भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओं के विकास को प्रोत्साहन देना पड़ा। 1861 ई0 में बंगाल में हैजे का प्रकोप हुआ, जिसका उपचार जनता के सहयोग के बिना असम्भव था। इसलिए 1861 ई0 में इण्डिया कौंसिल एक्ट पारित करके ब्रिटिश सरकार ने भारतीय प्रशासन में स्वायत्त शासन को प्रोत्साहित किया। आगे चलकर 'टाऊन इम्प्रुवमेंट एक्ट' तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट' भी पारित किये गये।

1870 ई0 में लार्ड मेयो के द्वारा शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के माध्यम से भारतीय जनता को प्रशासन से सम्बद्ध करने का प्रस्ताव पारित किया गया। यह ग्रामीण क्षेत्रों में स्वायत्त शासन की संस्थाएं स्थापित करने का प्रथम प्रयास था। इसका उद्देश्य प्रशासनिक क्षमता को बढ़ाना तथा वित्तीय साधन जुटाना था। इस प्रस्ताव को ध्यान में

रखकर केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा, चिकित्सा सेवाओं, सड़कों के रख-रखाव और निर्माण आदि का काम प्रान्तीय सरकारों को हस्तान्तरित करने तथा इस हेतु उन्हें अनुदान देने का निर्णय किया। इस प्रकार 1871 ई0 के अधिनियम के अनुसार बम्बई, बंगाल, पंजाब व उत्तर पश्चिमी प्रान्तों में मयो के प्रस्ताव के बाद स्थानीय स्वायत्त प्रशासनों की स्थापना हुई। इन अधिनियमों के प्रावधानों के अनुसार सेस को कानूनी दर्जा दिया गया था तथा व्यय को बढ़ाने के लिए उन्हें बढ़ाया भी जा सकता था। इसमें जिला समिति के गठन की व्यवस्था तथा सरकारी एवं गैर-सरकारी सभी सदस्यों के मनोनयन आदि का उल्लेख था। जिला समिति का अध्यक्ष सरकारी व्यक्ति को बनाने का प्रावधान था। लेकिन यह लोकप्रिय पंचायतों की स्थापना नहीं कर सका, क्योंकि इसमें जन प्रतिनिधियों का प्रतिनिधित्व न के बराबर था।

स्वायत्त शासन की संस्थाएं स्थापित करने में 1882 ई0 का का लार्ड रिपन का प्रस्ताव मील का पत्थर सिद्ध हुआ। लार्ड रिपन चाहते थे कि सभी स्थानीय संस्थाओं में गैर-सरकारी निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रहे और इनको अपने-अपने क्षेत्र में काम करने के लिए कुछ स्वायत्तता भी प्राप्त हो। इस उद्देश्य से प्रत्येक जिले में दो स्वशासित संथाओं की व्यवस्था की गयी। जिला स्तर पर जिला बोर्ड तथा तहसील स्तर पर तहसील बोर्ड। लार्ड रिपन के इस प्रस्ताव को तत्कालीन नौकरशाही ने सुरूचिपूर्ण नहीं पाया, जिसके कारण यह पूर्ण रूप से क्रियान्वित नहीं हो सका। नतीजा यह हुआ कि सरकारी अधिकारी ही बोर्डो के अध्यक्ष बनाये गये।

1907 ई0 में चार्ल्स हॉबहाऊस की अध्यक्षता में शाही विकेन्द्रीकरण आयोग का गठन किया गया। आयोग ने आम राय जानने के बाद पाया कि लोग विकेन्द्रीकरण चाहते हैं और वे सरकारी अधिकारियों के वर्चस्व से खिन्न हैं। आयोग ने स्वायत्त शासन के संस्थाओं का प्रारम्भ जिला स्तर के स्थान पर ग्राम स्तर से करने पर बल दिया। इस बात को महसूस करते हुए कि वित्तीय साधनों के अभाव में कार्य सौंपने का कोई अर्थ नहीं है। आयोग ने पंचायतों की वित्तीय स्थिति सुधारने और उनके लिए आय के साधन जुटाने हेतु निम्न सुझाव दिये-

1. भूमिकर जो जिला बोर्डों द्वारा लगाया जाता है का एक हिस्सा ग्राम पंचायतों को दिया जाय।
2. जिला बोर्डों व जिलाधीश द्वारा स्थानीय सुधार के लिए विशेष अनुदान दिया जाय।
3. उन मुकद्मों की फीस मामूली रखी जाय जिनकी सुनवाई पंचायतें करें।

लेकिन आयोग द्वारा प्रस्तुत सिफारिशों का नतीजा कुछ नहीं निकला। इसलिए 13 मार्च 1912 को गोखले ने कहा कि जिला प्रशासन वहीं का वही है, जहाँ वह सौ साल पहले था तथा स्वायत्त शासन की संस्थाएं भी वहीं की वहीं हैं, जहाँ वे 30 साल पहले लार्ड रिपन के समय में थी।

यह ब्रिटिश राज के विरूद्ध जन आन्दोलन का दौर था। देश में पैदा हुई राजनीतिक जागृति के कारण 1917 में ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न स्तरों पर भारतीयों को भागीदारी देने तथा पंचायतों को कारगर व सशक्त बनाने का एलान किया। इसी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ब्रिटिश सरकार ने 1919 के भारत सरकार अधिनियम में पंचायतों के गठन का दायित्व प्रान्तीय सरकारों को सौंपा। माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड आयोग की संस्तुतियों के उपरान्त ग्राम्य क्षेत्र के स्वायत्त शासन में क्षेत्रीय जनता को सक्रिय रूप से भागीदार बनाने के दृष्टि से उत्तर प्रदेश में यूनाइटेड प्राविन्शियल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट 1922 लागू किया गया। इस अधिनियम के द्वारा निर्धारित संख्या में जनपद के ग्रामीण क्षेत्र से चुने हुए प्रतिनिधियों और उनके द्वारा चुने हुए प्रेसीडेंट को एक्ट के प्रावधानों के अनुसार विभिन्न क्रियाकलापों और नीति निर्धारित तथा क्रियान्वित करने का दायित्व सौंपा गया। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट के दायित्व तथा उन कृत्यों का विवेचन था जो जिला बोर्ड के विवेक पर आधारित थे। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कार्य क्षेत्र में जूनियर बेसिक व सीनियर बेसिक विद्यालयों का पूरा प्रबन्ध, ग्राम्य क्षेत्र के चिकित्सालयों एंव औषाधलयों का प्रबन्ध, ग्राम्य क्षेत्र के पशु चिकित्सालयों का प्रबन्ध, ग्राम्य क्षेत्र के अधिकांश सड़कों का रख-रखाव आदि प्रमुख था। ग्रामीण क्षेत्र में बिमारियों की रोकथाम हेतु टीकाकरण डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा ही कराया जाता था। इस प्रकार ग्राम्य क्षेत्र के सार्वजनिक जीवन में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अपनी महत्वपूर्ण सेवा अर्पित करता था।

भारत शासन अधिनियम 1935 ई0 द्वारा प्रान्तीय स्वायत्तता स्थापित की गई। राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास से भारत में स्थानीय शासन का स्वरूप बदला। अब स्थानीय शासन एक प्रयोग की अपेक्षा सम्पूर्ण स्वशासन का एक अभिन्न अंग बन गया।

### 7.2.2 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जिला पंचायत

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नवनिर्मित संविधान में पंचायतों को स्थान देने को लेकर डॉ0 भीम राव अम्बेडकर ने प्रबल विरोध जताया, लेकिन अन्य सदस्यों के परामर्श पर अन्ततः इसे संविधान में स्थान दिया गया। संविधान निर्मात्री सभा के अनुभव के अनुसार देश के 05 लाख 75 हजार गांवों का शासन दिल्ली (केन्द्र) से कर पाना सम्भव नहीं था। इसलिए लोकतान्त्रिक शासन को सफल व सुदृढ़ बनाने के लिए प्रशासनिक कार्यों के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। नवनिर्मित संविधान के प्रवर्तित होने के पश्चात स्थानीय स्वशासन को राज्य-सूची का विषय घोषित किया गया।

संविधान के अनुच्छेद- 40 में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के तहत पंचायतों को स्थान दिये जाने के बाद भी इनका विकास सन्तोषजनक नहीं था। सरकार द्वारा 1952 में शुरु किया गया 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' तथा

1953 में 'राष्ट्रीय प्रसार सेवा' के परिणाम भी सन्तोषजनक नहीं थे। इसलिए 1956 में बलवन्त राय मेहता समिति का गठन भारत सरकार ने किया। समिति ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि तत्कालीन स्थानीय संस्थाएं कार्य कर सकती है अथवा नहीं, यदि नहीं तो कौन सी नयी संस्थाए किस क्षेत्र, किन शक्तियों और साधनों के साथ निर्मित की जायें। तत्कालीन जिला बोर्डों के अध्ययन करते हुए समिति ने उनकी अयोग्यताओं पर प्रकाश डाला। जिला बोर्ड उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर रहे थे जिनके लिए उनको स्थापित किया गया था। उन्हें लोगों को स्वशासन की शिक्षा देनी चाहिए थी लेकिन यह उनकी परम्परा नहीं रही, क्योंकि उनके पास ऐसे साधन नहीं थे। उन्हें कार्य तो सौंप दिया गया था लेकिन उन्हें इतना साधन सम्पन्न नहीं किया गया था, जिससे वे अपनी समस्याओं पर पूरा ध्यान दे सके। अध्यक्ष व सदस्य इस स्थिति में नहीं थे कि वे तत्कालीन समस्याओं को सुलझाने के लिए समय दे सकें। वे अधिकांश कार्यों को अधिकारियों पर छोड़ने के लिए बाध्य थे। राज्यों की प्रवृति भी जिला बोर्डों से कार्य वापस लेने की रही, क्योंकि वहाँ दोहरे शासन की स्थिति पायी जाती थी।

समिति ने प्राथमिक शिक्षा को जिला बोर्ड को देने के विचार को भी पसन्द नहीं किया, क्योंकि वे स्वयं सरकार पर निर्भर थे। इसलिए वे उनकी समस्याओं पर बहुत कम ध्यान देते थे। पंचायतों को भी जिला बोर्डों से जोड़ने का विचार श्रेयस्कर नहीं था। समिति के अनुसार पंचायतों को जिला बोर्ड से सीधे जोड़ना न तो सरल होगा, न सुविधाजनक और न ही व्यवहारिक। बहुत से राज्यों में एक जिले में कई सौ ग्राम पंचायतें हैं और उनमें से कई का क्षेत्र बहुत बड़ा है। उनकी बड़ी संख्या भी असुविधानक है। ऐसी स्थिति में जिला बोर्ड और पंचायतों के बीच सामंजस्य नहीं हो सकता है।

जिला परिषद में जिले के सभी पंचायत समितियों के अध्यक्ष, सांसद, विधायक, चिकित्सा, लोक स्वास्थ्य, कृषि, पशु चिकित्सा, अभियन्त्रण, शिक्षा, पिछड़े वर्ग का कल्याण, सार्वजनिक निर्माण तथा अन्य विकास विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी सदस्य के रूप में सम्मिलित होने चाहिए। समिति का मानना था कि जिला परिषद के कार्य प्रशासनिक नहीं होने चाहिए, क्योंकि इससे अन्य स्थानीय संस्थाओं यथा ग्राम पंचायत और क्षेत्र पंचायत के कार्य करने की स्वतन्त्रता का हनन होगा। जिला परिषद पंचायत समितियों के बजट की जांच करेगी और उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान करेगी तथा पंचायत समितियों के गतिविधियों की सामान्य निगरानी करेगी।

बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों और सिफारिशों को केन्द्रीय सरकार और राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा परस्पर विचार-विमर्श के पश्चात स्वीकार कर लिया गया और राज्य सरकारों को उनकी अनुशंसाओं के आधार पर पंचायती राज की स्थापना करने का निर्देश दे दिया गया। जिसके आलोक में उत्तर प्रदेशविधान सभा के द्वारा

उत्तर प्रदेशपंचायत समिति तथा जिला परिषद अधिनियम 1961, पारित किया गया। यहीं से जिला परिषद ने एक संवैधानिक निकाय के रूप में अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त किया। इस अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा, क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद इकाईयों को एक सूत्र में बांधा गया। यद्यपि स्वतन्त्रता के पश्चात पंचायती राज संस्थाओं का महत्वपूर्ण ढ़ाँचा अस्तित्व में लाया गया, किन्तु व्यवहार में इसकी प्रभावशीलता सीमित रही और पंचायती राज की उपयोगिता नगण्य प्रतीत होने लगी।

अतः पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने और उन्हें सुदृढ़ बनाने हेतु केन्द्र सरकार ने दिसम्बर 1977 में अशोक मेहता के नेतृत्व एक 13 सदस्यीय समिति का गठन किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट 1978 में सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की। जिसमें पंचायत के द्विस्तरीय, जिला स्तर पर जिला परिषद तथा निम्न स्तर पर मण्डल पंचायत स्थापित करने का सुझाव दिया गया था। समिति का मानना था कि राज्य स्तर के नीचे विकेन्द्रीकरण का आधार जनपद को बनाया जाय, क्योंकि इस स्तर पर ही नियोजन, विकास कार्यक्रमों में समन्वय, मार्ग दर्शन एवं तकनीकी क्षमता सम्पन्न प्रबन्धन उपलब्ध हैं। पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को उनकी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाय। जिला परिषद के अध्यक्ष का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होना चाहिए तथा इसका कार्यकाल 04 वर्ष होना चाहिए। समिति का सुझाव था कि जिला परिषद में छः प्रकार के सदस्य होने चाहिए। जिला पंचायत निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य, पंचायत समितियों के प्रमुख, नगरपालिकाओं के निर्दिष्ट व्यक्ति, दो महिलाएं, तथा दो अनुमेलित सदस्य, जिसमें एक ग्रामीण विकास में रूचि रखने वाला तथा दूसरा कालेज या विश्वविद्यालय का अध्यापक हो। जिला परिषद अपने दायित्वों का निर्वहन करने के लिए विभिन्न समितियों का गठन करेगी। जिला परिषद के सभी सदस्यों तथा जनपद के सभी सांसदों व विधायकों को मिलाकर योजना निर्माण एवं सामाजिक समीक्षा के लिए जिला स्तर पर नियोजन समिति का गठन किया जायेगा।

अशोक मेहता समिति की सिफारिशों को लागू करने के लिए विभिन्न राज्यों के राय को जानने के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने राज्यों के मुख्यमन्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाया। जिसमें अधिकांश राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों ने अशोक मेहता समिति के सिफारिशों पर असहमति प्रकट की। इसलिए केन्द्रीय स्तर पर समिति के सिफारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं की गयी लेकिन तीन राज्यों- पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक ने अपने-अपने राज्यों में पंचायती राज को सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये। जिसमें जिला परिषद को अति महत्वपूर्ण स्तर पर रखा गया।

1985 ई0 में जी0वी0के0 राव की अध्यक्षता में ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के लिए प्रशासनिक प्रबन्ध पर एक समिति बनायी गयी। समिति द्वारा स्थानीय स्तर पर राज्य की शक्तियों को हस्तान्तरित करने की सिफारिश की गयी। इसने जिला परिषद को प्रमुख निकाय बनाने की अनुशंसा करते हुए कहा कि जिला परिषद को जिले स्तर पर नीति निर्धारण और कार्यान्वियन का पूर्ण दायित्व दिया जाना चाहिए। जिससे जिले स्तर के सभी प्रकार के विकास योजनाओं का क्रियान्वयन आसानी से हो सके।

1988 ई0 में कार्मिक लोक सेवा संघ एवं पेंशन मन्त्रालय के तत्वाधान में पी0के0 थुंगन की अध्यक्षता में जिला नियोजन के प्रशासकीय-तन्त्र के बारे में सुझाव देने के लिए एक उप-संसदीय समिति गठित की गयी। इस समिति की प्रमुख संस्तुतिया थीं-

- पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा मिले।
- योजना एवं विकास का दायित्व जिला परिषद को दिया जाय।
- सांसद व विधायक जिला परिषद से सम्बन्धित हों।
- अनुसूचित जाति, जनजाति एवं महिलाओं को पंचायत राज में यथोचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।
- पंचायत संस्थाओं से सम्बन्धित व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया जाय।
- पंचायत संस्थाओं का कार्यकाल पांच वर्ष का हो।

पी0के0 थुंगन उपसमिति के सिफारिशों के पश्चात 27 जनवरी से 30 जनवरी 1989 तक दिल्ली में चार दिवसीय सम्मेलन आयोजित किया गया। जिसमें उत्तरी एवं पश्चिमी राज्यों के पंचायत राज प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि जिला विकास जैसी संस्थाओं को जिला परिषद के अधीन कार्य करना चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों के लिए वेतन भत्ता आदि की व्यवस्था की जाय। इन संस्थाओं को अधिक शक्तियां दे दी जाय और जो शक्ति जिला, ब्लाक एवं गांव स्तर की संस्थाओं को दी जाय, उन्हें किसी तरह से समाप्त न की जाय और न ही वापस ली जाय। 1989 में पंचायत संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के उद्देश्य से प्रधानमन्त्री राजीव गांधी के काल में 64वां संविधान संसोधन विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया गया था। जिसमें 20 लाख से अधिक आबादी वाले राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों में त्रिस्तरीय (ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत) व्यवस्था का प्रावधान था। सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था थी। इसका चुनाव केन्द्रीय निर्वाचन आयोग के देखरेख

कराने की व्यवस्था थी। यह प्रस्ताव लोकसभा में तो पारित हो गया, लेकिन राज्य सभा ने इसे अस्वीकृत कर दिया। अतः यह प्रयास विफल हो गया।

1990 में गठित हरलाल सिंह खर्रा समिति ने ग्रामीण सुविधाओं और आवश्यकताओं से जुड़े सभी प्रशासनिक मामलों विशेषकर शिक्षा, आयुर्वेद, स्वास्थ्य, हैण्डपम्प आदि में पंचायती राज संस्थाओं का नियन्त्रण आवश्यक बताया। जिला परिषदों एवं जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के विलय का प्रस्ताव भी समिति ने किया। आर्थिक सुदृढ़ता स्थापित करने के लिए समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को दी जाने वाली प्रति व्यक्ति राजकीय सहायता में बृद्धि करने की भी संस्तुति की।

सन् 1991 में प्रधानमन्त्री पी0बी0 नरसिम्हा राव ने 64वें संविधान संसोधन की खामियों को दूर करते हुए पंचायती राज संस्थाओं को उपयोगी और गतिशील बनाने हेतु एक नया संसोधन विधेयक लाने का फैसला किया। 24 अप्रैल 1993 को यह संसोधन प्रस्ताव राष्ट्रपति की संस्तुति प्राप्त कर लिया। इसके द्वारा भी पंचायतों के त्रिस्तरीय ढ़ाँचे  को स्वीकृति प्रदान की गयी, लेकिन उन राज्यों के लिए जिनकी 20 लाख से कम थी यह ढ़ाँचा बाध्यकारी नहीं था। इसके द्वारा पंचायत संस्थाओं के प्रत्येक स्तर पर अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण का प्रावधान किया गया। प्रत्येक स्तर पर एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए भी आरक्षित किये गये। इनका चुनाव प्रत्येक पांच वर्ष के उपरान्त कराने का प्रावधान किया गया। यदि किन्ही परिस्थितियों में इनको भंग किया जाता है तो अधिकतम छः माह के भीतर अनिवार्य रूप से चुनाव कराना निश्चित किया गया।

संविधान के 73वें संसोधन के अनुक्रम में उत्तर प्रदेश  पंचायत विधि (संसोधन) विधेयक 1994 से प्रदेश  में प्रवृत हुआ। जिसमें संयुक्त प्रान्त पंचायत राज अधिनियम 1947 तथा उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद अधिनियम 1961 में संसोधन कर राज्य की तीनों स्तर की पंचायतों में एकरूपता लाने, पंचायतों (ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत) का संगठन, संरचना, अनुसूचित जाति, जनजाति, महिलाओं और पिछड़े-वर्ग के लिए आरक्षण, पंचायतों का निश्चित कार्यकाल, निर्वाचन आयोग तथा वित्त आयोग की स्थापना, पंचायतों के कृत्य, शक्तियां और उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में व्यापक व्यवस्था की गयी। उत्तर प्रदेश से अलग उत्तराखण्ड राज्य के निर्माण के पश्चात उत्तराखण्ड संशोधन अधिनियम संख्या- 08, में सन् 2002 द्वारा व्यवस्था की गयी कि उत्तर प्रदेशपंचायती राज अधिनियम 1947 तथा क्षेत्र पंचायत व जिला परिषद अधिनियम 1961 में जहाँ-जहाँ उत्तर प्रदेश आया है, वहाँ उत्तराखण्ड पढा जायेगा।

## 7.3 जिला पंचायत की संरचना

उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद अधिनियम 1961 में उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या- 9, सन् 1994 के द्वारा किये गये संसोधन के उपरान्त जिला पंचायत की संरचना जिले के समस्त क्षेत्र पंचायत प्रमुख, निर्वाचित सदस्य जो जिला पंचायत के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाते हैं, जो लगभग 50 हजार की जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। राज्य सरकार नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, टिहरी, पौड़ी, देहरादून, चमोली या उत्तरकाशी के पर्वतीय जिलों में उसके द्वारा निर्मित विनिर्दिष्ट ग्राम केन्द्र से एक किमी के अर्द्धव्यास (चौदह किमी के व्यास) के भीतर के क्षेत्र या उसके बराबर के किसी क्षेत्र को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र घोषित कर सकती है। भले ही इसकी जनसंख्या 50 हजार से कम हो। लोक सभा और राज्य विधान सभा के सदस्य जिनका निर्वाचन क्षेत्र जिला पंचायत में समाविष्ट हो तथा राज्य सभा और विधान परिषद के ऐसे सदस्य जो जिला पंचायत क्षेत्र के भीतर निर्वाचक के रूप में रजिस्ट्रीकृत हो से मिलकर होती है। इन सदस्यों को जिला पंचायत के कार्यवाहियों में भाग लेने और बैठकों में मत देने का अधिकार तो होता है, लेकिन जिला पंचायत अध्यक्ष व उपाध्यक्ष के निर्वाचन व उनके विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव में केवल निर्वाचित सदस्यों को ही मत देने का अधिकार होता है।

जिला पंचायत में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था उनके जनसंख्या के अनुपात में की गयी है, लेकिन प्रतिबन्ध यह है कि पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित सीटें 27 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। कुल स्थानों का एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित होता हैं। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित स्थानों में भी एक तिहाई स्थान उन वर्गों की स्त्रियों के लिए आरक्षित होता है।

जिला पंचायत के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने में से एक अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। जिला पंचायत अध्यक्षों के पद भी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित होते हैं। कुल स्थानों जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित स्थान भी शामिल हैं, में से एक तिहाई स्थान स्त्रियों के लिए आरक्षित होते हैं।

जिला पंचायत के द्वारा अपने दायित्वों का उचित रूप में निर्वहन करने के लिए कार्य समिति, वित्त समिति, शिक्षा एवं जनस्वास्थ्य समिति, कृषि, उद्योग एवं निर्माण समिति तथा समता समिति आदि का गठन किया जाता है। इसके

अतिरिक्त जिला पंचायत के द्वारा समय-समय पर आवश्यकतानुसार अधिनियम के अधीन रहते हुए अन्य समितियां भी नियुक्त कर सकती है।

## 7.4 जिला पंचायत राज्य सरकार और कर्मचारीगण

73वें संविधान संसोधन के व्यवस्थाओ के अनुरूप जिला पंचायत को प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की धुरी मानते हुए अधिकारों का प्रत्यायोजन किया गया है। इसके मूल में यह कल्पना रही है कि इससे प्रशासकीय क्षमता बढ़ाने, नागरिकों में स्थानीय समस्याओं के प्रति रूचि पैदा करने तथा जनता को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करने में आसानी होगी। इसलिए स्थानीय स्तर (जिले स्तर) की समस्याओं का समाधान उन्हीं के द्वारा किया जाना चाहिए, क्योंकि स्थानीय लोगों को क्षेत्रीय समस्याओं की अधिक जानकारी और अनुभव होता है। लेकिन राज्य सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि जिला पंचायत या उसके किसी समिति के कार्य सम्पादन में कोई चूक पाती है तो वह उसे पूर्ण करने के लिए एक समय-सीमा निर्धारित कर सकती है। यदि उस समय सीमा के भीतर जिला पंचायत उसे पूर्ण नहीं करती है तो राज्य सरकार जिला मजिस्ट्रेट या किसी अन्य प्राधिकारी को उस कार्य के सम्पादन का दायित्व सौंप सकती है। उस कार्य पर होने वाला खर्च जिला पंचायत के द्वारा ही चुकाया जाता है।

राज्य सरकार द्वारा जिला पंचायत के किसी सदस्य को भी उसके पद से हटाया जा सकता है, यदि उसने जिला पंचायत सदस्य के रूप में कहीं चर्चा में भाग लेकर या मत देकर अपना कोई निजी हित अथवा किसी को व्यवसायिक लाभ पहुँचाया है। इसके अतिरिक्त शारिरिक या मानसिक दृष्टि से अक्षम साबित होने या अपने पांच वर्ष के कार्यकाल या पूर्ववर्ती अवधि में उसके किसी ऐसे कृत्य के लिए जिससे जिला पंचायत को क्षति पहुँची हो तो उसके पद से हटा सकती है। लेकिन ऐसा करने से पूर्व वह सदस्य को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर अवश्य देती है।

किसी समय राज्य सरकार को यह प्रतीत या विश्वास हो जाय कि जिला पंचायत ने राज्य सरकार के आदेशों या अधिनियम द्वारा निर्धारित कर्तव्यों का पालन करने में शिथिलता बरती है या चूक की है या अपने अधिकारों का अतिक्रमण या दुरूपयोग किया है तो वह उससे स्पष्टीकरण मांग सकती है। विचारोपरान्त यदि स्पष्ट हो जाय कि जिला पंचायत को विघटित करना आवश्यक है तो राज्य सरकार जिला पंचायत को विघटित कर सकती है। इसके उपरान्त राज्य सरकार किसी एक या एक से अधिक व्यक्तियों को जिला पंचायत के अधिकारों तथा कर्तव्यों के सम्पादन हेतु नियुक्त कर सकती है। परन्तु विघटन के दिंनाक से छः माह के भीतर निर्धारित रीति से निर्वाचन कराना आवश्यक होता है।

जिला पंचायत तथा जिलाधिकारी के मध्य कैसा सम्बन्ध हो, यह पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत एक जटिल प्रश्न है एक जले की सर्वोच्च प्रतिनिधि संस्था है तो दूसरा जिले का सर्वोच्च सरकारी प्रतिनिधि या प्रशासनिक अधिकारी। इसलिए प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के समय यह प्रश्न उठा कि जिलाधीश की शक्तियों और प्रभावों को जिला पंचायत में क्या रूप दिया जाय। पंचायत व्यवस्था पर विचार करने के लिए सर्वप्रथम गठित बलवन्त राय मेहता समिति की राय थी कि जिलाधीश जिले के विकास विभागों के अधिकारियों का कप्तान होगा और योजनाओं के निर्माण और कार्यान्वन के आवश्यक समन्वय का उत्तरदायी होगा। समिति ने जिलाधीश को जिला पंचायत का चेयरमैन बनाये जाने की बात भी कही थी। किन्तु उसकी इस संस्तुति का अधिकांश राज्यों ने अपने-अपने ढंग से प्रयोग किया। उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखण्ड में जिलाधिकारी को जिला पंचायत तथा उसकी समितियों के बैठकों में सम्मिलित होने का अधिकार है, वह इस बैठकों के विचार-विमर्श में भाग ले सकता है, किन्तु उसे मतदान का अधिकार नहीं है।

जिलाधिकारी राज्य सरकार की और से जिला पंचायत को निर्देश देता है। जिला पंचायत या उसकी किसी समिति द्वारा प्रयुक्त या अध्यासित किसी चल सम्पत्ति अथवा उसके निर्देशाधीन किये जाने वाले किसी कार्य का निरीक्षण कर सकता है या करा सकता है। समय-समय पर समुचित नोटिस के पश्चात जिला पंचायत के नियोजन तथा विवरण विषयक बजट अनुदान से सम्बन्धित विषयों पर चर्चा करने के लिए बैठक बुला सकता है, जिसमें वह स्वयं अध्यक्ष तथा अधिकारी होगा। वह राज्य सरकार को कार्यों के विवरण की त्रैमासिक प्रगति प्रतिवेदन भेजता है।

जिला पंचायत जिले के मुख्य प्रतिनिधि संस्था होने के कारण जिले के अन्य अधिकारियों से भी जुड़ी होती है। जिला पंचायत के सदस्यों तथा अध्यक्ष का इन अधिकारियों के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध हो यह भी एक महत्वपूर्ण विचारणीय बिन्दु हैं कि जिला पंचायत को उसके कार्यों में सहयोग देने के लिए अपर जिला मजिस्ट्रेट (नियोजन) या जिला नियोजन अधिकारी, जिला स्वास्थ्य अधिकारी, विद्यालय उपनिरीक्षक, जिला पंचायत राज अधिकारी, सहायक अभियन्ता (लघु सिचाई) जिला पशुधन अधिकारी, जिला कृषि अधिकारी, जिला सहायक निबन्धक क्रमश: जिला पंचायत के अधीन मुख्य अधिकारी, स्वास्थ्य अधिकारी, शिक्षा अधिकारी, पंचायत राज अधिकारी, सिंचाई अधिकारी, पशुधन अधिकारी, कृषि अधिकारी और सहकारिता अधिकारी के पद धारण करेंगे। अपर जिला मजिस्ट्रेट (नियोजन) अथवा जिला नियोजन अधिकारी जिला पंचायत का मुख्य अधिकारी होता है। जिला पंचायत के कार्यों में वृद्धि तथा मुख्य अधिकारों के दायित्वों के निर्वहन में सहयोग देने तथा जिला पंचायत

कार्यालय के अन्तर्गत कार्यरत कर्मचारियों को नियन्त्रित करने के लिए एक अतिरिक्त मुख्य अधिकारी का पद सृजित है। जिला पंचायत का मुख्य अधिकारी जिले का विकास अधिकारी भी होता है, जिससे उसका कार्यभार बढ़ जाता है। जिससे वह जिला पंचायत के कार्यों में पर्याप्त समय नहीं दे पाता है। इसलिए वर्तमान में जिला पंचायत के मुख्य अधिकारी के प्रत्येक अधिकार का प्रयोग अतिरिक्त मुख्य अधिकारी ही करता है।

## 7.5 जिला पंचायत की वित्तीय व्यवस्था

जिला पंचायत (जिला बोर्ड) की स्थापना यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही कर दी गयी थी, लेकिन प्रारम्भ से ही इनकी वित्तीय व्यवस्था बहुत सुदृढ़ नहीं रही। जिसके कारण सन् 1935 में सरदार बल्लभ भाई पटेल ने स्थानीय निकायों के अधिवेशन में इन संस्थाओं की शोचनीय दशा पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि ‘‘ऐसा कहा जाता है कि मताधिकार व्यापक कर दिया गया है और स्थानीय निकायों को विस्तृत अधिकार दे दिये गये हैं। यह सच है और मैं इसे स्वीकार करता हूँ, पर जब तक स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति का पहले बन्दोबस्त नहीं होगा तब तक इन उपायों से क्या लाभ मिलेगा, मताधिकार की व्यापकता तथा कृत्यों के विस्तार से वही स्थिति होगी, जैसी एक मृत व्यक्ति को परिधान पहनाने से होती है।’’

प्रत्येक जिला पंचायत के अधिकारों एवं कार्यों का सुचारु रूप से संचालन करने के लिए जिला पंचायत निधि की स्थापना की गयी है। जिसमें जिला पंचायत या उसकी ओर से प्राप्त की गयी सभी धनराशियां या राज्य की संचित निधि से प्राप्त अनुदान सहित सभी ऋण जमा किये जाते है। जिला पंचायत नकद अथवा वस्तु के रूप में ऐसा अशंदान स्वीकार कर सकती है जो किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा किसी सार्वजनिक उपयोग के लिए दिया जाय। जिला पंचायत के वित्तीय व्यवस्था के दो तरह के स्रोत देखने को मिलते है- प्रथम राज्य सरकार संचित निधि से दिया जाने वाला अनुदान तथा द्वितीय जिला पंचायत द्वारा लगाया जाने वाला कर। जिला पंचायत आय के प्रमुख स्रोत- विभव एवं सम्पत्ति पर कर, सम्पत्ति से आय, घाटों से प्राप्त आय, कांजी हाउस से प्राप्त आय, मेलों तथा प्रदर्शनियों से आय, पशु बाजार से आय, दुकानों के लाईसेंस, ईंट-भट्ठे के लाइसेंस, आटा, तेल, धान, रूई, दाल, आदि मशीनों का लाइसेंस, पशु वधशाला पर लाइसेंस, हड्डी, चमड़ा खुर, सींग के लाइसेंस पर शुल्क आदि है।

## 7.6 जिला पंचायत के कार्य (अधिकार) और दायित्व

नये अधिनियिम के तहत जिला पंचायत को प्रभावी एवं सशक्त बनाने के दृष्टिकोण से निम्नलिखित अधिकार एवं कार्य सौपे गये हैं-

### 7.6.1 जिला पंचायत के कार्य(अधिकार)

1. कृषि उत्पादन बढ़ाने के उपायों की अभिवृद्धि, गोदामों की स्थापना और उनका अनुरक्षण करना।
2. सरकार द्वारा सौंपे गये भूमि सुधार, भूमि संरक्षण तथा चकबन्दी कार्यक्रमों की योजनाओं का कार्यान्वयन।
3. लघु सिंचाई और अन्तरखण्ड जल परियोजनाओं का निर्माण और अनुरक्षण, जल वितरण का प्रबन्ध, भूमिगत जल का विकास और जलाच्छादन का विकास करना।
4. पशुपालन और पशु चिकित्सा सेवाओं की स्थापना और अनुरक्षण, नस्लों का सुधार, दुग्ध उद्योग, कुक्कुट पालन तथा सूअर पालन की प्रोन्नति करना।
5. सिंचाई कार्यों में मत्स्य पालन का विकास तथा मछुआरा कल्याण कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।
6. सामाजिक और फार्मवानिकी, ईधन, वृक्षारोपण और रेशम उत्पादन की प्रोन्नति तथा बंजर भूमि का विकास करना।
7. लघु वन उत्पाद के कार्यक्रमों की प्रोन्नति और उनका क्रियान्वयन करना।
8. लघु उद्योग और खाद्य प्रसंस्करण इकाई की प्रोन्नति करना।
9. ग्रामीण और कुटीर उद्योग में प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना एवं अनुरक्षण तथा जिला स्तर पर पंचायत उद्योगों की स्थापना करना।
10. ग्रामीण आवास कार्यक्रमों की प्रोन्नति और विकास, अनावासीय क्षेत्र में ग्रामीण आवास का कार्यान्वयन, सामुदायिक केन्द्रों और विश्राम गृहों का निर्माण, ग्राम पंचायतों और क्षेत्र पंचायतों द्वारा किये गये ग्रामीण आवास कार्य का अनुश्रवण करना।
11. सार्वजनिक प्रयोग के लिए पीने के पानी का अनुरक्षण तथा जल प्रदूषण की रोकथाम और नियन्त्रण करना।
12. ईधन और चारा कार्यक्रमों का अनुश्रवण और विकास, ईधन और चाराक्षेत्र के लिए पौधों का अनुरक्षण और विकास तथा ग्राम पंचायतों एवं क्षेत्र पंचायतों द्वारा विनियमित किये गये कार्यक्रमों का अनुश्रवण करना।
13. जिले की ग्रामीण सड़कों, पुलियों, पुलों और जल मार्गो का विकास और अनुरक्षण, नदी के किनारों का अनुरक्षण सड़क पर दिशाओं और चिन्हों को अंकित करना तथा सड़कों और सार्वजनिक स्थानों पर अतिक्रमण हटाने में मदद करना।

14. ग्रामीण विद्युतीकरण में ग्राम पंचायतों तथा क्षेत्र पंचायतों की सहायता करना तथा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रकाश के वितरण में मदद करना।
15. गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का विकास तथा ग्राम पंचायतों व क्षेत्र पंचायतों के कार्यक्रमों में सहायता करना।
16. गरीबी उनमुलन कार्यक्रमों की योजना, अनुश्रवण और पर्यवेक्षण करना तथा अन्य विभागों के साथ कार्यक्रमों का समन्वय।
17. प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयों का निर्माण, अनुरक्षण और पर्यवेक्षण, जिले में सभी के लिए शिक्षा उपलब्ध कराना तथा जिले में प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा का सर्वेक्षण और पर्यवेक्षण करना।
18. तकनीकी और व्यवसायिक प्रषिक्षण केन्द्रों की स्थापना और उनका अनुश्रवण करना।
19. प्रौढ़ साक्षरता और अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों का नियोजन और कार्यान्वयन।
20. खण्ड स्तर और जिले में पुस्तकालयों और वाचनालयों का निर्माण और अनुरक्षण तथा कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।
21. सांस्कृतिक क्रियाकलापों की प्रोन्नति, क्षेत्रीय सांस्कृतिक और खेलकूद क्रियाकलापों की प्रोन्नति और पर्यवेक्षण तथा विशेष अवसरों पर लोक सांस्कृतिक क्रियाकलापों की व्यवस्था करना।
22. ग्रामीण बाजारों, मेलों(जिसके अन्तर्गत पशु मेले भी है) का पर्यवेक्षण एवं अनुरक्षण तथा ग्राम पंचायतों एवं क्षेत्र पंचायतों द्वारा किये गये बाजारों और मेलों से सम्बन्धित कार्यों का पर्यवेक्षण और अनुश्रवण करना।
23. महामारियों की रोकथाम और नियन्त्रण में क्षेत्र पंचायतों की सहायता करना और उपयुक्त रूप से वित्त पोषण करना, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और औषद्यालयों की स्थापना, अनुश्रवण और प्रबन्ध तथा पेयजल सुविधाएं उपलब्ध कराना।
24. परिवार कल्याण कार्यक्रमों का कार्यान्वयन, पर्यवेक्षण और अनुश्रवण करना।
25. प्रसूति एवं बाल स्वास्थ्य कार्यक्रमों का कार्यान्वयन तथा विद्यालय स्वास्थ्य एवं पोषण कार्यक्रमों की प्रोन्नति करना।

26. समाज कल्याण कार्यक्रमों, जिसके अन्तर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मन्द व्यक्तियों का कल्याण भी है में भाग लेना, वृद्धावस्था और विधवा पेंशन योजनाओं के समाज कल्याण कार्यक्रमों की प्रोन्नति करना।
27. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और कमजोर वर्गों के कल्याण की प्रोन्नति, ऐसी जातियों का सामाजिक अन्याय और शोषण से संरक्षण, छात्रावासों की स्थापना और प्रबन्ध तथा सामाजिक न्याय के लिए योजना तैयार करना तथा उनका कार्यान्वयन करना।
28. ग्रामीण वस्तुओं के वितरण का नियोजन और अनुश्रवण।
29. विकास योजनाओं का समन्वय और एकीकरण तथा सामुदायिक आस्तियों का परीक्षण और अनुरक्षण करना।
30. आर्थिक विकास के लिए योजना तैयार करना, क्षेत्र पंचायत की योजनाओं का पुनर्विलोकन, समन्वय और एकीकरण, खण्ड और ग्राम स्तर पर योजनाओं के निष्पादन को सुनिश्चित करना, सफलताओं और लक्ष्यों की नियतिकालिक समीक्षा और जिले के भीतर के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में समस्त विषयों पर सामग्री संग्रह करना और आकड़ों का अनुरक्षण करना।
31. दुर्भिक्ष निवारणार्थ निर्माण, मरम्मत और अनुरक्षण, सहायता कार्यों और सहायता गृहों की स्थापना और उनका अनुरक्षण और दुर्भिक्ष और दुष्प्राप्यता के समय ऐसी सहायता की व्यवस्था करना जो आवश्यक समझी जाय तथा निर्धन गृहों, शरणालयों, अनाथालयों, बाजारों और विश्राम गृहों की स्थापना, प्रबन्ध अनुरक्षण और निरीक्षण करना।

### 7.6.2 जिला पंचायत के दायित्व

1. पूर्व निर्मित अथवा अनिर्मित क्षेत्रों में नयी सार्वजनिक सड़कों का विन्यास तथा तदर्थ एवं उक्त सड़कों से लगे हुए भवनों और अहातों के निर्माणार्थ भूमि अर्जित करना।
2. अस्वास्थ्यकर क्षेत्रों का सुधार करना।
3. स्कूलों की स्थापना तथा अनुरक्षण से भिन्न उपायों द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों को आगे बढ़ाना।
4. जनगणना करना और ऐसी सूचना के लिए पारितोषिक देना जिससे जन्म-मरण के आंकड़ों की ठीक-ठीक प्रविष्टि हो सके।

5. ट्राम-पथों, हवाई राज-पथों तथा यातायात के अन्य साधनों का निर्माण, उन्हें आर्थिक सहायता देना या उनके विषय में प्रत्याभूति देना।
6. कोई क्षोभकर, खतरनाक या घृणित व्यापार, व्यवसाय या कार्य करने के लिए उपयुक्त स्थान प्राप्त करना अथवा प्राप्त करने में सहायता देना।
7. अपने क्षेत्राधिकार के भीतर नदियों और जल संभरण के अन्य स्रोतों का संरक्षण तथा उन्हें क्षति पहुँचाए जाने या दूषित अथवा कलुषित होने से बचाना।
8. पर्यटन की उन्नति करना।
9. जिले के भीतर अथवा बाहर कोई ऐसा कार्य करना, जिस पर होने वाला व्यय राज्य सरकार द्वारा या राज्य सरकार की स्वीकृति से जिला पंचायत द्वारा जिला निधि पर उपयुक्त रीति से भारित व्यय घोषित किया गया है।

## 7.7 ग्रामीण विकास में जिला पंचायत की भूमिका

73वें संविधान संसोधन के उपरान्त प्रायः सभी राज्यों ने जिला पंचायत को प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की धुरी मानते हुए जिले के विकास के लिए सबसे उपयुक्त संस्था माना है। इसलिए वर्तमान में उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड में जिले के ग्रामीण विकास के लिए स्थापित जिला ग्रामीण विकास अभिकरण का अध्यक्ष जिला पंचायत के अध्यक्ष को बनाया गया है। प्रत्येक जिले में जिला नियोजन समिति की स्थापना की गयी है, जिसका प्रमुख जिले का प्रभारी मन्त्री होता है। समिति के द्वारा निर्मित योजनाओं को क्रियान्वित करने में जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की भूमिका प्रमुख होती है। इसका अध्यक्ष जिला पंचायत अध्यक्ष के होने के कारण जिले के समस्त विकास सम्बन्धी विभागों पर भी उसका नियन्त्रण स्थापित हो जाता है।

सरकार द्वारा ग्रामीण विकास के लिए संचालित सभी योजनाओं का क्षेत्र पंचायत और ग्राम पंचायत स्तर पर समन्वित और संचालित करने में जिला पंचायत की प्रमुख भूमिका होती है। जिला पंचायत के अधिनियम की अनुसूची- 2 के भाग 'क' के अन्तर्गत जिले के 32 विभागों के जिला स्तरीय कार्यों को सम्पादित करने का अधिकार दे दिया गया है। इसके अतिरिक्त जिला पंचायत अपने सीमित साधनों से जिले में कच्ची व पक्की सड़कों का निर्माण कराता है। किसी क्षोमकर खतरनाक या घृणित व्यापार या कार्य करने के लिए उपयुक्त स्थान प्राप्त करता है या प्राप्त करने में सहयोग देता है। अपने अधिकार क्षेत्र में नदियों तथा अन्य जल स्रोतों का संरक्षण तथा उन्हें

दूषित होने से बचाता है। फैक्ट्रियों, स्कूलों तथा सार्वजनिक समागम के अन्य स्थानों के लिए शौचालयों की व्यवस्था करता है।

इसके अतिरिक्त जिला पंचायत द्वारा क्षेत्र पंचायत तथा ग्राम पंचायत के बीच समन्वय स्थापित करने तथा उनकी योजनाओं को स्वीकृति देने का भी कार्य किया जाता है। इस प्रकार कहा जाता है कि जिला पंचायत जहाँ ग्रामीण विकास सम्बन्धी अनेको कार्यों को स्वयं सम्पन्न करती है तो वही तमाम योजनाओं के सम्बन्ध में वह क्षेत्र पंचायत तथा ग्राम पंचायत में समन्वय बनाये रखते हुए उनके माध्यम से संचालित करवाती है। जिससे ग्रामीण विकास की अवधारणा वर्तमान में तेजी के साथ पल्लवित तथा पुष्पित हो रही है। आवश्यकता है जिला पंचायत को और अधिक वित्तीय शक्तियां प्रदान करने की जिससे वह सचमुच जिले के विकास के प्रतिदर्श के रूप में कार्य कर सके।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. मनु स्मृति में गांवों का सबसे बड़ा अधिकारी सहस्रपति के अधीन कितने गांव होते थे?
2. स्वायत्त शासन की संस्थाएं स्थापित करने हेतु लार्ड रिपन द्वारा प्रस्ताव किस सन् में पारित किया गया?
3. उत्तर प्रदेश यूनाइटेड प्राविन्शियल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट 1922 कब लागू किया गया था?
4. उत्तर प्रदेश में जिला पंचायत को कानूनी रूप से व्यवस्थित करने का श्रेय किस अधिनियम को दिया जाता है?
5. भारत में पंचायती राज संस्थाओं के द्वि-स्तरीय ढ़ाँचे की सिफारिश किस समिति के द्वारा की गयी थी?
6. क्या जिले के सभी क्षेत्र पंचायत प्रमुख भी जिला पंचायत के सदस्य होते हैं?
7. राज्य सरकार की ओर से उसके निर्देश जिला को पंचायत कौन देता है?
8. जिला पंचायत के अधिकारों और दायित्वों का निर्वहन करने के लिए किस निधि की स्थापना की गयी है?

## 7.9 सारांश

उच्च स्तरीय ग्रामीण संस्थाए भी भारत में प्राचीन काल से देखने को मिलती हैं। किन्तु अपने वर्तमान स्वरूप में जिला पंचायत (जिला परिषद) क्षेत्र पंचायत एवं जिला पंचायत अधिनियम 1961 के द्वारा अस्तित्व में आयी। इसका अद्यतन स्वरूप उत्तर प्रदेशपंचायत विधि अधिनियम 1994 एवं उत्तराखण्ड संसोधन अधिनियम संख्या-08, सन् 2002 की देन है। यह जिले में प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की धुरी है। इसलिए इसके कुछ सदस्यो को प्रत्यक्ष रूप से जिला पंचायत क्षेत्र की जनता के द्वारा चुने जाने की व्यवस्था की गयी है। इसके अध्यक्ष को जिला

ग्रामीण विकास अभिकरण का अध्यक्ष बनाने के पीछे भी उद्देश्य यही है कि जनता के प्रतिनिधियों को ही जिले के विकास का दायित्व सौंपा जाय।

जिला पंचायत को कुछ वित्तीय शक्तियां भी दी गयी हैं, जिससे व सीमित साधनों की व्यवस्था कर आत्मनिर्भर बन सके। ग्रामीण विकास की योजनाओं को नियन्त्रित व समन्वित करने में भी इसकी भूमिका प्रमुख मानी जाती है। जिला पंचायत मनमाने या निरंकुश तरीके से कार्य न कर सके, इसके लिए इस पर राज्य सरकार के द्वारा आयुक्त एवं जिलाधिकारी के माध्यम से नियन्त्रण भी रखा जाता है। ग्रामीण विकास की योजनाओं को समन्वित व संचालित करने में भी जिला पंचायत की प्रमुख भूमिका होती है। यह अपने सीमित साधनों द्वारा गांवों के साफ-सफाई, नाली, खडन्जा, कच्ची-पक्की सड़क, वृक्षारोपण आपदा प्रबन्धन आदि के कार्यों को भी सम्पन्न करती है। इसके अलावा यह ग्राम योजनाओं को स्वीकृत करने उसके प्रधान, उपप्रधान के त्याग पत्र को स्वीकारने आदि से सम्बन्धित कार्यों को भी करती है। ग्रामीण विकास में जिला पंचायत के सहभगिता को नकारने का काम वर्तमान परिदृष्य में कोई भी नहीं कर सकता है।

## 7.10 शब्दावली

गणतन्त्रात्मक- जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों का शासन, प्रजातन्त्र- वह शासन व्यवस्था जिसमें जनता की अधिक से अधिक सहभागिता हो, शिलालेख- पत्थर पर अंकित आलेख, भौतिक- सांसारिक जीवन से सम्बन्धित, ड्रिस्ट्रिक्ट बोर्ड- जिला स्तरीय कार्यकारिणी व्यवस्था, अनुदान- सरकार द्वारा दी जाने वाली वह राशि जिसे वापस नहीं करना पड़ता है। सम्मेलन- जहाँ बहुत से लोग किसी निश्चित उद्देश्य के लिए इकट्ठा हों, संसदीय-संसद के अनुरूप, आयोग- एक अधिकार सम्पन्न संस्था, सार्वजनिक- जो समाज के सभी लोगों से सम्बन्धित हो, नियतिकालिक- जिसका समय निश्चित हो

## 7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** लगभग एक हजार गांव, **2.** 1882 ई0 में, **3.** हाँ, **4.** पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम 1961, **5.** अशोक मेहता समिति, **6.** हाँ, **7.** जिलाधिकारी, **8.** जिला निधि

## 7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अशोक शर्मा भारत में स्थानीय प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, सवाई मान सिंह हाइवे, जयपुर।

2. प्रो0 अवधनारायण दूबे, पंचायती राज का बदलता स्वरूप, मिश्रा ट्रेंडिग कार्पोरेशन, वाराणसी।
3. तिलक रघुकुल, लोकतन्त्र स्वरूप और समस्याएं, लखनऊ।
4. के0के0राय क्षेत्र पंचायत व जिला पंचायत अधिनियम, एलिया लॉ एजेंसी इलाहाबाद।

## 7.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डा0 प्रभुदत्त शर्मा, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1986
2. देवेन्द्र उपाध्याय, पंचायती राज व्यवस्था, जगदीश भारद्वाज सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली।
3. अरूण श्रीवास्तव, भारत में पंचायती राज, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।

## 7.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जिला पंचायत के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक निबन्ध लिखे।
2. जिला पंचायत के संगठन तथा अधिकार व कृत्यों का उल्लेख करें।
3. जिला पंचायत की वित्तीय स्थिति का उल्लेख करते हुए ग्रामीण विकास में उसकी भूमिका को रेखांकित कीजिये।

# इकाई- 8 पंचायती राज और तिहत्तरवां(73वां) संविधान संशोधन अधिनियम

**इकाई की संरचना**


8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 पंचायती राज

8.3 स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के रूप में पंचायती राज

8.4 स्वतंत्रता पूर्व भारत में पंचायती राज

8.5 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज

8.6 पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियाँ

8.6.1 बलवंत राय मेहता समिति

8.6.2 अशोक मेहता समिति

8.6.3 जी0वी0के0 समिति

8.6.4 डॉ0 एल0एम0 सिंघवी समिति

8.6.5 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति

8.7 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की सोच

8.8 तिहत्तरवां संविधान अधिनियम

8.9 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

8.10 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की विशेषताऐं

8.11 सारांश

8.12 शब्दावली

8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.16 निबन्धात्मक प्रश्न

## 8.0 प्रस्तावना

शासन प्रणालियों के विकास क्रम में मनुष्य ने अनेक प्रकार की शासन प्रणालियों को अपनाया। शासन प्रणालियों का कोई भी स्वरूप- चाहे वह तानाशाही शासन हो, राजशाही शासन, सैनिक शासन, साम्यवादी शासन या लोकतांत्रिक शासन प्रणाली, ये सभी शासन प्रणालियाँ भौगोलिक परिस्थितियों के परिणाम ना होकर व्यक्ति के विचारों और सिद्धान्तों का परिणाम हैं। शासन प्रणालियों के विकास क्रम में ज्यादातर समय राजशाही व तानाशाही शासन प्रणाली का रहा, किन्तु एक बेहतर जीवन की खोज में व्यक्ति का संघर्ष लगातार जारी रहा। जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति ने अपने ऊपर शासन के लिए स्वयं को शासक बनाने का निश्चय किया और लोकतंत्र या प्रजातंत्र शासन प्रणाली का स्वरूप सामने आया। लोकतंत्र में भी सबसे निचले स्तर तक के व्यक्ति के हाथों में सत्ता की पहुँच हो और वो शासन के कार्यों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके इसके लिए शासन-सत्ता का एक जगह केन्द्रीकरण ना करके इसके विकेन्द्रीकरण को अपनाया गया। सत्ता विकेन्द्रीकरण की सोच ने स्थानीय स्वशासन को जन्म दिया और सबसे निचले स्तर पर पंचायती और नगरीय शासन का स्वरूप सामने आया। लोकतंत्रीय शासन प्रणाली में ही सत्ता का विकेन्द्रीकरण सम्भव है। आज हम सभी भारत में पंचायती राज और नगरीय शासन से अच्छी तरह परिचित हैं।

## 8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पंचायती राज के सम्बन्ध में जान पाओगे।
- स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद भारत में पंचायती राज की स्थिति के बारे में जान पायेंगे।
- 73वें संविधान संशोधन  के पीछे क्या सोच थी, इस विषय में जान पायेंगे ।
- 73वें संविधान संशोधन और इस संविधान में मौजुद मुख्य बातों(उपबन्धों) के विषय में जान पायेंगे ।

## 8.2 पंचायती राज

पंचायती राज का इतिहास कोई नया नहीं अपितु यह आदिकाल से हमारी पुरातन धरोहर है। भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में सामुदायिकता की भावना प्राचीन काल  से विद्यमान रही है। इसी सामुदायिकता व परम्परागत संगठन के आधार पर पंचायत व्यवस्था का जन्म हुआ। इसीलिए हमारे देश में पंचायतों की व्यवस्था भी सदियों से चली आ रही है। भारतीय संस्कृति के विकास के साथ-साथ पंचायती व्यवस्था का जन्म और विकास हुआ। पंचायत

शब्द पंच+आयत से बना है। 'पंच' का अर्थ है, समुदाय या संस्था तथा 'आयत' का अर्थ है विकास या विस्तार। अतः सामूहिक रूप से गाँव का विकास ही पंचायत का वास्तविक अर्थ है। ये संस्थाऐं हमारे समाज की बुनियादी संस्थाऐं हैं और किसी न किसी रूप में ये संस्थाऐं हमारी संस्कृति व शासन-प्रणाली का अभिन्न हिस्सा रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास, प्रशासन व न्याय की जिम्मेदारी इन्हीं संस्थाओं की थी। राजा, महाराजा भी स्थानीय स्तर पर काम-काज के संचालन हेतु इन्हीं संस्थाओं पर निर्भर रहते थे। स्थानीय स्तर पर सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में न रह कर सामूहिक रहती थी। इसीलिए इन्हें गणतन्त्र की स्थानीय इकाईयों के रूप में मान-सम्मान दिया जाता था। ग्राम पंचायत ग्रामीण क्षेत्रों में शासन प्रबन्ध, शान्ति और सुरक्षा की एकमात्र संस्थाऐं रही हैं। डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि ये समस्त जनता की सामान्य सभा के रूप में अपने सदस्यों के समान अधिकारों, स्वतंत्रताओं के लिए निर्मित होती हैं, ताकि सब में समानता, स्वतंत्रता तथा बुधुत्व का विचार दृढ़ रहे। अतः यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में पंचायती राज का गौरवशाली अतीत रहा है।

प्राचीन काल में पंचायतों का स्वरूप कुछ और था। यद्यपि इन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा नहीं प्राप्त था लेकिन गांवों से जुड़े विकास व न्याय सम्बन्धित निर्णयों के लिए ये संस्थाऐं पूर्ण रूप से जिम्मेदार थीं। प्राचीन काल में गाँवों में पंच परमेश्वर की प्रणाली मौजूद थी। गाँव में सर्वसहमति से चुने गये पाँच गणमान्य व बुद्धिमान व्यक्तियों को गाँव में न्याय व्यवस्था बनाये रखने व गाँव के विकास हेतु निर्णय लेने का अधिकार था और उन्हें तो पंच परमेश्वर तक कहा जाता था। पंच परमेश्वर द्वारा न्याय को सरल और सुलभ बनाने की प्रथा काफी मजबूत थी। उस समय ये पंच एक संस्था के रूप में कार्य करते थे। गाँव के झगड़े, गाँव की व्यवस्थायें सुधारना जैसे मुख्य कार्य पंच-परमेश्वर संस्था किया करती थी। उसके कायदे-कानून लिखित नहीं होते थे फिर भी उनका प्रभाव समाज पर ज्यादा होता था। पंचों के फैसले के खिलाफ जाने की कोई सोच भी नहीं सकता था। पंचों का सम्मान बहुत था व उनके पास समाज का भरोसा और ताकत भी थी। लोग पंचों के प्रति बड़ा विश्वास रखते थे और उनका निर्णय सहज स्वीकार कर लेते थे। पंच परमेश्वर भी बिना किसी पक्षपात के निर्णय किया करती थी। मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी कहानी पंच परमेश्वर द्वारा प्राचीन काल में स्थापित इस पंच प्रणाली को काफी सरल तरीके से समझाया है। प्राचीन काल में जातिगत व कबाइली पंचायतों का भी जिक्र भी मिलता है। इन पंचायतों के प्रमुख गाँव के विद्वान व कबीले के मुखिया हुआ करते थे। इन पंचायतों में कोई भी निर्णय लेने हेतु तब तक विचार-विमर्श किया जाता था जब तक कि सर्वसहमति से निर्णय न हो जाये।

## 8.3 स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के रूप में पंचायत व्यवस्था

राजा-महाराजा काल में स्थानीय स्वशासन को काफी महत्व दिया गया। उनके द्वारा भी जनता को सत्ता सौंपने की प्रथा को अपनाया गया। भारत जैसे विशाल देश को एक केन्द्र से शासित करना राजाओं व सम्राटों के लिए सम्भव नहीं था। अतः राज्य को सूबों, जनपदों, ग्राम समितियों अथवा ग्राम सभाओं में बांटा गया। वेदों, बौद्ध ग्रन्थों, जातक कथाओं, उपनिषदों आदि में इस व्यवस्था के रूप में पंचायतों के आस्तित्व के पूर्ण साक्ष्य मिलते हैं। मनुस्मृति तथा महाभारत के 'शांति-पर्व' में ग्राम सभाओं का उल्लेख है। रामायण में इसका वर्णन जनपदों के नाम से आता है। महाभारत काल में भी इन संस्थानों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वैदिक कालीन तथा उत्तर-वैदिक कालीन इतिहास के अवलोकन में यह बात स्पष्ट हो गई है कि प्राचीन भारत का प्रत्येक ग्राम एक छोटा सा स्वायत्त राज्य था। इस प्रकार के कई छोटे-छोटे गाँवों और छोटे-छोटे प्रादेशिक संघ मिलकर बड़े संघ बन जाते थे। संघ, पूर्णतः स्वावलम्बी थे तथा एक-दूसरे से बड़ी अच्छी तरह जुड़े हुए तथा सम्बन्धित थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी गाँवों के छोटे-छोटे गणराज्यों की बात कही गई है। सर चार्ल्स मेटकाफ ने तो पंचायतों को गाँव के छोटे-छोटे गणतन्त्र कहा था जो स्वयं में आत्मनिर्भर थे। बौद्ध व मौर्य काल के समय पंचायतों के आस्तित्व की बात कही गई है। बौद्ध काल के संघों की कार्य-पद्धति ग्राम राज्य की प्रथा को दर्शाती है। बौद्ध संघों के शासन की प्रणाली वस्तुतः भारत की ग्राम पंचायतों तथा ग्राम संघों से ही ली गई थी। गुप्त काल में भी ग्राम समितियां, पंचायतों के रूप में कार्य करती थीं। चन्द्रगुप्त के दरबार में रहने वाले यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के वृतान्त से उसके बारे में काफी सामग्री मिलती है। मैगस्थनीज के वृतान्त से उस समय के नगर प्रशासन तथा ग्राम प्रशासन पर खासा प्रकाश पड़ता है। नगरों का प्रशासन भी पंचायत-प्रणाली से ही होता था और पाटलिपुत्र का प्रशासन उसकी सफलता का सूचक है। मैगस्थनीज के अनुसार नगर प्रशासन भी ग्राम प्रशासन की भाँति ही होता था। नगर का शासन एक निर्वाचित संस्था के हाथ में होता था, जिसमें 30 सदस्य होते थे। सदस्य 06 समितियों में विभक्त होते थे। प्रत्येक समिति अलग-अलग विषयों का प्रबन्धन करती थी। कुछ विषय अवश्य ऐसे थे जो सीधे राजकीय नियंत्रण में होते थे।

प्राचीन काल में राजा लोग महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय इन पंचायतों से पूर्ण विचार-विमर्श करते थे। स्थानीय स्वशासन की ये संस्थाऐं, स्थानीय स्तर पर अपना शासन खुद चलाती थीं। लोग अपने विकास के बारे में खुद सोचते थे, अपनी समस्याऐं स्वयं हल करते थे एवं अपने निर्णय स्वयं लेते थे। वास्तव में जिस स्वशासन की बात हम आज कर रहे हैं, असली स्वशासन वही था। यह कह सकते हैं कि हमारे गाँव का काम गाँव में और गाँव का राज गाँव में था। पंचायतें हमारे गाँव समाज की ताकत थी।

ग्रामों के इस संगठनों की सफलता का रहस्य केवल यह था कि ग्रामीण अपने अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों की अधिक चिंता करते थे। इस तरह भारत के ग्रामों के संगठन की परम्परा उत्पन्न हुई, पनपी और इसमें दीर्घकाल तक की सफलता से देश के ग्रामीणों को समृद्ध, सुसम्पन्न तथा आत्मनिर्भर बनाया। पंचायतों के कारण ही काफी समय तक विदेशी अपना आर्थिक प्रभुत्व जमाने में असमर्थ रहे।

मध्य काल में पंचायतों के विकास पर खास ध्यान नहीं दिया गया। इस दौरान समय-समय पर विदेशियों के आक्रमण भारत में हुए। मुगलों के भारत में आधिपत्य के साथ ही शासन प्रणाली में नकारात्मक बदलाव आये । लोगों की अपनी बनाई हुई व्यवस्थाऐं चरमराकर धराशायी हो गई। समस्त सत्ता व शक्ति बादशाह व उसके खास कर्मचारियों के हाथों में केन्द्रित हो गयी। यद्यापि मुगल बादशाह अकबर द्वारा स्थानीय स्वशासन को महत्व दिया गया और उस समय ग्राम स्तरीय समस्त कार्य पंचायतों द्वारा ही किया जाता था। लेकिन अन्य शासकों के शासनकाल में पंचायत व्यवस्था का धीरे-धीरे विघटन का दौर शुरू हुआ जो ब्रिटिश काल के दौरान भी अंग्रेजों की केन्द्रीकरण की नीति के कारण चलता रहा। पंच-परमेश्वर प्रथा की अवहेलना से पंचायतों व स्थानीय स्वशासन को गहरा झटका लगा, जिसके परिणाम स्वरूप जो छोटे-छोटे विवाद पहले गाँव में ही सुलझ जाया करते थे, अब वह दबाये जाने लगे व सदियों से चली आ रही स्थानीय स्तर पर विवाद निपटाने की प्रथा का स्थान कोर्ट-कचहरी ने लेना शुरू किया। जिन प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा व उपयोग गाँव वाले स्वयं करते थे वे सब अंग्रेजी शासन के अर्न्तगत आ गये और उनका प्रबन्धन भी सरकार के हाथों चला गया। स्थानीय लोगों के अधिकार समाप्त हो गये।

कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि स्थानीय स्वशासन की परम्परा प्राचीन काल में काफी मजबूत थी। स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं जन-समुदाय की आवाज हुआ करती थी। वर्तमान की पंचायत व्यवस्था का मूल आधार हमारी पुरानी सामुदायिक व्यवस्था ही है। यद्यपि मध्यकाल व ब्रिटिश काल में पंचायती राज व्यवस्था लडखड़ा गई थी, लेकिन भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के लिए पुनः प्रयास शुरू हुए और पंचायती राज व्यवस्था भारत मे पुनः स्थापित की गई। जिसके बारे में आप आगे विस्तार से अध्याय करेंगे।

## 8.4 स्वतंत्रता पूर्व भारत में पंचायती राज

स्वतन्त्रता पूर्व पंचायतों की मजबूती व सुधार हेतु विशेष प्रयास नहीं हुए जिस कारण पंचायती राज व्यवस्था लड़खड़ाती रही। मध्य काल में मुस्लिम राजाओं का शासन भारत के विभिन्न हिस्सों में फैल गया। यद्यपि स्थानीय शासन की संस्थाओं का मजबूती के लिए विशेष प्रयास नहीं किये गये, परन्तु मुस्लिम शासन ने अपने हितों में

पंचायतों का काफी उपयोग किया। जिसके फलस्वरूप पंचायतों के मूल स्वरूप को धक्का लगा और वे केन्द्र के हाथों की कठपुतली बन गये। सम्राट अकबर के समय स्थानीय स्वशासन को पुनः मान्यता मिली। उस काल में स्थानीय स्वशासन की इकाइयाँ कार्यशील बनी। स्थानीय स्तर पर शासन के सारे कार्य पंचायतें ही करती थीं और शासन उनके महत्व को पूर्णतः स्वीकार करता था। लेकिन मुस्लिम काल के इतिहास को अगर समग्र रूप में देखा जाए तो इस काल में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को मजबूती नहीं मिल सकी।

ब्रिटिश काल के दौरान भी प्राचीन पंचायत व्यवस्था लड़खड़ाती रही। अंग्रजों शासन काल मे सत्ता का केन्द्रीकरण हो गया और दिल्ली सरकार पूरे भारत पर शासन करने लगी। केन्द्रीकरण की नीति के तहत अंग्रेज तो पूरी सत्ता अपने कब्जे में करके एक-क्षत्र राज चाहते थे। भारत की विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था उन्हें अपने मनसूबों को पूरा करने में एक रुकावट लगी। इसलिये अंग्रेजों ने हमारी सदियों से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की परम्परा व स्थानीय समुदाय की ताकत का तहस-नहस कर शासन की अपनी व्यवस्था लागू की। जिसमें छोटे-छोटे सूबे तथा स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं कमजोर बना दी गयी या पूरी तरह समाप्त कर दी गयी। धीरे-धीरे सब कुछ अंग्रेजी सरकार के अधीन होता गया। सरकार की व्यवस्था मजबूत होती गयी और समाज कमजोर होता गया। परिणाम यह हुआ कि यहाँ प्रशासन का परम्परागत रूप करीब-करीब समाप्तप्राय हो गया और पंचायतों का महत्व काफी घट गया। अंग्रेजी राज की बढ़ती ताकत व प्रभाव से आम आदमी दबाव में था। समाज में असंतोष बढ़ने लगा, जिसके कारण 1909 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक विकेन्द्रीकरण कमीशन की नियुक्ति की गयी। 1919 में ''मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार'' के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतों को फिर से स्थापित करने का काम प्रान्तीय शासन पर छोड़ दिया। अंग्रेजों की नियत तब उजागर हुई, जब एक तरफ पंचायतों को फिर से स्थापित करने की बात कही गई और दूसरी तरफ गाँव वालों से नमक बनाने तक का अधिकार छुड़ा लिया। इसी क्रम में 1935 में लार्ड वैलिंग्टन के समय भी पंचायतों के विकास की ओर थोड़ा बहुत ध्यान दिया गया लेकिन कुल मिलाकर ब्रिटिशकाल में पंचायतों को फलने-फूलने के अवसर कम ही मिले।

हम नब्बे के दशक में भारत सरकार द्वारा पंचायतों को नया स्वरूप देने के उद्देश्य से भारतीय संविधान में किये गये 73वें संशोधन अधिनियम के बारे में पढ़ेंगे। प्राचीन समय में भी देश के गांवों का पूरा कामकाज पंचायतें ही चलाती थीं। लोग इस संस्था को गहरी आस्था व सम्मान की की दृष्टि से देखते थे, इसलिये इसका निर्णय भी सब को मान्य होता था। इसी धारणा को ध्यान में रख कर व सामान्य व्यक्ति की शासन में भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए

पंचायतों को संवैधानिक स्थान देने की आवश्यकता हुई। जिसके लिए संविधान का 73वां संविधान संशोधन किया गया। जिसका विस्तृत अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

## 8.5 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पंचायतों के पूर्ण विकास के लिये प्रयत्न शुरू हुए। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी स्वराज और स्वावलम्बन के लिये पंचायती राज के प्रबलतम समर्थक थे। गाँधी जी ने कहा था- ‘‘सच्चा स्वराज सिर्फ चंद लोगों के हाथ में सत्ता आ जाने से नहीं बल्कि इसके लिये सभी हाथों में क्षमता आने से आयेगा। केन्द्र में बैठे बीस व्यक्ति सच्चे लोकतन्त्र को नहीं चला सकते। इसको चलाने के लिये निचले स्तर पर प्रत्येक गाँव के लोगों को शामिल करना पड़ेगा।’’ गाँधी जी की ही पहल पर संविधान में अनुच्छेद- 40 शामिल किया गया। जिसमें यह कहा गया कि राज्य ग्राम पंचायतों को सुदृढ़ करने हेतु कदम उठायेगा तथा पंचायतों को प्रशासन की इकाई के रूप में कार्य करने के लिये आवश्यक अधिकार प्रदान करेगा। यह अनुच्छेद राज्य का नीति निर्देशक सिद्धान्त बना दिया गया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिये विभिन्न कमीशन नियुक्त किये गये, जिन्होंने पंचायती राज व्यवस्था को पुर्नजीवित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया।

भारत में सन् 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये। किन्तु प्रारम्भ में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिल सकी, इसका मुख्य कारण जनता का इसमें कोई सहयोग व रुचि नहीं थी। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सरकारी कामों के रुप में देख गया और गाँववासी अपने उत्थान के लिए स्वयं प्रयत्न करने के स्थान पर सरकार पर निर्भर रहने लगी। इस कार्यक्रम के सूत्रधार यह आशा करते थे कि जनता इसमें आगे आये और दूसरी ओर उनका विश्वास था कि सरकारी कार्यवाही से ही यह कार्यक्रम सफल हो सकता है। कार्यक्रम जनता ने चलाना था, लेकिन वे बनाये उपर से जाते थे। जिस कारण इन कार्यक्रमों में लोक कल्याण के कार्य तो हुए लेकिन लोगों की भागीदारी इनमें नगण्य थी। ये कार्यक्रम लोगों के कार्यक्रम होने के बजाय सरकार के कार्यक्रम बनकर रह गये। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के असफल हाने के कारणों का अध्ययन करने के लिए एक कमेटी गठित की गयी, जिसका नाम बलवन्त राय मेहता समिति था।

## 8.6 पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियाँ

पंचायतों के विकास के लिए समय-समय पर अनेक समितियां गठित की गयी-

**8.6.1 बलवंत राय मेहता समिति**

1957 में सरकार ने पंचायतों के विकास पर सुझाव देने के लिए श्री बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में यह सिफारिश की गयी कि सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की तुरन्त स्थानपा की जानी चाहिए। इसे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का नाम दिया गया। मेहता कमेटी के अपनी निम्नलिखित शिफारिशें रखी-

1. ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड(ब्लाक) स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद। अर्थात् पंचायतों की त्रिस्तरीय संरचना बनायी जाये।
2. पंचायती राज में लोगों को सत्ता का हस्तान्तरण किया जाना चाहिए।
3. पंचायती राज संस्थाऐं जनता के द्वारा निर्वाचित होनी चाहिए और सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अधिकारी उनके अधीन होने चाहिए।
4. साधन जुटाने व जन सहयोग के लिए इन संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए।
5. सभी विकास सम्बन्धी कार्यक्रम व योजनाऐं इन संगठनों के द्वारा लागू किये जाने चाहिए।
6. इन संगठनों को उचित वित्तीय साधन सुलभ करवाये जाने चाहिए।

राजस्थान वह पहला राज्य है जहाँ पंचायती राज की स्थापना की गयी। 1958 में सर्वप्रथम पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 02 अक्टूबर को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज का दीपक प्रज्जवलित किया और धीरे-धीरे गाँवों में पंचायती राज का विकास शुरू हुआ। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में यह पहला कदम था। 1959 में आन्ध्र प्रदेश में भी पंचायती राज लागू किया गया। 1959 से 1964 तक के समय में विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं को लागू किया गया और इन संस्थाओं ने कार्य प्रारम्भ किया। लेकिन इस राज से ग्रामीण तबके के लोगों का नेतृत्व उभरने लगा जो कुछ स्वार्थी लोगों की आँखों में खटकने लगा, क्योंकि वे शक्ति व अधिकारों को अपने तक ही सीमित रखना चाहते थे। फलस्वरूप पंचायती राज को तोड़ने की कोशिशें भी शुरू हो गयी। कई राज्यों में वर्षों तक पंचायतों में चुनाव ही नहीं कराये गये। 1969 से 1983 तक का समय पंचायती राज व्यवस्था के ह्रास का समय था। लम्बे समय तक पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव नहीं करवाये गये और ये संस्थाऐं निष्क्रीय हो गयी।

### 8.6.2 अशोक मेहता समिति

जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद पंचायतों को मजबूत करने के उद्देश्य से 12 दिसम्बर 1977 को पंचायती राज संस्थाओं में आवश्यक परिवर्तन सुझाने के लिए में श्री "अशोक मेहता" की अध्यक्षता में 13 सदस्यों की कमेटी गठित की गयी। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं मे आई गिरावट के लिए कई कारणों को जिम्मेदार बताया। इसमें प्रमुख था कि पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों से बिल्कुल अलग रखा गया है। अशोक मेहता समिति ने महसूस किया कि पंचायती राज संस्थाओं की अपनी कमियां स्थानीय स्वशासन को मजबूती नहीं प्रदान कर पा रही हैं। इस समिति द्वारा पंचायतों को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये गये-

1. समिति ने दो स्तरों वाले ढाँचे, जिला परिषद को मजबूत बनाने और ग्राम पंचायत की जगह मण्डल पंचायत की सिफारिश की। अर्थात पंचायती राज संस्थाओं के दो स्तर हों, जिला परिषद व मंडल परिषद।
2. जिले को तथा जिला परिषद को समस्त विकास कार्यों का केन्द्र बनाया जाए। जिला परिषद ही आर्थिक नियोजन करें और जिले में विकास कार्यों में सामन्जस्य स्थापित करें और मंडल पंचायतों को निर्देशन दें।
3. पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन में जिला परिषद को मुख्य स्तर बनाने और राजनैतिक दलों की सक्रिय भागीदारी पर बल दिया।
4. पंचायतों के सदस्यों के नियमित चुनाव की सिफारिश की। राज्य सरकारों को पंचायती चुनाव स्थगित न करने व चुनावों का संचालन मुख्य चुनाव आयुक्त के द्वारा किये जाने का सुझाव दिया।
5. कमेटी ने यह सुझाव भी दिया कि पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने के लिये संवैधानिक प्रावधान बहुत ही आवश्यक हैं।
6. पंचायती राज संस्थाऐं समिति प्रणाली के आधार पर अपने कार्यों का सम्पादन करें।
7. राज्य सरकारों को पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।
8. देश के कई राज्यों ने इन सिफारिशों को नहीं माना, अतः तीन स्तरों वाले ढाँचे को ही लागू रखा गया।

इस प्रकार अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज व्यवस्था में सुधार लाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण शिफारिशें की, किन्तु ग्राम पंचायतों को समाप्त करने की उनकी शिफारिश पर विवाद पैदा हो गया। ग्राम पंचायतों की समाप्ति का मतलब था, ग्राम विकास की मूल भावना को ही समाप्त कर देना। समिति के सदस्य सिद्धराज चड्डा ने इस विषय पर लिखा कि ''मुझे जिला परिषदों और मंडल पंचायतों से कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु समिति ने ग्राम सभा

की कोई चर्चा नहीं की, जबकि पंचायती राज संस्थाओं की आधारभूत इकाई तो ग्राम सभा को ही बनाया जा सकता था।''

**8.6.3 जी0वी0के0 समिति**

पंचायतों के सुदृढ़ीकरण(विकास) की प्रक्रिया में सन् 1985 में 'जी0वी0के0 राव समिति' गठित की गयी। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार देकर उन्हें सक्रिय बनाने पर बल दिया। साथ ही यह सुझाव भी दिया कि योजना निर्माण और उसके संचालन करने के लिये जिला मुख्य इकाई होना चाहिये। समिति ने पंचायतों के नियमित चुनाव की भी सिफारिश की।

**8.6.4 डॉ0 एल0एम0 सिंघवी समिति**

1986 में डॉ0 एल0एम0 सिंघवी समिति का गठन किया गया। सिंघवी सामिति ने 'गाँव पंचायत' (ग्राम-सभा) की सिफारिश करते हुये संविधान में ही नया अध्याय जोड़ने की बात कही, जिससे पंचायतों की अवहेलना ना हो सके। इन्होंने ने गाँव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की भी सिफारिश की।

**8.6.5 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति**

1988 में सरकारिया आयोग बैठाया गया, जो मुख्य रुप से केन्द्र व राज्यों के सम्बन्धों से जुड़ा था। इस आयोग ने भी नियमित चुनावों और ग्राम पंचायतों को वित्तीय व प्रशासनिक शक्तियाँ देने की सिफारिश की। 1988 के अंत में ही पी0 के0 थुंगर की अध्यक्षता में संसदीय परामर्श समिति की उपसमिति गठित की गयी। इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने की शिफारिश की।

भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्व0 राजीव गाँधी की सरकार ने गाँवों में पंचायतों के विकास की ओर अत्यधिक प्रयास करने शुरू किये। श्री राजीव गाँधी का विचार था कि जब तक गाँव के लोगों को विकास प्रक्रिया में भागीदार नहीं बनाया जाता, तब तक ग्रामीण विकास का लाभ ग्रामीण जनता को नहीं मिल सकता। पंचायती राज के द्वारा वे गाँव वालों के खासकर अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में बदलाव लाना चाहते थे। उन्होंने इस दिशा में कारगर कदम उठाते हुये 64वां संविधान विधेयक संसद में प्रस्तुत किया। लोक सभा ने 10 अगस्त 1988 को इस विधेयक को अपनी मंजूरी दे दी। मगर राज्य सभा में सिर्फ पांच मतों की कमी रह जाने से यह पारित न हो सका। फिर 1991 में तत्कालीन सरकार ने 73वां संविधान संशोधन विधेयक को संसद में पेश किया। लोक सभा ने 02 दिसम्बर 1992 को इसे सर्व सम्मति से पारित कर दिया। राज्य सभा ने अगले ही दिन इसे अपनी मंजूरी दे दी। उस समय 20 राज्यों की विधान सभाऐं कार्यरत थीं। 20 राज्यों की विधान सभाओं में से 17 राज्यों

की विधान सभाओं ने संविधान संशोधन विधेयक को पारित कर दिया। 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति ने भी इस विधेयक को मंजूरी दे दी। तत्पश्चात 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल से लागू हो गया।

## 8.7 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की सोच

पंचायतों को मजबूत, अधिकार सम्पन्न व स्थानीय स्वशासन की इकाई के रूप में स्थापित करने हेतु संविधान में 73वां संशोधन अधिनियम एक क्रान्तिकारी कदम है। 73वें संविधान संशोधन के पीछे निम्न सोच है-

- निर्णय को विकेन्द्रीकृत करना तथा स्थानीय स्तर पर संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक प्रकिया शुरू करना।
- स्थानीय स्तर पर पंचायत के माध्यम से निर्णय प्रक्रिया, विकास कार्यों व शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
- ग्राम विकास प्रक्रिया के नियोजन, क्रियान्वयन तथा निगरानी में गांव के लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करना व उन्हें अपनी जिम्मेदारी का अहसास कराना।
- लम्बे समय से हासिये पर रहने वाले तबकों जैसे महिला, दलित एवं पिछड़ों को ग्राम विकास व निर्णय प्रक्रिया में शामिल करके उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना।
- स्थानीय स्तर पर लोगों की सहभागिता बढ़ाना व लोगों को अधिकार देना।

## 8.8 तिहत्तरवा संविधान संशोधन अधिनियम

स्वतन्त्रता पश्चात देश को सुचारू रूप से चलाने के लिये हमारे नीति निर्माताओं द्वारा भारतीय संविधान का निर्माण किया गया। इस संविधान में नियमों के अनुरूप व एक नियत प्रक्रिया के अधीन जब भी कुछ परिवर्तन किया जाता है या उसमें कुछ नया जोड़ा जाता है अथवा हटाया जाता है तो यह संविधान संशोधन अधिनियम कहलाता है। भारत में सदियों से चली आ रही पंचायत व्यवस्था जो कई कारणों से काफी समय से मृतप्रायः हो रही थी, को पुर्नजीवित करने के लिये संविधान में संशोधन किये गये। ये संशोधन तिहत्तरवां व चौहत्तरवां संशोधन अधिनियम कहलाये। तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना की गई। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस

अधिनियम में जहाँ स्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गई है व सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात 'नया पंचायती राज अधिनियम' प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुँचाने का एक उपकरण है। गॉधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। पंचायती राज स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

## 8.9 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

लोकतंत्र को मजबूत करने के लिये नई पंचायत राज व्यवस्था एक प्रशंसनीय पहल है। गांधी जी का कहना था कि 'देश में सच्चा लोकतंत्र तभी स्थापित होगा जब भारत के लाखों गांवों को अपनी व्यवस्था स्वयं चलाने का अधिकार प्राप्त होगा। गांव के लिये नियोजन, प्राथमिकता चयन लोग स्वयं करेंगे। ग्रामीण अपने गांव विकास सम्बन्धी सभी निर्णय स्वयं लेंगे। ग्राम विकास कार्यक्रम पूर्णतया लोगों के होंगे और सरकार उनमें अपनी भागीदारी देगी।' गांधी जी के इस कथन को महत्व देते हुये तथा उनके ग्राम-स्वराज के स्वप्न को साकार करने के लिये भारतीय सरकार ने पंचायतों को बहुत से अधिकार दिये हैं। तिहत्तरवें संविधान अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है -

1. 73वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात पंचायती राज संस्थाएं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं।
2. नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।
3. यह तीन स्तरों- ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।
4. एक से ज्यादा गांवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिक आबादी वाले गांव के नाम पर होगा।
5. इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।
6. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।

7. पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।
8. पंचायत 06 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 06 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।
9. इस संशोधन के अर्न्तगत पंचायतें अपने क्षेत्र के अर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनायें स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यों की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।
10. 73वें संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अर्न्तगत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।
11. हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।
12. उक्त संशोधन के अर्न्तगत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्र पंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।
13. पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।
14. हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।

अतः संविधान के 73वें संशोधन ने नयी पंचायत व्यवस्था के अर्न्तगत न केवल पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर व शोषित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

## 8.10 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं

73वां संविधान संशोधन पंचायती राज से सम्बन्धित है, जिसमें पंचायतों से सम्बन्धित व्यवस्था का पूर्ण विधान किया गया है। इसकी निम्न लिखित विशेषताएं हैं।

1. संविधान में ‘‘ग्राम सभा’’ को पंचायती राज की आधारभूत इकाई के रुप में स्थान मिला है।

2. पंचायतों की त्रीस्तरीय व्यवस्था की गयी है। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, क्षेत्र स्तर पर (ब्लाक स्तर) क्षेत्र-पंचायत व जिला स्तर पर जिला पंचायत की व्यवस्था की गयी है।
3. प्रत्येक स्तर पर पंचायत के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान के द्वारा की जाने की व्यवस्था है। लेकिन क्षेत्र व जिला स्तर पर अध्यक्षों के चुनाव चुने हुए सदस्यों में से, सदस्यों द्वारा किये जाने की वयवस्था है।
4. 73वें संविधान संशोधन में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या में उसके प्रतिशत के अनुपात से सीटों के आरक्षण की व्यवस्था है। महिलाओं के लिए कुल सीटों का एक-तिहाई भाग प्रत्येक स्तर पर आरक्षित किया गया है। अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में ही आरक्षण की व्यवस्था है। प्रत्येक स्तर पर अध्यक्षों के कुल पदों का एक-तिहाई भाग महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया है।
5. अधिनियम में पंचायतों का कार्यकाल(पांच वर्ष) निश्चित किया गया है। यदि कार्यकाल से पहले ही पंचायत भंग हो जाय तो 06 माह के भीतर चुनाव कराने की व्यवस्था है।
6. अधिनियम के द्वारा पंचायतों से सम्बन्धित सभी चुनावों के संचालन के लिए राज्य चुनाव आयोग को उत्तरदायी बनाया गया है।
7. अधिनियम के द्वारा प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया है, ताकि पंचायतों के पास पर्याप्त साधन उपलब्ध हो, जिससे विभिन्न विकास कार्य किये जा सके।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. 73वें संविधान संशोधन का सम्बन्ध किससे है?
2. किस संविधान संशोधन ने पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया?
3. 73वें संविधान संशोधन द्वारा महिलाओं को पंचायतों में कितने प्रतिशत आरक्षण दिया गया है?
4. 1919 के किस सुधार के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतों को फिर से स्थापित करने का काम प्रान्तीय शासन पर छोड़ दिया?
5. भारत में किस सन् में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये?
6. बलवंत राय समिति का गठन कब किया गया?
7. पंचायतों के विकास के लिए गठित किस समिति ने त्री-स्तरीय पंचायती राज की बात कही?
8. वह कौन सा पहला राज्य है, जहाँ पंचायती राज की स्थापना की गयी?

**9.** राजस्थान के किस जिले में 02 अक्टूबर 1958 को पंचायती राज की शुरूआत की गयी?

**10.** किस समिति ने पंचायतों की दो स्तरीय व्यवस्था की सिफारिश की थी?

**11.** 0जी0वी0 राव समिति कब गठित की गयी?

**12.** किस समिति ने गाँव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की सिफारिश की थी?

## 8.11 सारांश

वैदिक काल से चली आ रही पंचायत व्यवस्था देश में लगभग मृतप्राय हो चुकी थी, जिसे गाँधी जी, बलवन्त राय मेहता समिति, अशोक मेहता समिति, जी0के0वी0 राव समिति, एल0एम0 सिंघवी रिपोर्ट के प्रयासों ने नवजीवन दिया। जिसके फलस्वरूप 73वां संविधान संशोधन विधेयक संयुक्त संसदीय समिति की जाँच के बाद पारित हुआ। 73वें संविधान संशोधन से गाँधी जी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को एक नई दिशा मिली है। गाँधी जी हमेशा से गाँव की आत्मनिर्भता पर जोर देते रहे। गाँव के लोग अपने संसाधनों पर निर्भर रह कर स्वयं अपना विकास करें, यही ग्राम स्वराज की सोच थी। 73वें सविधान संशोधन के पीछे मूलधारणा भी यही थी कि स्थानीय स्तर पर विकास की प्रक्रिया में जनसमुदाय की निर्णय स्तर पर भागीदारी हो। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम वास्तव में एक मील का पत्थर है जिसके द्वारा आम जन को सुशासन में भागीदारी करने का सुनहरा मौका प्राप्त हुआ है। पंचायतों के माध्यम से हम विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को साकार रूप दे सकते हैं।

73वां संविधान संशोधन स्थानीय स्वशासन को मजबुती प्रदान करने और आम जन की शासन सत्ता में सीधी भागीदारी के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। 73वें संविधान संशोधन ने ग्राम स्तर पर लोगों को नीति निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी, जनहित के कार्यों में सक्रिय सहयोग का मौका दिया। 73वां संविधान संशोधन ग्राम स्तर पर लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

## 8.12 शब्दावली

दशक- दस वर्ष का समय, विकेन्द्रीकृत- किसी चीज का केन्द्र या एक स्थान पर न होना, जन कल्याणकारी योजनाऐं- आम लोगों के हित की योजनाएं, सुदृढ़िकरण- सुधार और मजबूत करने की प्रक्रिया, प्रबलतम- मजबूत, स्वावलम्बन- आत्मनिर्भरता, नगण्य- नहीं के बराबर (अनुपस्थित), हस्तांतरण- एक स्थान से दुसरे स्थान पर, त्रीस्तरीय- तीन स्तर पर (गाम पंचायत, क्षेत्र पंचायत व जिला पंचायत)

## 8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** ग्रामीण विकास और पंचायती राज व्यवस्था, **2.** 73वें संविधान संशोधन द्वारा, **3.** 33 प्रतिशत, **4.** मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार, 5. 1952, **6.** 1960, **7.** बलवंत राय मेहता समिति, **8.** राजस्थान, **9.** नागौर जिला, **10.** अशोक मेहता समिति, **11.** सन् 1985, **12.** सिंघवी समिति

## 8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम।
2. पंचायत सन्दर्भ सामाग्री, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर।
3. भारत में पंचायती राज- के0के0 शर्मा।
4. भारत में स्थानीय शासन- एस0आर0 माहेश्वरी।

## 8.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज- के0के0 शर्मा।
2. भारत में स्थानीय शासन- एस0आर0 माहेश्वरी।
3. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी।

## 8.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम किससे सम्बन्धित है, इस अधिनियम में मौजुद मुख्य बातों को स्पष्ट करें?
2. पंचायती राज से आप क्या समझते हैं? इसके उत्थान के लिए किए गये प्रयासों पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

# इकाई- 9 कर्मचारी वर्ग व्यवस्था

**इकाई की संरचना**

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 पंचायती राज व्यवस्था में कार्मिक संगठन

9.3 कर्मचारी वर्ग के गुण

9.4 कर्मचारी वर्ग की योग्यता

9.5 भर्ती की प्रणाली एवं प्रशिक्षण

9.6 कर्मचारी वर्ग व्यवस्था को सुदृढ करने हेतु सुझाव

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

## 9.0 प्रस्तावना

कर्मचारी वर्ग व्यवस्था; प्रशासनिक व्यवस्था का सबसे महत्तवपूर्ण आयाम है। किसी प्रशासकीय संगठन में जिन महत्तवपूर्ण उपकरणों और घटकों की आवश्यकता होती है, कर्मचारी-वर्ग उसमें सबसे आवश्यक साधन है। इसलिए यह माना जाता है कि कर्मचारी वर्ग के कुशल प्रशासन पर प्रबन्ध व्यवस्था की प्रभावशीलता निर्भर करती है। आधुनिक युग में यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाने लगा है कि यदि किसी प्रशासकीय संगठन का कार्यभार सक्षम और कुशल कर्मचारियों के हाथों में नहीं है तो वह संगठन न तो अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर सकता है और न ही जनता के सम्मान और विश्वास का पात्र बन सकता है। इस प्रशासन की संपूर्ण कार्यकुशलता और नीतियों के क्रियान्वयन की सफलता कुशल कर्मचारी वर्ग पर निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में हरमन फाइनर का मानना है कि "सरकार के राजनीतिक पक्ष में कितनी ही शक्ति हो, उसका राजनीतिक दर्शन कितना ही बुद्धिमतापूर्ण हो और नेतृत्व एवं प्रभुत्व कितने ही ऊँचे हों। ये सब अधिकारियों, विशिष्ट मामलों में सलाह करने वाले विशेषज्ञों

और उन स्थाई कर्मचारियों, जिन्हें विशेष रूप से कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है, के बिना प्रभावशून्य होंगे।''

## 9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- ग्रामीण स्थानीय शासन में कर्मचारी वर्ग की स्थिति को विभिन्न स्तरों (भर्ती, प्रशिक्षण, उत्तरदायित्व आदि) पर पर समझ पायेंगे।
- कर्मचारी वर्ग की पदसोपानीय व्यवस्था को जान पायेंगे।
- कर्मचारी वर्ग व्यवस्था को लोक सेवकों के रूप में परिभाषित कर पायेंगे।

## 9.2 पंचायती राज व्यवस्था में कार्मिक संगठन

पंचायती राज व्यवस्था में कार्मिक संगठन मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित होता है। प्रथम वर्ग में प्रमुख कर्मचारी सम्मिलित होते हैं, जिन्हें राज्य सरकार भर्ती करती है और पंचायती राज संस्थाओं में काम करने के लिए भेज देती है। पंचायती राज की जिस संस्था में इस वर्ग के व्यक्ति को काम करने के लिए भेजा जाता है, उस संस्था के निर्वाचित प्रमुख का उस पर केवल दिन-प्रतिदिन का नियंत्रण रहता है। दण्ड देने, स्थानान्तरित करने और पदोन्नत करने की शक्ति राज्य सरकार में निहिन होती है।

यद्यपि राज्य सरकार यह व्यवस्था करती है कि इन अधिकारियों का स्थानान्तरण करके प्रशासन की संपूर्ण कार्यकुशलता और नीतियों के क्रियान्वयन की सफलता कुशल कर्मचारी वर्ग पर निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में हरमन फाइनर का मानना है कि ''सरकार के राजनीतिक प़क्ष में कितनी ही शक्ति हो, उसका राजनीतिक दर्शन कितना ही बुद्धिमतापूर्ण हो और नेतृत्व एवं प्रभुत्व कितने ही ऊँचे हों ये सब अधिकारियों, विशिष्ट मामलों में सलाह करने वाले विशेषज्ञों और उन स्थाई कर्मचारियों जिन्हें विशेष रूप से कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है, के बिना प्रभावशून्य होंगे।''

सभी राज्यों में राज संस्थाओं के वरिष्ठ कर्मचारी राज्य की नियमित लोक सेवा के सदस्य होते हैं और राज्य सरकार उन्हें इन संस्थाओं में कार्य करने के लिए नियुक्त/प्रतिनियुक्ति करती है। इस प्रकार नियुक्त किए गए लोकसेवक और पदाधिकारी ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की इन इकाइयों में अपनी सेवा का कुछ समय बिताकर पुनः राज्य सरकार

की सेवा में चले जाते हैं और उनके स्थान पर दूसरे राज्य सेवक प्रतिनियुक्त कर दिये जाते है। इस प्रकार प्रथम और द्वितीय श्रेणी की सेवाओं की भर्ती, पदोन्नति एवं नियंत्रण राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में होता है।

यद्यपि राज्य सरकार यह व्यवस्था करती है कि इन अधिकारियों का स्थानान्तरण करते समय उन संस्थाओं के राजनीतिक मुखियाओं से सम्मति प्राप्त कर लें, जहाँ वे कार्यरत हैं। वस्तुतः इस तरह इन अधिकारियों एवं कर्मचारियों पर नियंत्रण की अंतिम शक्ति राज्य सरकार में सन्निहित होती है। राज्य सरकार ही उन अधिकारियों को स्थानान्तरित, पदोन्नति या दण्डित करने में सक्षम होती है। ऐसे अधिकारी या कर्मचारी पंचायत राज की जिस संस्था में नियुक्त होते हैं होते हैं, वह संस्था उन पर केवल दैनिक नियंत्रण ही रख पाती है।

प्रायः अधिकांश राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं में प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी के अधिकारी राज्य सरकार के कर्मचारी सेवा वर्ग के सदस्य होते हैं और पंचायती राज संस्थाओं में प्रतिनियुक्त किए जाते हैं। राजस्थान, कर्नाटक, मध्यप्रदेश जैसे कुछ राज्यों में तो तृतीय श्रेणी के कुछ वर्गों के कर्मचारी भी इन संस्थाओं में राज्य की सेवा में प्रतिनियुक्ति पर भेजे जाते हैं। दूसरी ओर आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और दूसरी श्रेणी की सेवाओं में कर्मचारी वर्गों का एक ऐसा वर्ग बनाया गया है जिनकी भर्ती, पदोन्नति एवं अनुशासनिक नियंत्रण पंचायती राज संस्थाओं के अपने अधिकार क्षेत्र में है और जिला स्तर एवं राज्य स्तर पर जिला प्रतिस्थापन समिति और जिला परिषद आयोग द्वारा होता है।

गुजरात में राज्य पंचायत सेवा की रचना कर ली गई जो राज्य सेवा से भिन्न है और जिसे कुछ राजपत्रित और अराजपत्रित कर्मचारी सौंप दिए गए हैं। महाराष्ट्र में पंचायती राज सेवा में कार्यरत कर्मचारी वर्ग के लिए तीन पृथक संवर्गों की रचना की है- जिला तकनीकी सेवा(वर्ग- 3), जिला सेवा(वर्ग-3) तथा जिला सेवा (वर्ग- 4)। ये सेवाएं प्रत्येक जिले में पृथक स्थापित की गयी हैं। इस प्रकार राज्य सरकार के उन समस्त कर्मचारियों को भी जिला परिषद की सेवा के अंतर्गत ले लिया है जो पूर्व के स्थानीय निकायों के अधीन काम करते थे।

राजस्थान में संपूर्ण राज्य के लिए अलग से पंचायती राज सेवा की स्थापना की गई है जो राजस्थान पंचायत समिति और जिला परिषद सेवा कहलाती है। इनमें जिला स्तरीय कर्मचारी, खण्ड विकास अधिकारी, प्रसार अधिकारी राज्य सेवा के ही सदस्य होते हैं और उन्हें पंचायती राज निकायों में काम करने के लिए भेज दिया जाता है। मध्य प्रदेश में पंचायत राज अधिनियम में कर्मचारी वर्ग में पंचायत स्तर पर कर्मचारी वर्ग, जनपद पंचायत स्तर पर कर्मचारी वर्ग और जिला स्तर पर कर्मचारी वर्ग की स्थापना की गई है।

## 9.3 कर्मचारी वर्ग के गुण

समकालीन परिदृश्य में स्थानीय शासन का कार्य जटिल एवं विस्तृत होता जा रहा है। राज्य सरकारों का स्थानीय शासन के कर्मचारी वर्ग की आवश्यकताओं के प्रति व्यवहार हिचकिचाहट पूर्ण रहा है और उन्होंने उनकी पूर्ति के लिए थोड़े बहुत उपाय भी किए हैं। स्थानीय शासन भारत जैसे विकासशील देश के लिए आधारशिला हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि राज्य सरकार इस विषय में गंभीरता से कार्य करे, इसके लिए यह आवश्यक है कि एक स्थानीय सेवा की स्थापना की जाए जिससे कर्मचारी वर्ग अपना अधिक से अधिक कार्य कुशलता के माध्यम से अपना योगदान दे सकें। समुचित रूप से वे सतही स्तर पर समस्याओं का निराकरण कर सके। अतः ग्रामीण स्थानीय शासन की सेवा के लिए जिन व्यक्तियों को चुना जाए उनमें निम्न गुणों का उल्लेख करते हुए एस0आर0 माहेश्वरी ने लिखा है-

1. जिन लोगों के लिए उन्हें काम करना है उनकी संस्कृति का बोध और सराहना।
2. ग्रामीण मनोवृत्ति।
3. ग्रामीण जनता के साथ प्रभावोत्पादक ढंग से कार्य करने की योग्यता।
4. काम में रूचि तथा उसके प्रति उत्साह।
5. शारीरिक शक्ति तथा जीवन।
6. जिन कार्यक्रमों पर आजकल बल दिया जा रहा है उनके प्रति विशिष्ट सम्मान।
7. बाह्य परिवेश का सूक्ष्म बोध तथा कार्यनीति एवं कार्य-प्रणाली को इस प्रकार मोडने की क्षमता किवह उस परिवेश के अनुकूल सिद्ध हो सके किंतु साथ ही साथ पूर्व-निर्धारित लक्ष्य को साक्षात्कृत करने में भी सहायक हो सके।

## 9.4 कर्मचारी वर्ग की योग्यता

ग्राम पंचायत के कार्य संचालन में नियुक्त किए जाने वाले कर्मी के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है-

1. 10+2 प्रणाली के तहत दसवीं परीक्षा उत्तीर्ण।
2. न्यूनतम आयु 18 वर्ष।
3. सम्बन्धित पंचायत द्वारा उक्त वर्णित योग्यता के अलावा अन्य स्थानीय योग्यता।
4. अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग तथा महिला उम्मीदवार को प्राथमिकता तथा

5. यथासम्भव प्रत्याशी स्थानीय हो।

प्रत्याशी को पंचायतकर्मी के लिए दर्शित योग्यताओं से सम्बन्धित प्रमाण-पत्र आवेदन के साथ प्रस्तुत करना आवश्यक है। पंचायत कर्मी की नियुक्ति पंचायत द्वारा की जाती है। यह नियुक्ति कुछ मार्गदर्शी सिद्धान्तों पर आधारित होती है। जिसका पालन करना पंचायतों का कर्तव्य है।

## 9.5 भर्ती की प्रणाली एवं प्रशिक्षण

पंचायती राज संस्थाओं में कर्मचारियों की भर्ती के लिए निम्नलिखित रीतियों का प्रयोग किया जाता है-

1. सीधी भर्ती द्वारा, लिखित परीक्षा या साक्षात्कार द्वारा या दोनों द्वारा।
2. पंचायत सेवा में नियोजित व्यक्ति की पदोन्नति द्वारा।
3. किसी स्थानीय प्राधिकारी या राज्य सरकार के कार्यकलापों के सम्बन्ध में सेवारत व्यक्ति की प्रतिनियुक्ति या स्थानान्तरण द्वारा।
4. ऐसे व्यक्तियों के स्थानान्तरण द्वारा जो इस निमित्त विनिर्दिष्ट ऐसी सेवाओं में ऐसे मूल रूप से धारण करते हों।

यहाँ पर ध्यान देने वाली बात यह है कि जो कर्मचारी राज्य संवर्गों के होते हैं और जिन्हें पंचायती राज संस्थाओं में काम करने के लिए भेज दिया जाता है, उनकी भर्ती यथारीति लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है और राज्य सरकार उन्हें पंचायती राज संस्थाओं को सेवार्थ दे देती है। निम्न वर्गों के कर्मचारियों की भर्ती के सम्बन्ध में राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रणाली अपनाई गई है।

राजस्थान में राज्य स्तर पर एक चयन आयोग का और प्रत्येक जिले में एक चयन समिति का जो जिला संस्थापन समिति कहलाती है, निर्माण किया गया है। ये दोनों ही सांविधिक(संवैधानिक) निकाय हैं। राज्य स्तरीय चयन आयोग का पूरा नाम राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद चयन आयोग है। अन्य किसी राज्य ने राजस्थान की तरह राज्य स्तर पर कर्मचारियों के चयन के लिए किसी अभिकरण की रचना नहीं की है। महाराष्ट्र में जिला तथा मण्डल पर चयन परिषदों की स्थापना की है।

आधुनिक लोकतांत्रिक सरकारों के सभी स्तरों के समक्ष लोगों की अपेक्षाओं के अनुरूप खरा उतरने की गंभीर चुनौती विद्यमान है। सभी के समक्ष उपस्थित इस चुनौती के कारण शासन और प्रशासन के लिए निरंतर यह चिंता और चिंतन का विषय है कि लोगों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं का प्रभावी और कुशल संपादन कैसे किया जाए। वस्तुतः इस गंभीर चुनौती का हल प्रशासन तंत्र की क्षमता में प्रशिक्षण के माध्यम से वृद्धि द्वारा किया जा

सकता है। पंचायती राज संस्थाएं ग्राम विकास के गतिशील क्षेत्र में सक्रिय रूप से कार्यरत हैं और सरकार द्वारा प्रायः हर वर्ष की जाने वाली नई योजनाओं की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

आज स्थानीय प्रशासन अनेक जटिल समस्याओं का सामना कर रहा है। इसलिए उन समस्याओं के समुचित समाधान के लिए प्रशिक्षित और निपुण कर्मचारी वर्गों की आवश्यकता अधिक तेजी से अनुभव की जा रही है। इस कारण कर्मचारी से सेवा प्रवेश पूर्ण प्राप्त प्रशिक्षण और ज्ञान को पर्याप्त नहीं माना जाता और इस बात की आवश्यकता गंभीरता से अनुभव की जा रही है कि कर्मचारियों के सेवा में प्रवेश के बाद उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए स्वतंत्र प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए। इसके पीछे मूल कारण है कि प्रशिक्षण संस्थाएं स्थानीय संस्थाओं में काम करने वाले कर्मचारियों में नेतृत्व, आचरण, विश्वास और निर्णय क्षमता का विकास कर सकें।

ऐसी प्रशिक्षण संस्थाओं को अपने प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नियोजन निम्नांकित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर करना चाहिए-

- कालेज और विश्वविद्यालयों के उन क्षेत्रों में, जहाँ स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र में रूचि हो, की स्थानीय शासन की सेवाओं के प्रति आकृष्ट करना।
- स्थानीय प्रकृति की प्रशासनिक समस्याओं के प्रति जनता में चेतना उत्पन्न करना और उन समस्याओं के समाधान के लिए उपर्युक्त कार्यक्रमों की योजना बनाना।
- स्थानीय प्रशासन के संचालन में उन्नत प्रशासनिक तकनीक को अपनाने की प्रक्रिया को तेज करना।
- स्थानीय स्तर पर व्यवस्थित आयोजना और शासकीय गतिविधियों के मूल्यांकन के लिए उचित मानकों का विकास करना।
- प्रशिक्षण कार्यक्रम का विकास और उनका संचालन करना।

नवगठित पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को भी समय-समय पर राज्य प्रशासन द्वारा प्रसारित निर्देशों के परिवेश से अवगत कराने हेतु उनके कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक बनाने हेतु शासन द्वारा उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है।

यद्यपि ग्राम पंचायतों के प्रतिनिधि मूलरूप से विकास एवं कल्याण के लिए उत्तरदायी हैं, किंतु ग्राम पंचायत की प्रभावशीलता पंचायती कर्मी पर ही निर्भर करती है। पंचायती कर्मी एक ओर ग्राम पंचायत का अधिकारी हैं और दूसरी ओर शासन के नियमों का पालन करने वाला भी है। अतः उसे पंचायत के नियम-कानूनों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। नवनियुक्त पंचायत कर्मी को प्रशिक्षण दिए जाने का प्रमुख उद्देश्य उसे कार्यप्रणाली का ज्ञान करना है, ताकि पंचायत का कार्य नियमानुसार किया जा सके। पंचायत कर्मी के प्रशिक्षण के निम्न उद्देश्य हैं-

- ग्राम पंचायत के लिए बताये कार्यों की जानकारी होना।
- अपने अधिकारों और कर्तव्यों की जानकारी होना।
- कार्यालय के रिकार्ड, लेखा रखने का ज्ञान और कार्यालय को चलाने की जानकारी होना।
- ग्राम पंचायत से सम्बन्धित नियमों का सामान्य ज्ञान होना।
- पंचायत कर्मी की योग्यता को विकसित करना।
- ग्राम पंचायत पदाधिकारी की नियमतः सहयोग हेतु तत्पर होना।

## 9.6 कर्मचारी वर्ग व्यवस्था को सुदृढ करने हेतु सुझाव

किसी भी संगठन को सुचारू रूप से चलाने के लिए कुशल कर्मचारियों की नितांत आवश्यकता होती है। यदि अयोग्य कर्मचारी किसी संगठन में कार्य करेंगें तो कार्य में रूकावट और भ्रष्टाचार की जड़ें मजबूत हो जाऐंगी। इस दृष्टि से न तो संगठन अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेगा और न ही जनता के सम्मान और विश्वास का पात्र बन सकेगा। सादिक अली समिति (1964) द्वारा यह स्वीकार किया गया कि पंचायत राज संस्थाओं की सेवाओं में भर्ती, नियुक्ति और सेवाओं का अनुशासनिक नियंत्रण बहुत महत्वपूर्ण है और उनका नियमन कतिपय स्वतंत्र सिद्धान्तों द्वारा किया जाना चाहिए। समिति की राय में ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. सेवाओं की नियुक्ति की पद्धति में शीघ्रता, निष्पक्षता और सही चयन की संभावना निहित होनी चाहिए।
2. भर्ती, पदोन्नति और अनुशासनिक नियंत्रण के लिए व्यवस्था करते समय जो सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए; वह है, सेवाओं को राजनीतिक और स्थानीय प्रशासन से कैसे अलग और सुरक्षित रखा जाए।
3. सेवाओं का आनुशासनिक नियंत्रण त्वरित एवं प्रभावशाली होना चाहिए। नियंत्रण की दशा और प्रक्रिया में किसी प्रकार की अस्पष्टता नहीं होनी चाहिए।

इस दृष्टि से कर्मचारी वर्ग व्यवस्था को सुदृढ करना आवश्यक है, जिसके लिए अनेक कदम उठाए जा सकते हैं-

1. कर्मचारियों की भर्ती के लिए अधिक से अधिक पारदर्शिता का होना आवश्यक है, जिससे योग्य कर्मचारी चुनकर आ सकेंगें और वे जनता के लिए अधिक से अधिक कार्य कर सकेंगे।
2. कर्मचारी एवं अधिकारियों पर चाहे वे पंचायती राज सेवा के सदस्य हों या विभागों से प्रतिनियुक्ति पर आये हों, प्रशासनिक नियंत्रण सम्बन्धित संस्था का होना चाहिए।
3. पंचायती राज संस्थाओं के लिए कर्मचारियों के चयन हेतु पंचायती राज सेवा चयन आयोग का गठन किया जाना चाहिए।
4. कर्मचारियों के प्रशिक्षण को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण केन्द्रों पर प्रशिक्षण देने के लिए ऐसे प्रशिक्षकों की नियुक्ति की जाए, जिन्हें इस विद्या में व्यक्तिगत रूचि हो और वे प्रशिक्षण के प्रति लगन और सत्यनिष्ठा से कार्य करें।
5. प्रशिक्षकों को सेवा सम्बन्धी आकर्षक सुविधाएं उपलब्ध की जानी चाहिए, जिससे वे प्रशिक्षण के प्रति अपनी योग्यतानुसार प्रशिक्षण दे सकें; ताकि कर्मचारी वर्ग भी अपने कार्य में कुशल हो सकें।
6. कर्मचारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम को रूचिकर बनाया जाना चाहिए। प्रशिक्षण पाठयक्रम पूर्णतः व्याख्यानों तथा पुस्तकों पर आधारित न होकर क्षेत्रीय समस्याओं पर आधारित होनी चाहिए।
7. प्रशिक्षण के माध्यम से ग्रामीणों के दृष्टिकोण में परिवर्तन और ज्ञान वृद्धि दोनों उद्देश्यों पर सम्मिलित रूप से ध्यान देने की जरूरत है।
8. कर्मचारियों को प्रशिक्षण के दौरान जो पाठ्य पुस्तकें दी जाती हैं, उसे सरल और बोधगम्य भाषा में प्रकाशित कर वितरण की जानी चाहिए।
9. प्रशिक्षण के प्रचार माध्यम प्रेस, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन का अधिकतम उपयोग किया जाना चाहिए। दूरदर्शन पर चौपाल कार्यक्रम के अलावा रेडियो पर चौपाल जैसे पंचायती राज कार्यक्रम से नियमित रूप से पंचायती राज पर प्रसारण समय-समय पर होना चाहिए। इससे कर्मचारी वर्ग और जनता के बीच की कड़ी मजबूत होगी।
10. कर्मचारियों के कार्यों के दबाव को देखते हुए उन्हें नियमित रूप से वेतन आवास, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएं दी जानी चाहिए।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. पंचायती राज संस्थाओं में कार्मिक संगठन मुख्य रूप से कितने वर्गों में विभाजित होता है?
2. क्या पंचायती राज संस्थाओं में कार्यरत सरकारी सेवकों को निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों द्वारा दण्ड देने, स्थानान्तरण करने और पदोन्नत करने का अधिकार होता है?
3. ग्राम पंचायत के कार्य संचालन के लिए नियुक्त कर्मी की न्यूनतम योग्यता क्या होती है?
4. पंचायती राज संस्थाओं में कर्मचारियों की भर्ती किन रितियों से होती है?

## 9.7 सारांश

किसी भी संगठन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मानव संसाधन होना आवश्यक है। मानव संसाधनों की योग्यता, कार्यकुशलता एवं निष्ठा उस संगठन को प्रभावी बनाने में महत्तवपूर्ण भूमिका निभाती है। पंचायती राज संस्थाएं ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की धुरी है। अतः उनमें कार्यरत अधिकारी एवं कर्मचारी जितने अधिक योग्य होंगें उतनी ही अधिक प्रभावशाली पंचायती राज संस्थाएं होंगी। अतः आवश्यकता इस बात की होनी चाहिए कि उनकी नियुक्ति की पद्धति में निष्पक्षता और सही चयन की संभावना निहित होने चाहिए। साथ ही साथ स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं में कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिए उचित प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। इसके पीछे मूल कारण यह है कि पंचायती राज संस्थाओं द्वारा अनेक प्रकार के कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं जिनकी सफलता कर्मचारियों के प्रशिक्षण के बिना सम्भव नहीं है। अतः हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि एक सफल कर्मचारी वर्ग ही स्वस्थ एवं सशक्त संगठन का निर्माण कर सकता है, जो जनभावना के अनुकूल कल्याण एवं विकास का मार्ग प्रशस्त करेगा।

## 9.8 शब्दावली

स्थानांतरण- एक स्थान से दूसरे स्थान पर, पदोन्निति- निम्न पद से उच्च पद की और बढना, रिति- विधि, प्रतिनियुक्ति- एक विभाग से दूसरे विभाग में नियुक्ति

## 9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** दो वर्गों में, **2.** नहीं, **3.** 10+2 प्रणाली के तहत 10वीं, **4.** सीधी भर्ती, पदोन्नित और प्रतिनियुक्ति द्वारा

## 9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2012

2. अमरेश्वर अवस्थी, श्री राम माहेश्वरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2011
3. महीपाल, पंचायती राजः चुनौतियां एवं सम्भावनाएं', नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2005
4. पी0डी0 शर्मा और एच0सी0 शर्मा, लोक प्रशासन', कालेज बुक डिपो, जयपुर, 1995

## 9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय प्रशासन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2012
2. महीपाल, पंचायती राजः चुनौतियां एवं संभावनाएं', नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2005
3. पी0डी0 शर्मा और एच0सी0 शर्मा, लोक प्रशासन', कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1995

## 9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत कार्मिक संगठन और कर्मचारी वर्ग की योग्यताएं और गुणों का उल्लेख करें।
2. पंचायती राज व्यवस्था के कर्मचारियों की स्थिति सुदृढ करने के लिए अपने विचार प्रकट करें।

# इकाई- 10 पंचायती राज संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन

**इकाई की संरचना**


10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था: एक परिचय

10.3 पंचायती राज संस्थाओं के आय के स्रोत

10.3.1 ग्राम पंचायत के आय के स्रोत

10.3.2 पंचायत समिति के आय के स्रोत

10.3.3 जिला पंचायत के आय के स्रोत

10.4 पंचायती राज संस्थाओं की बजट प्रक्रिया

10.4.1 बजट के घटक या अवयव

10.4.2 बजट के प्रकार

10.5 राज्य वित्त आयोग की भूमिका

10.6 आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण

10.7 बजट निर्माण में पंचायत के समक्ष चुनौतियां

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.13 निबन्धात्मक प्रश्न


## 10.0 प्रस्तावना

भारत भौगोलिक दृष्टि से विशाल होने के साथ-साथ संसार का सबसे बड़ा प्रजातान्त्रिक देश है। लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज व्यवस्था वह माध्यम है जो शासन को सामान्यजन के दरवाजे तक लाता है। लोकतंत्र की संकल्पना को अधिक यथार्थ रूप में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में पंचायती राज व्यवस्था एक

ठोस कदम है। यह लोकतंत्र एवं विकास में ग्रामों की सहभागिता एवं सक्रियता की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति है। भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर शक्ति का प्रवाह होना लोकतंत्र में आवश्यक एवं वांछित प्रक्रिया है। पंचायती राज संस्थाओं को भारत जैसे देश में प्रजातंत्र की प्रयोगशालाओं के रूप में स्थापित किया गया है।

वित्त को प्रशासन का जीवन रक्त कहा जाता है जिसके बिना प्रशासनिक निर्णयों को क्रियान्वित करना असम्भव है। पंचायती राज व्यवस्था में वित्त की व्यवस्था विविध कारणों से महत्व रखती है। स्थानीय निकायों का कार्यक्षेत्र जितना बड़ा है, उनके विभिन्न स्रोत उतने हीं कम हैं। प्रस्तुत इकाई में पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था का विश्लेषण किया गया है।

## 10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था के बारे में जान सकेंगे।
- आप पंचायती राज संस्थाओं के आय के स्रोत के बारे में भी जान सकेंगे।
- पंचायती राज संस्थाओं की बजट प्रक्रिया के बारे में भी आपको ज्ञान प्राप्त होगा तथा
- राज्य वित्त आयोग, पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था पर राज्य का नियंत्रण एवं आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण भी आप कर पाएंगे।

## 10.2 पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था: एक परिचय

ग्रामीण स्थानीय संस्थाएं भारतीय लोक प्रशासन का अभिन्न अंग रही हैं। इस व्यवस्था के माध्यम से प्रशासन में जन सहभागिता बढ़ने तथा नियोजन आवश्यकता के अनुरूप करने एवं लक्ष्यों को प्रभावी रूप में प्राप्त करने का प्रयास किया गया। आजादी के बाद संवैधानिक रूप से पंचायती राज व्यवस्था राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की इच्छा के कारण लागू हुई। उनका मानना था कि ''आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। सच्चे प्रजातंत्र में नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को समान अवसर मिलने चाहिए। इसलिए सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे हुए दस-बीस आदमी नहीं चला सकते, वह तो नीचे से हरेक गांव के लोगों द्वारा चलाई जानी चाहिए।'' गांधीजी की इसी अवधारणा को फलीभूत करने के उद्देश्य से आजादी के बाद संविधान में पंचायती राज की व्यवस्था करते हुए

अनुच्छेद- 40 में राज्यों को यह निर्देश दिया गया कि वे अपने यहाँ पंचायती राज का गठन करें। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अथवा पंचायती राज संस्थाओं की योजना प्रस्तुत करते हुए तीन स्तर क्रमश: ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद का गठन किया गया है। वास्तव में त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था द्वारा देश के ग्रामीणों में एक चेतना सौपने का प्रयास किये जाने का प्रस्ताव किया गया ताकि राष्ट्रीय जनतंत्र का आधार व्यापक व मजबूत हो सके। पंचायती राज की संरचना में ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों का गठन किया गया है, जिसे पंचायती राज के नाम से संबोधित किया गया है। पंचायती राज व नियोजन का उद्देश्य प्रारंभ से लेकर आज तक विकास योजनाओं से सम्बन्धित करना एवं प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर जनता को सक्रिय रूप से भागीदार बनाना है। भारतीय संविधान के भाग- 9 में अनुच्छेद 243 -243(16) तक पंचायती राज के विषय में उल्लेख किया गया है।

73वें संशोधन के पूर्व पंचायती राज संस्थाओं की प्रमुख दुर्बलताओं में से एक यह थी कि उनके पास धन की कमी थी। उनके पास कार्य तो थे परन्तु उनको करने के लिए धान जुटाने के स्रोत बहुत कम थे क्योंकि धन के के लिए उनको राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था। पंचायती राज संस्थाओं को स्थानीय विकास की मुख्य इकाई के रूप में स्थापित करने के लिए संविधान की 11वीं अनुसूची में पंचायती राज संस्थाओं को विशेष कार्य एवं अधिकार सौपें गए हैं। पंचायत के तीनों स्तरों पर इन कार्यों से सम्बन्धित गतिविधियाँ, कार्मिक एवं वित्त के हस्तांतरण की व्यवस्था की गयी है। जब तक पंचायतों के पास वित्त की व्यवस्था नहीं होगी तब तक पंचायतें ग्रामीण विकास की योजनाओं को न तो उचित रूप से निर्माण कर पाएंगी और न ही क्रियान्वयन। पंचायतों का 'सुदृढ़ वित्तीय आधार' संविधान के अनुच्छेद- 243- I द्वारा राज्यों पर लागू की गयी संवैधानिक बाध्यता है। इस संवैधानिक बाध्यता के अनुपालन में राज्यों एवं केन्द्र को संघीय राजकोष की भावना का अनुरूप निर्वाचित स्थानीय निकाय की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ करने के लिए मिलकर कार्य करने पर बल दिया गया है । किसी भी स्थानीय संस्था की सफलता के लिए इसके वित्तीय स्रोतों की मजबूती को सामान्य रूप से स्वीकार किया गया है। सादिक अली समिति के शब्दों में कोई भी संस्था प्रभावशील एवं उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती यदि वह अपने कार्यों को संचालित करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं रखती। इन संस्थाओं के वित्तीय साधनों का केवल एक सिमित भाग ही सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है । अतः यह जरुरी हो जाता है कि ये संस्थाएं स्वयं के साधनों का विकास कर आत्मनिर्भर बनें।

स्थानीय निकायों के वित्तीय क्रियाकलाप विविध सिद्धान्तों पर आधारित होते हैं। अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त अपने सीमित साधनों के बाद भी लोगों के अधिकतम सुख-सुविधाएँ प्रदान करने पर बल देता है, वहीं लाभ का सिद्धान्त कर राशि एवं प्राप्त लाभों के मध्य सम्बन्ध को आधार बनाता है। योग्यता का सिद्धान्त प्रसिद्द अर्थशास्त्री कैनन द्वारा प्रतिपादित है जो कर के योग्यतानुसार होने पर बल देता है। लाभ के अनुपात में अंशदान का सिद्धान्त, वित्तीय स्रोतों से सामंजस्य का सिद्धान्त एवं उपयोगी एवं कष्टकारक सेवाओं का सिद्धान्त अन्य ऐसे सिद्धान्त हैं जो स्थानीय निकाय के वित्तीय क्रियाकलाप के पहलुओं का विश्लेषण करते हैं।

## 10.3 पंचायती राज संस्थाओं के आय के स्रोत

73वें संविधान संशोधन के अनुसार त्रिस्तरीय पंचायत राज में प्रारंभिक स्तर की संस्था ग्राम पंचायत एक महत्वपूर्ण संस्था है। लोकतन्त्रीय राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज वह माध्यम है, जो शासन को सामान्य जनता के दरवाजे तक लाता है। लोकतंत्र की संकल्पना को अधिक यर्थाथ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में पंचायती राज व्यवस्था एक ठोस कदम है। पंचायती राज व्यवस्था में स्थानीय जनता की स्थानीय शासन कार्यों में अनवरत रूचि बनी रहती है, क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय पद्धति से समाधान कर सकते हैं। अत: इस अर्थ में भागीदारिता की प्रक्रिया के माध्यम से जनता को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वत: ही प्रदान रहती है।

समय-समय पर विविध समितियों ने पंचायती राज व्यवस्था के वित्त के बारे में विश्लेषण किया है। 1951 में नियुक्त स्थानीय वित्त जाँच समिति ने अपने प्रतिवेदन में स्थानीय संस्थाओं के लिए आरक्षित रखे जाने वाले विभिन्न विषयों पर सुझाव दिए थे। इस समिति का मत था कि गृह कर, आबाद भूमि कर और चूल्हा कर तथा सामान्य स्वच्छता एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी उप कर आदि को अनिवार्य घोषित किया जाए। कर जांच आयोग (1953-54) ने आरक्षित रखे जाने वाले करों के बारे में सुझाव दिया कि भूमि एवं भवनों पर कर, सड़कों पर चलने वाले वाहनों पर कर, पशुओं एवं नौकाओं पर कर, संपत्ति के हस्तांतरण पर कर, आदि को स्थानीय सरकार का आय का साधन बनाया जाए। इस आयोग के बाद बलवंत राय मेहता समिति (1958) ने भी व्यापक सुझाव दिए। समिति का मत था कि पंचायती राज के तीनों अवयवों की आय के भिन्न-भिन्न स्रोत होने चाहिए। ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद् के आय उसकी स्थिति एवं कार्य क्षेत्र के अनुसार निर्धारित किये गए।

### 10.3.1 ग्राम पंचायत के आय के स्रोत

अपने कार्यों को सम्पादित करने के लिए पंचायतों को राजस्व के कुछ साधन दिए गए हैं, जिनमें प्रमुख हैं- इमारतों पर कर, प्रकाश कर, व्यवसाय कर, निजी शौचालयों पर कर, पशुओं और वाहनों पर कर तथा पंचायत क्षेत्र में बेचे गए पशुओं के पंजीकरण पर शुल्क आदि। ये कर अनिवार्य हैं। इसके अतिरिक्त ग्राम पंचायत जिला परिषद् की पूर्व स्वीकृति से कुछ अन्य कर भी लगा सकती है। बिहार, गुजरात तथा महाराष्ट्र में पंचायतों को भू-राजस्व वसूल करने का अधिकार दे दिया गया है। जम्मू-काश्मीर, तमिलनाडु, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में सरकार की ओर से पंचायत को भू-राजस्व का एक निश्चित प्रतिशत भाग अनुदान के रूप में दिया जाता है। ग्राम पंचायत के आय के स्रोत में सम्मिलित हैं: भू-राजस्व की धनराशि के अनुसार 25 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक पंचायत कर, प्रान्तीय सरकार अथवा स्थानीय अधिकारियों द्वारा अनुदान, मनोरंजन कर, गाँव के मेले, बाजारों आदि पर कर, पशुओं तथा वाहनों आदि पर कर, मछली तालाब से प्राप्त आय, नालियों, सड़कों की सफाई तथा रोशनी के लिए कर, कूड़ा-करकट तथा मृत पशुओं की बिक्री से आय, चूल्हा कर, व्यापार तथा रोजगार कर, सम्पत्ति के क्रय-विक्रय पर कर, पशुओं का रजिस्ट्रेशन फीस, दुग्ध उत्पादन कर आदि।

प्रत्येक ग्राम पंचायत के लिए एक ग्राम कोष होता है, जिसे ग्राम पंचायत निधिकोष कहा जाता है। ग्राम पंचायत के वार्षिक आय-व्यय का लेखा-जोखा एवं अनुमान की सीमा के अन्दर ग्राम सभा या ग्राम पंचायत या उसके किसी समिति के कर्तव्यों का पालन करने के लिए धन खर्च किया जाता है। सम्बन्धित खातों का संचालन ग्राम प्रधान व ग्राम पंचायत विकास अधिकारी के संयुक्त हस्ताक्षर से किया जाता है। मोटे तौर पर ग्राम पंचायत की आय के निम्नलिखित साधन हैं-

1. भारत सरकार से प्राप्त अंशदान, अनुदान या ऋण अथवा अन्य प्रकार की निधियाँ।
2. राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त चल एवं अचल सपंत्ति से प्राप्त आय।
3. भू-राजस्व एवं सेस से प्राप्त राशियाँ।
4. राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त अंशदान, अनुदान या ऋण सबंधी अन्य आय।
5. राज्य सरकार की अनुमति से किसी निगम, निकाय, कम्पनी या व्यक्ति से प्राप्त अनुदान या ऋण।
6. दान के रूप में प्राप्त राशियाँ या अंशदान।
7. सरकार द्वारा निर्धारित अन्य स्रोत।

**10.3.2 पंचायत समिति की आय के स्रोत**

पंचायत समिति की आय के निम्नलिखित साधन हैं-

1. जिला परिषद् से प्राप्त स्थानीय सेस, भूराजस्व का अंश और अन्य रकम।
2. कर, चुंगी, अधिभार और फीस से प्राप्त आय।
3. सार्वजनिक घाटों, मेलों, हाटों तथा ऐसे ही अन्य स्रोतों से आने वाली आय।
4. वैसे अंशदान या दान, जो जिला परिषदों, ग्राम पंचायतों, अधिसूचित क्षेत्र समितियों, नगरपालिकाओं या न्यासों एवं संस्थाओं से प्राप्त हो।
5. भारत सरकार और राज्य सरकार से प्राप्त अंशदान या अनुदान या ऋण सहित अन्य प्रकार की निधियाँ।
6. अन्य संस्थाओं से प्राप्त ऋण आदि।

यद्यपि पंचायत समिति जिन करों को लगा सकती है, उनकी संख्या अपेक्षाकृत बड़ी है, किन्तु उससे आय कम होती है।ये आय के ऐसे साधन हैं जिनमे सामान्यतः वृद्धि नहीं होती। अधिक लाभकारी कर केन्द्र और राज्य सरकारों के हाथ में होते हैं। यही नहीं, पंचायत समितियां स्थानीय समाज के विरोध की आशंका के कारण भी कर लगाने से बचती रही हैं।

सामान्य तौर पर पंचायत समिति को सम्पत्ति अर्जित करने, धारण करने तथा निपटारा करने और संविदा करने की शक्ति होती है, परन्तु अचल संपति के निपटान के सभी मामले में पंचायत समिति सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त करेगी। निर्मित समस्त सड़के भवन अथवा अन्य निर्माण कार्य जो पंचायत समिति द्वारा उसके निधियों से किया गया हो उसमें निहित होंगें। पंचायत समिति की अधिकारिता में अवस्थित किसी भी सार्वजनिक संपत्ति को सरकार उसे आवंटित कर सकेगी और तत्पश्चात ऐसी सम्पति पंचायत समिति में निहित हो जायगी और उसके नियंत्रण में आ जायगी। जहाँ तक पंचायत समिति को इस अधिनियम के किसी प्रयोजन को पूरा करने के लिये किसी भूमि की आवश्यकता है, वहाँ उक्त भूमि में हित रखने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों से बातचीत कर सकता है और किसी समझौता पर पहुँचने में असफल होता है तो वह भूमि के अर्जन के लिए जिलाधिकारी के पास आवेदन कर सकता है और अगर जिलाधिकारी को सामाधान हो जाय कि भूमि का अधिग्रहण किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिये आवश्यक है तो वह भू-अर्जन अधिनियम, 1894 (अधिनियम 1, 1894) के प्रावधानों के अधीन भूमि के अर्जन के लिये कार्रवाई करेगा और ऐसी भूमि अधिग्रहण के वाद पंचायत समिति में निहीत हो जायगी।

प्रत्येक पंचायत समिति में पंचायत समिति के नाम से एक पंचायत समिति निधि का गठन किया जाएगा और जमा खाते में निम्नलिखित प्रकार की राशि जमा की जायगी-

- केन्द्र एवं राज्य सरकार, जिला परिषद एवं स्थानीय प्राधिकरण द्वारा दिये गये अंशदान या अनुदान।
- केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत ऋण यदि कोई हो अथवा पंचायत समिति द्वारा अपनी सम्पति से उगाही राशि।
- अपने द्वारा उगाहे गये पथ कर, उपशुल्क और शुल्क आदि।
- पंचायत समिति में निहित या उसके द्वारा निर्मित या इसके नियंत्रण और प्रबन्ध न के अधीन किसी विद्यालय अस्पताल,औषधालय, भवन, संस्थान अथवा किसी निर्माण की बावत हुई सभी प्राप्तियाँ।
- उपहार या अंशदान के रूप में प्राप्त सभी रकम और पंचायत समिति के पक्ष में किसी भी न्यास धर्मदाय से प्राप्त सभी आय।
- जुर्माना तथा अर्थदण्ड से वसूले गये राशि।
- पंचायत समिति द्वारा प्राप्त अन्य सभी राशियाँ।

प्रत्येक पंचायत समिति कुछ ऐसी रकम को अलग रखेगी और उसे प्रति वर्ष अपने प्रशासनिक कार्यों पर खर्च करने के साथ साथ अपने पदाधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन, भता, भविष्य निधि तथा उपादान को भुगतान के लिये अपेक्षित खर्च को पूरा करने में करेगी। प्रत्येक पंचायत समिति को यह शक्ति होगी कि वह अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्यवित करने हेतु यथोचित रकम खर्च करेगी। पंचायत समिति का निधि पंचायत समिति में निहित होगा और कोष के खाता में जमा राशि ऐसी अभिरक्षा में रखी जायगी या उनका निवेश इस प्रकार किया जायगा जैसा कि राज्य सरकार समय समय पर निदेश दें। पंचायत समिति की निधि से भुगतान के लिये सभी आदेशों और चेको पर कार्यपालक पदाधिकारी का हस्ताक्षर होगा।

पंचायत समिति वाहनों के रजिस्ट्रेशन पर (जो किसी अन्य अधिनियम के अधीन निबंधित न हो), तीर्थ स्थलों, हाटों, मेलों में सफाई व्यवस्था के लिए शुल्क, जल शुल्क, विद्युत शुल्क तथा संपत्ति कर (उक्त सभी प्रकार की आवासीय एवं वाणिज्यिक संपत्तियों पर कर) आदि वसूल कर सकेगी। सरकार द्वारा नियमावली के गठन के बाद एवं अधिसूचित शुल्क/फीस के आधार पर शुल्क वसूल कर सकेगी। पंचायत समिति विशिष्ट योजनाओं के निष्पादन हेतु राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से बैंकों या अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण ले सकेगी।

प्रत्येक पंचायत समिति प्रत्येक वर्ष ऐसे समय और उस रीति से जैसे कि विहित की जाय, अगले वित्तीय वर्ष के लिये अपनी प्राप्तियों एवं वितरणों का बजट तैयार करेगी तथा बैठक में उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पारित करायगी और वैसी बैठक के लिए कुल सदस्यों के 50 प्रतिशत से कम में कोरम नहीं होगी।

सामान्य तौर पर पंचायत समिति के आय के स्रोत निम्नलिखित हैं- स्थानीय कर, मण्डियों से प्राप्त फीसें, राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान एवं ऋण, दान तथा चन्दे, जिला परिषद अथवा उसके द्वारा उपलब्ध तदर्थ अनुदान, क्षेत्र पंचायत द्वारा लगाए गए करों व शुल्कों को प्राप्त आय, घाटों, मेलों आदि के पट्टों से प्राप्त आय, सरकारी अनुदान और सरकार द्वारा क्षेत्र पंचायतों को जो परियोजनाएँ संचालित करने के लिए देती हैं, उसकी धनराशि।

### 10.3.3 जिला पंचायत के आय के स्रोत

जिला परिषद् को उपलब्ध होनेवाले वित्तीय साधनों के सम्बन्ध में राज्यों के बीच सबसे अन्तर देखने को मिलता है। सामान्य तौर पर आय के स्रोत निम्न हैं-

1. केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा अनुदान,
2. अखिल भारतीय संस्थाओं से प्राप्त अनुदान,
3. राजस्व का निश्चित हिस्सा,
4. जिला पंचायत द्वारा क्षेत्र पंचायतों से की गई वसूलियाँ,
5. जिला पंचायत द्वारा प्रशासनिक ट्रस्ट्रों से आय,
6. जिला पंचायत द्वारा तथा लोगों द्वारा दिया गया अनुदान,
7. जिला पंचायत सरकारी ऋण तथा सरकार की पूर्व अनुमति से गैर-सरकारी ऋण भी ले सकती है।

जिला परिषद् जिला निधि के माध्यम से अपने प्राप्त धनराशि का उपयोग करता है। राज्य और केन्द्र सरकार तथा दूसरे स्रोतों से प्राप्त धनराशि जिला निधि में जमा की जाती है, जिसका संचालन अध्यक्ष एवं मुख्य विकास अधिकारी के संयुक्त हस्ताक्षर से होता है। जिला परिषद् नकद या वास्तु के रूप में ऐसे अंशदान भी ले सकती है जो कोई व्यक्ति किसी सार्वजानिक कार्य के लिए जिला परिषद् को दे।

## 10.4 पंचायती राज संस्थाओं की बजट प्रक्रिया

वर्तमान में विकास और जन कल्याण से सम्बन्धित अनेक केन्द्र एवं राज्य प्रायोजित योजनाएं एवं कार्यक्रम ग्राम पंचायत में क्रियान्वित हो रही है। जिसके लिए व्यय का प्रावधान केन्द्र एवं राज्य सरकार अपने बजट में करती है। केन्द्र एवं राज्य सरकार की तरह ही पंचायती संस्थाओं को भी अपना बजट बनाने का प्रावधान है।

बजट एक वित्तीय योजना है जिसमें गत वर्ष की आय-व्यय की वास्तविक स्थिति, चालू वर्ष में आय-व्यय का संशोधित आकलन तथा अगामी वर्ष के आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम एवं आय-व्यय घटाने-बढ़ाने के लिए प्रस्तावों का विवरण होता है। इस प्रकार बजट वह अस्त्र है, जिसके द्वारा सरकार या संस्थाओं के कार्य पर नियंत्रण रखा जा सकता है। पंचायतों के लिए बजट उसके एक वित्तीय वर्ष के कार्यक्रम का दस्तावेज होता है। पंचायत का कोई भी व्यय बिना बजट के अनुमोदन के नहीं हो सकता है। इस प्रकार बजट पंचायतों के लिए एक ऐसा प्रस्ताव होता है जिसमें एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न मदों पर होने वाले व्यय तथा वित्त उपलब्ध कराने वाले साधनों की विवरणी होती है। अतएव पंचायत के सभी कार्यों एवं प्राप्तियों का आकलन बजट में किया जाता है।

प्रत्येक पंचायत को प्रभावशाली रूप में काम करने तथा अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक संसाधन की जरूरत होती है। पंचायत को उन आवश्यक संसाधन को एकत्र करने के लिए एक प्रक्रिया के माध्यम से इजाजत लेती है और वह प्रक्रिया बजट होता है। इस प्रकार संसाधन को जुटाने एवं अपने व्ययों को पूरा करने के लिए पंचायत को बजट तैयार करना आवश्यक होता है। बजट से पंचायत को निम्नवत लाभ होता है-

- पंचायतों को आर्थिक नीतियों को पालन करने में सहूलियत होती है।
- पंचायत में संभावित आर्थिक विकास का अनुमान भी बजट से लगाया जा सकता है।
- विगत वर्ष में प्राप्त आय एवं किए गए व्यय का वास्तविक स्थिति का पता चलता है।
- आगामी वर्ष में प्राप्त होने वाले आय एवं होने वाले व्यय का अनुमान लग जाता है।
- पंचायत में कार्यान्वित योजनाओं एवं कार्यक्रमों का प्रगति मालूम होता है।
- कर लगाने में सहूलियत होती है।
- पंचायत को अपना कार्य करने में सहयोग मिलता है।
- पंचायतों को अपना राजस्व जुटाने में आसानी हो जाता है।
- आय-व्यय घटाने एवं बढ़ाने में सहयोग मिलता है तथा
- उनकी आर्थिक स्थिति आसानी से मालूम हो जाती है।

इस प्रकार बजट से पंचायत को आर्थिक विकास की प्रगति को आसानी से देखा जा सकता है।

**10.4.1 बजट के घटक या अवयव**

सामान्यत: किसी भी बजट के दो मुख्य घटक होते है, पहला प्राप्तियां और दूसरा व्यय। पंचायत द्वारा तैयार किए जाने वाले बजट के ये भी मुख्य घटक होते हैं-

1. **प्राप्तियां-** यह बजट का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष होता है। इसमें एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाले आय को रखा जाता है। उल्लेखनीय है कि पंचायतों को वर्तमान में अपना कोई आय का स्रोत नहीं है, उन्हें केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा फंड प्राप्त हो रहे है। वर्तमान में पंचायत को चार स्रोतों से वित्तीय सहायता प्राप्त हो रहे हैं- पिछड़ा क्षेत्र अनुदान फंड(बीआरजीएफ), वित्त आयोग, राज्य वित्त आयोग तथा मनरेगा। बजट के प्राप्तियां पक्ष को दो भागों में विभाजित किया जाता है: एक राजस्व प्राप्तियां एवं दूसरा पूँजीगत प्राप्तियां।

   - **राजस्व प्राप्तियां-** इसमें वैसे आय के स्रोत को शामिल किया जाता है, जिसके सम्बन्ध में कोई भुगतान नहीं करना पड़ता है। उल्लेखनीय है कि राजस्व प्राप्तियों से पंचायत के देयताओं में न तो वृद्धि होती है न ही परिसंपत्तियों में कमी आती है। इसी कारण राजस्व प्राप्तियों को आर्थिक क्रियाओं का प्रतिफल माना जाता है। इसके भी दो भाग होते है। पहला कर आय तथा दूसरा गैर कर आय। कर आय में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर से प्राप्त आय का प्रदर्शित किया जाता है, जबकि गैर कर आय में सेवाओं के बदले में लगाए गए कर एवं शुल्क को सम्मिलित किया जाता है। 73वें संविधान संशोधन के तहत ग्राम पंचायत को कर लगाने की शक्तियां दी गई है। पंचायत को होल्डिंग कर, संपत्ति कर (सभी आवासीय एवं वाणिज्यिक संपत्तियों पर), व्यावसायों एवं व्यापारों पर कर, जल कर, प्रकाश शुल्क, स्वच्छता शुल्क आदि लगाने एवं वसूलने की शक्तियां दी गयी है, लेकिन यह भी अधिनियमित किया गया है कि कर का निर्धारण सरकार द्वारा किया जाएगा। उल्लेखनीय है कि वर्तमान में पंचायत को टैक्स लगाने का अधिकार नहीं मिल पाया है। इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा नियमावली नहीं बनाई गई है, जिस कारण कर लगाने का अधिकार व्यावहारिक रूप धारण नहीं कर सका है।

   - **पूँजीगत प्राप्तियां-** इसमें वैसे प्राप्तियों को शामिल किया जाता है, जिससे पंचायत की देयताओं में बढ़ोतरी होती है तथा परिसंपत्तियों में कमी आती है, जैसे ऋण की वापसी, निवेश से प्राप्त

आय आदि। उल्लेखनीय है कि ग्राम पंचायत हाट, बाजार, मेला आदि से राजस्व की उगाही कर सकते हैं, लेकिन अभी यह प्रावधान व्यावहारिक रूप में नहीं है।

2. **व्यय-** बजट का दूसरा प्रमुख पक्ष व्यय होता है। इसमें वैसे सभी व्ययों को शामिल किया जाता है, जो पंचायत द्वारा एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों एवं सेवाओं पर व्यय किया जाता है। इसे लोक व्यय भी कहा जाता है। बजट के व्यय पक्ष को दो भागों में बांटा जाता है। पहला राजस्व व्यय एवं दूसरा पूँजीगत व्यय।

संविधान के अनुच्छेद- 40 में भी पंचायतों के शक्तियां एवं अधिकार का उल्लेख है तथा इसके लिए राज्य को निर्देशित किया गया है कि वे इस सम्बन्ध में आवश्यक कदम उठाएंगे। 73वें संविधान संशोधन (24 अप्रैल 1993) द्वारा पंचायतों को अधिकाधिक सशक्त बनाने के लिए संविधान में प्रावधान किया गया है। इस संशोधन के तहत पंचायतों को 29 कार्य सौपें गए हैं तथा उसे संविधान के अनुच्छेद- 243(छ) में अंकित किया गया है। उल्लेखनीय है कि उन सभी कार्यों को संविधान के 11वीं अनुसूची में रखा गया है। पंचायतों को सौपें गए 29 कार्यों में से वार्षिक बजट बनाना एक मुख्य कार्य है। ग्राम पंचायत द्वारा बनाए जाने वाले वार्षिक बजट पर विचार-विमर्श कर सिफारिश करना ग्राम सभा का कार्य निर्धारित किया गया है। ग्राम सभा में वार्षिक लेखा-जोखा, वार्षिक बजट एवं गत वर्ष का विभिन्न कार्यक्रमों पर किए गए व्यय पर चर्चा ग्राम सभा में करने का प्रावधान है।

**10.4.2 बजट के प्रकार**

बजट निम्नवत प्रकार के हो सकते हैं-

1. **पारम्परिक बजट-** बजट के प्रारंभिक स्वरूप को पारंपरिक बजट कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य सरकारी व्ययों पर नियंत्रण करना होता है। विकास का स्वरूप क्या हो इसका उल्लेख नहीं रहता है। इस कारण वर्तमान इस प्रकार के बजट प्रचलन में नहीं है। पंचायतों को बजट बनाते समय इन स्वरूपों में से अंतिम दो स्वरूपों को अपनाया जा सकता है। इससे पंचायत को विकास कार्यों से सम्बन्धित रणनीति बनाने में सहूलियत होगी। उल्लेखनीय है कि बजट वर्तमान योजनाओं के नवीनीकरण और समीक्षा का मौका देता है ताकि सही दिशा में व्यय हो सके। अतएव पंचायतों को भी विकासात्मक स्वरूप को अपनाना चाहिए।

2. **निष्पादन बजट-** जब कार्य या परिणाम या लक्ष्यों को प्राप्ति के आधार पर बजट बनाया जाता है, तो उसे निष्पादन बजट कहा जाता है। इसमें आय-व्यय के लेखा-जोखा होने के साथ कार्य निष्पादन के मूल्यांकन

का आधार बनाया जाता है। उल्लेखनीय है कि प्रथम हूपर आयोग ने सर्वप्रथम 1949 में इस प्रकार के बजट की अनुशंसा की थी।

3. **पूंजी बजट-** इस प्रकार के बजट में केवल पूँजीगत प्राप्तियों एवं व्ययों को ही शामिल किया जाता है।
4. **परिणाम बजट-** इस प्रकार के बजट में भौतिक लक्ष्यों का निर्धारण गुणवत्ता को ध्यान में रख कर किया जाता है। कार्य निष्पादन हेतु निर्धारित राशि को सही समय, सही गुणवत्ता तथा सही मात्रा में उपलब्ध कराने की व्यवस्था सुनिश्चित की जाती है, उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के बजट सबसे पहले 2005 में बना था।
5. **शून्य आधारित बजट-** ऐसे बजट में प्रस्तावित व्ययों के प्रत्येक मदों को एक नई मद मानकर प्रदर्शित किया जाता है। अर्थात प्रत्येक मद को शून्य मान कर उसे मूल्यांकित किया जाता है तथा सभी योजनाओं एवं कार्यक्रमों का मूल्यांकन या समीक्षा गहनता से की जाती है। उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के बजट की शुरुआत सर्वप्रथम 1986-87 के बजट से किया गया था।
6. **जेंडर बजट-** जब बजट को लिंग विशेष के आधार पर तैयार किया जाता है, तो उसे जेंडर बजट कहा जाता है। सामान्यत: इस प्रकार के बजट में महिलाओं के लिए अलग से रणनीति तैयार किया जाता है। उनके विकास, कल्याण और सशक्तीकरण से सम्बन्धित योजनाओं एवं कार्यक्रमों के लिए एक निश्चित धन राशि की व्यवस्था की जाती है।

   पंचायतों को बजट बनाते समय इन स्वरूपों में से अंतिम दो स्वरूपों को अपनाया जा सकता है। इससे पंचायत को विकास कार्यों से सम्बन्धित रणनीति बनाने में सहूलियत होगी। उल्लेखनीय है कि बजट वर्तमान योजनाओं के नवीनीकरण और समीक्षा का मौका देता है ताकि सही दिशा में व्यय हो सके। अतएव पंचायतों को भी विकासात्मक स्वरूप को अपनाना चाहिए।

बजट का दृष्टिकोण स्पष्ट कर देना चाहिए त्रकर लगाने और वसूली के लिए नीति निर्धारित होनी चाहिए। हालांकि अभी कर का निर्धारण सरकार द्वारा किया जाता है। पंचायत द्वारा निर्मित किए जाने वाले बजट का प्रभाव निश्चित रूप से पंचायत के आर्थिक विकास एवं उनके आर्थिक क्रियाओं पर पड़ता है। विकासात्मक कार्यों पर किए गए व्यय आम जनता को प्रभावित करती है। पंचायत के बजट से सरकार को अपनी आर्थिक नीतियों को बनाने में मदद मिलेगी। सरकार पंचायत बजट के आधार पर अर्थव्यवस्था की दिशा और दशा सुनिश्चित कर सकती है।

पंचायतों में व्याप्त सामाजिक-आर्थिक विषमता को दूर करने तथा त्वरित गति से विकास को भी बजट प्रभावित करता है। इससे पंचायतों में सामाजिक-आर्थिक स्थायित्व आएगा।

पंचायत समिति या क्षेत्र पंचायत का बजट प्रस्ताव उसकी समितियों द्वारा आपस में विचार-विमर्श करके तैयार किया जाता है। इस बजट को एक निश्चित समय सीमा के अंतर्गत जिला को भेजा जाता है, जिस पर जिला नियोजन समिति अंतिम फैसला लेती है। दूसरी ओर जिला परिषद् या जिला पंचायत वित्त समिति के परामर्श से बजट बनाती है। अध्यक्ष के माध्यम से प्रस्तुत इस बजट पर पूरी परिषद् व्यापक विचार-विमर्श के बाद अंतिम निर्णय लेती है।

## 10.5 राज्य वित्त आयोग की भूमिका

पंचायती राज संस्थाओं के पक्ष में वित्तीय स्रोतों के निष्पक्ष वितरण एवं राज्य विधानमंडल अथवा सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में किसी स्वेच्छागत कार्यवाही को रोकने के लिए 73वां संशोधन राज्य स्तर पर एक वित्त आयोग की स्थापना की व्यवस्था करता है। राज्य वित्त आयोग देश के विभिन्न राज्यों में भारत के संविधान में निर्धारित अनुच्छेद- 243 (आई) के दिशा निर्देशों के अनुसार स्थापित किए गए हैं। राज्य में वित्त आयोग में आमतौर पर अध्यक्ष,सदस्य सचिव तथा अन्य सदस्य शामिल हैं। राज्य का राज्यपाल 73वें संशोधन प्रारम्भ से एक वर्ष के भीतर और उसके बाद प्रत्येक 05 वर्ष के अवसान पर पंचायतों की वित्तीय स्थिति का पुनर्निरीक्षण करने के लिए एक वित्त आयोग का गठन करेगा। वित्त आयोग निम्नलिखित विषय में राज्यपाल की अपनी सिफारिश करेगा-

1. ऐसे करों, शुल्कों, पथ करों और फीसों को दर्शाना जो पंचायतों की प्रदान की जा सकें,
2. राज्य की संचित निधि में पंचायतों के लिए सहायता अनुदान,
3. पंचायतों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए उपाय बताना।

राज्य वित्त आयोग को केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित वित्त आयोग से अनुदान प्राप्त होता है। राज्य वित्त आयोग पंचायतीराज और स्थानीय निकाय संस्थाओं के लिये वित्तीय प्रबन्ध एवं आवंटित राशि के बंटवारे के लिये सिफारिश देता है। आयोग पंचायतीराज एवं नगर निकायों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा कर इसमें सुधार के लिए आवश्यक सुझाव देता है । साथ ही पंचायत व नगर निकाय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कर, ड्यूटी, राजस्व आदि के संग्रहण के लिये भी सिफारिशें देता है। यह वित्तीय मुद्दों के सम्बन्ध में राज्य और केंद्रीय सरकारों के बीच एक मध्यस्थ के रूप में भी कार्य करता है।

## 10.6 आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण

ग्राम पंचायत हो या जिला परिषद, उनके पास धन की समस्या शुरू से ही रही है। इन संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत या तो दिये नहीं गये या फिर जो भी दिए गये वे अर्थ शून्य हैं। परिणामत: शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है। आय के पर्याप्त एवं स्वतंत्र स्रोत पंचायती राज संस्थाओं को दिये जाने चाहिए, ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बन सके। स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है । इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। स्थानीय वित्त की समस्या यह है कि पंचायतों के पास अपने कार्य पूर्ण दक्षता से करने के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिए। पंचायतों को कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि पंचायतों कार्यों तथा स्रोतों को समकालिक होना चाहिए। यही कारण है कि 'स्थानीय वित्त जाँच समिति' को जो कार्य सौंपा गया था, उसमें यह विचार किया जाना था कि स्थानीय संस्थाओं को दिए गए कार्यों के लिए क्या वर्तमान स्रोत पर्याप्त है तथा उन्हें यह भी विचार करना था कि अगर ऐसा न हो तो इन्हें आय के और कौन से स्रोत दिए जाएँ। समिति ने कार्यों तथा स्रोतों के तारतम्य की महत्ता पर बल दिया। इसकी रिपोर्ट के अनुसार क्योंकि वित्त कार्यों से सम्बन्धित है। इसलिए आवश्यकता है कि जब कार्य स्थानीय संस्थाओं को दिए जाएँ तो यह भी विचार कर लिया जाए कि इन कार्यों को करने के लिए इन संस्थाओं के पास पर्याप्त साधन है या नहीं? यदि संस्थाओं के पास अपने कार्य पूरे करने के लिए पर्याप्त साधन न हों तो उन्हें राज्य की सहायता पर निर्भर रहना होगा। वित्तीय सहायता के लिए राज्य सरकार पर अधिक निर्भरता स्थानीय संस्थाओं के महत्व तथा स्वतंत्रता को कम कर देगी। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलम्बी होना चाहती हैं तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए। हालाँकि 73वें संविधान संशोधन द्वारा इन संस्थाओं के लिए पृथक से वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है, लेकिन जरुरत इस बात की है कि इस संस्था को और ज्यादा वास्तविक अधिकार सौंपे जाए।

## 10.7 बजट निर्माण में पंचायत के समक्ष चुनौतियां

बजट निर्माण के समय पंचायत के सामने अनेक चुनौतियां आती हैं, जैसे-

1. ग्राम पंचायत को अपना बजट बनाने, उस पर चर्चा करने तथा उसे अनुमोदित करने के लिए प्रावधान है। वे अपना आय-व्यय का वाक आकलन कर सकती है। लेकिन पंचायत को बजट निर्माण के समक्ष कई चुनौतियां है, जिसके कारण यह व्यावहारिक रूप में अमल में नहीं है।
2. पंचायतों को कोई अपना आय का स्रोत नहीं है।

3. टैक्स लगाने एवं वसूलने के सम्बन्ध में नियमावली नहीं बनने से उन्हें इस सम्बन्ध में अधिकार प्राप्त नहीं हो पाये हैं।
4. पंचायतों में राजस्व उगाही का साधन यथा हाट, बाजार, मेला वाहन स्टैंड आदि सीमित है, जिसके कारण आय को वे नहीं बढ़ा सकते हैं।

पंचायतों के पास वैसे कर्मियों की कमी है, जिनसे बजट का निर्माण कराया जा सके। हालांकि सरकार इस दिशा में प्रयासरत है। बजट की तैयारी ऐसे करें वर्तमान में पंचायतों द्वारा वार्षिक कार्य योजना तैयार किया जाता है तथा उसे ग्राम सभा से अनुमोदित कराया जाता है। अनुमोदित वार्षिक कार्य योजना के अनुरूप ही पंचायतों द्वारा कार्यों को क्रियान्वित किया जाता है। पंचायतों द्वारा बनाया जाए, यह व्यवहार में नहीं है। फिर भी सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में नियमावलियां बनाई जाती है, तो पंचायतों को वार्षिक बजट बनाते समय निम्नवत को ध्यान में रखना चाहिए। बजट का निर्माण निर्धारित तिथि को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि बजट प्रत्येक वर्ष 15 फरवरी तक ग्राम सभा से अनुमोदित हो जानी चाहिए। गत वर्ष की प्राप्तियों (राजस्व एवं पूंजीगत) एवं व्ययों (राजस्व एवं पूंजीगत) का वास्तविक आंकड़े को संकलित कर लेना चाहिए। चूंकि बजट में आय और व्यय बजट वर्ष के लिए अनुमानित होते हैं। अतएव बजट तैयार करने से पूर्व ही वर्षवार आय-व्यय को तैयार कर लेना चाहिए। इसके लिए विगत वर्षों के आंकड़ों को ध्यान में रखना चाहिए। गत वर्ष के अंकेक्षण प्रतिवेदनों में अंकित आंकड़ों को दृष्टिगत रखना चाहिए, क्योंकि अंकेक्षण प्रतिवेदन पंचायत के वित्तीय स्थिति को प्रकट करता है। वर्षवार सभी लेन-देन की विवरणी बना लेनी चाहिए।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. पंचायतों का 'सुदृढ़ वित्तीय आधार' संविधान के किस अनुच्छेद द्वारा राज्यों पर लागू की गयी संवैधानिक बाध्यता है?
2. स्थानीय वित्त जाँच समिति की स्थापना किस वर्ष हुई?
3. प्रत्येक ग्राम पंचायत के लिए एक ग्राम कोष होता है, जिसे कहा जाता है?
4. सामान्यत: किसी भी बजट के कितने मुख्य घटक होते हैं?
5. राज्य वित्त आयोग का गठन कौन करता है?

## 10.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि पंचायती राज व्यवस्था में वित्त की व्यवस्था विविध कारणों से महत्व रखती है। स्थानीय निकायों का कार्यक्षेत्र जितना बड़ा है, उनके विभिन्न स्रोत उतने हीं कम हैं। भारत में स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं की स्थापित करने के लिए स्थानीय शासन व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है। इस व्यवस्था द्वारा देश की ग्रामीण एवं शहरी जनता में लोकतान्त्रिक संगठनों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोकतंत्र में कोई भी सुधार या संस्थागत विकास रातोरात नहीं, बल्कि क्रमिक रूप से होता है तथा क्रमिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया ही दीर्घकालीन होती है। अतः स्थानीय नगरीय संस्थाएं भी समय के साथ मजबूती और प्रौढ़ता प्राप्त करेगी। ग्राम पंचायत हो या जिला परिषद, उनके पास धन की समस्या शुरू से ही रही है। इन संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत या तो दिये नहीं गये या फिर जो भी दिए गये वे अर्थ शून्य हैं। परिणामत: शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है। आय के पर्याप्त एवं स्वतंत्र स्रोत पंचायती राज संस्थाओं को दिये जाने चाहिए, ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बन सके। स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलंबी होना चाहती हैं तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए।

## 10.9 शब्दावली

बजट- एक वित्तीय योजना है जिसमें गत वर्ष की आय-व्यय की वास्तविक स्थिति, चालू वर्ष में आय-व्यय का संशोधित आकलन तथा आगामी वर्ष के आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम एवं आय-व्यय घटान-बढ़ाने के लिए प्रस्तावों का विवरण होता है।

प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण- ऐसी शासन व्यवस्था जिसमे जनता को शासन कार्यों में अधिकाधिक भाग लेने के अवसर हो, शक्ति का हस्तांतरण ऊपर से नीचे की ओर होता हो तथा स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाईयां अपने प्रशासन का स्वयं प्रबन्ध करती हों।

विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग।

सामाजिक नीति- सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन की दिशा में एक स्थायी एवं सुसंगत दृष्टिकोण।

## 10. 10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** अनुच्छेद 243- I द्वारा, **2.** 1951 में, **3.** ग्राम पंचायत निधिकोष, **4.** दो मुख्य घटक, **5.** राज्यपाल

## 10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. एस0 आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. गिरवर सिंह, 2004 , भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. अमरेन्द्र कुमार तिवारी, 2003, फाइनेंसियल मैनेजमेंट ऑफ पंचायती राज, मोहित पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005 भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
5. डी0डी0 पंत, 2000, भारत में ग्रामीण विकास कालेज बुक डिपो, जयपुर।
6. बामेश्वर सिंह, 2000 ,भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन, जयपुर।


## 10.12 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. एल0सी0 जैन, 2005, डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नयी दिल्ली।
2. के0के0 शर्मा, 2005 भारत में पंचायती राज, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
3. चन्द्रा पटनी, 2006, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर


## 10.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था का मूल्यांकन कीजिए।
2. भारत में पंचायती राज संस्थाओं के आय के स्रोत क्या हैं?
3. पंचायती राज संस्थाओं की बजट प्रक्रिया का मूल्यांकन कीजिए।
4. पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था पर राज्य का नियंत्रण का वर्णन कीजिए।
5. पंचायती राज संस्थाओं के आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण कीजिए।
6. राज्य वित्त आयोग की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

# इकाई- 11 ग्रामीण स्थानीय शासन का प्रशासनिक ढ़ाँचा

**इकाई की संरचना**


11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 भारत में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन एवं उसका ढ़ाँचा- एक परिचय

11.2.1 ग्राम पंचायत

11.2.2 पंचायत समिति

11.2.3 जिला परिषद

11.2.4 प्रशासनिक ढ़ाँचा

11.3 ग्राम पंचायत का प्रशासनिक ढ़ाँचा

11.4 पंचायत समिति का प्रशासनिक ढ़ाँचा

11.5 जिला परिषद् का प्रशासनिक ढ़ाँचा

11.6 ग्रामीण स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध

11.7 ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं समाधान

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.13 निबन्धात्मक प्रश्न


## 11.0 प्रस्तावना

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में लोगों की राजनीतिक सहभागिता एवं स्थानीय विकास हेतु प्रायः सभी देशों में स्थानीय स्तर पर शासन के लिये स्थानीय लोगों का संगठन या निकाय बनाया जाता है और स्थानीय स्तर की विकास योजनायें तथा अन्य समस्याओं तथा जन मांगों को इसी स्थानीय शासन निकाय द्वारा पूरा किया जाता है। भारत में तीन स्तर का शासन अपनाया गया है- केन्द्रीय स्तर, राज्य स्तर तथा स्थानीय स्तर। स्थानीय स्वशासन

संस्थाएं लोकतंत्र की रीढ़ हैं। भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर शक्ति का प्रवाह होना लोकतंत्र में आवश्यक एवं वांछित प्रक्रिया है। यदि स्थानीय संस्थाएं लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित हैं तो स्थानीय लोगों में राजनीतिक चेतना तथा समझ का विकास देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था के स्वरूप को मजबूत बनाता है। लोकतंत्र का सैद्धांतिक अर्थ प्रायः जनता के शासन से लगाया जाता है लेकिन इस सैद्धांतिक अर्थ को व्यावहारिक स्वरुप प्रदान करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि लोकतान्त्रिक शासन प्रक्रिया में जनता की अधिकतम भागीदारी सुनिश्चित की जाए और जनता को ज्यादा से ज्यादा अधिकार प्रदान किया जाए।

प्रत्येक समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिये कोई न कोई निकाय या संस्था होती है, चाहे उसे नगर-राज्य कहें अथवा राष्ट्र-राज्य। राज्य, सरकार और प्रशासन के माध्यम से कार्य करता है। राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों नहों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को प्रशासन की आवश्यकता होती है। प्रशासन स्वप्न और उनकी पूर्ति के बीच की दुनिया है। उसे हमारी व्यवस्था, स्वास्थ्य और जीवनशक्ति की कुन्जी माना जा सकता है। वस्तुतः प्रशासन सभी नियोजित कार्यों में विद्यमान होता है, चाहे वे निजी हों अथवा सार्वजनिक। ग्रामीण स्थानीय प्रशासन समस्त समाहित शक्तियों का उपयोग कर लोक नीतियों को क्रियान्वित करता है।

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारत में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे से परिचय कराना है। इसके अंतर्गत ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला परिषद का प्रशासनिक ढ़ाँचा, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध तथा ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं समाधान पर भी चर्चा से पाठकों को लाभ होगा।

## 11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे के बारे में जान सकेंगे।
- साथ ही आप स्थानीय स्तर पर पंचायती राज की प्रशासनिक संरचना के बारे में जान सकेंगे।

- आपको विविध स्तर पर सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध के बारे में ज्ञान प्राप्त होगा तथा
- ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की चुनौतियों एवं समाधान से भी आप अवगत होंगे।

## 11.2 भारत में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन एवं उसका ढ़ाँचा- एक परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह सदैव समाज में रहता है। प्रत्येक समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिये कोई न कोई निकाय या संस्था होती है, चाहे उसे नगर-राज्य कहें अथवा राष्ट्र-राज्य। राज्य, सरकार और प्रशासन के माध्यम से कार्य करता है। राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों नहों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। इसलिये प्रशासन आवश्यक हो जाता है। डब्ल्यू0 बी0 डॉनहम ने विश्वास पूर्वक बताया कि “यदि हमारी सभ्यता असफल होगी तो यह मुख्यतः प्रशासन की असफलता के कारण होगा।”

ज्यों-ज्यों राज्य के स्वरूप और गतिविधियों का विस्तार होता गया है, त्यों-त्यों प्रशासन का महत्त्व बढ़ता गया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि हम प्रशासन की गोद में पैदा होते हैं, पलते है, बड़े होते हैं, मित्रता करते एवं टकराते हैं और मर जाते हैं। आज की बढ़ती हुई जटिलताओं का सामना करने में व्यक्ति एवं समुदाय, अपनी सीमित क्षमताओं और साधनों के कारण स्वयं को असमर्थ पाते हैं। स्थिति यह है कि प्रशासन के अभाव में हमारा अपना जीवन, मृत्यु के समान भयावह और टूटे तारे के समान असहाय लगता है। हम उसे अपने वर्तमान का ही सहारा नहीं समझते, वरन् एक नयी सभ्यता, संस्कृति, व्यवस्था और विश्व के निर्माण का आधार मानते हैं। प्रशासन की आवश्यकता सभी निजी और सार्वजनिक संगठनों को होती है। प्रशासन स्वप्न और उनकी पूर्ति के बीच की दुनिया है। उसे हमारी व्यवस्था, स्वास्थ्य और जीवनशक्ति की कुन्जी माना जा सकता है। वस्तुतः प्रशासन सभी नियोजित कार्यों में विद्यमान होता है, चाहे वे निजी हों अथवा सार्वजनिक। उसे प्रत्येक जनसमुदाय की सामान्य इच्छाओं की पूर्ति में सलग्न व्यवस्था माना जा सकता है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को प्रशासन की आवश्यकता होती है, चाहे वह लोकतंत्रात्मक हो अथवा समाजवादी या तानाशाही।

लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज वह माध्यम है, जो शासन को सामान्य जनता के दरवाजे तक लाता है। लोकतंत्र की संकल्पना को अधिक यर्थाथ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में पंचायती राज व्यवस्था एक ठोस कदम है। पंचायती राज व्यवस्था में स्थानीय जनता की स्थानीय शासन कार्यों में अनवरत रूचि बनी रहती है, क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय पद्धति से समाधान कर सकते हैं। अत: इस अर्थ में

भागीदारिता की प्रक्रिया के माध्यम से जनता को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वत: ही प्रदान रहती है। लोकतंत्र की वास्तविक सफलता तब है जब शासन के सभी स्तरों पर जनता की भागीदारी सुनिश्चित हो। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की 68.84 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है। इसलिए ग्रामीण स्तर पर स्वशासन का विशेष महत्व है।

वस्तुतः भारतीय लोकतंत्र इस आधारभूत अवधारणा पर आधारित है कि शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता अधिक से अधिक शासन सम्बन्धी कार्यों में हाथ बटाऐं तथा स्वयं पर राज्य करने का उत्तरदायित्व स्वयं वहन करें। पंचायतें भारत के राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ हैं। देश के राजनीतिक भविष्य एवं भावी राजनीतिक चाल का निर्धारण संघीय व्यवस्था में बैठे बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ की अपेक्षा, विभिन्न राज्यों के ग्रामीण अंचलों में विद्यमान पंचायती राज संस्थाएं ही करती हैं। पंचायती राज की शुरूआत से भारतीय राजनीति का व्याकरण बदलने लगा है। सबसे निचले स्तर पर दलितों, महिलाओं और गरीबों के सत्ता में आने से शासन प्रक्रिया में अब बराबरी का स्तर आ गया है। भारत की विविधता और कार्य की व्यापकता के चलते, लोकतंत्र का विकेन्द्रीकरण एक स्वागत योग्य कदम है। इसने देश में एक मूल क्रांति का सूत्रपात किया है। संविधान के 73वें और 74वें संशोधनों से इसे संवैधानिक दर्जा मिला और ऐतिहासिक रूप से समाज के वंचित और शासन प्रणाली से अलग-थलग पड़े वर्गों को शामिल करने का ढ़ाँचा उपलब्ध हुआ। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 पंचायतों के सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। इसे संसद के दोनों सदनों से पारित होने के बाद 20 अप्रैल 1993 को भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और 24 अप्रैल 1993 से यह सम्पूर्ण देश में प्रभावी हुआ। पंचायतों के सम्बन्ध में संविधान में नया भाग- 09 शामिल किया गया और और ग्यारहवीं अनुसूची में उनके अधिकारों का उल्लेख किया गया।

भारतीय संघवाद अपने आप में विशिष्ट इस मामले में है कि यहाँ शक्तियों का संवैधानिक बंटवारा तीन स्तरों तक किया गया है- केन्द्र, राज्य और पंचायत। ग्रामीण पंचायतों का स्वप्न गांधीजी के सर्वोदय के आदर्श का व्यावहारिक रूप है, क्योंकि पंचायतों के अभाव में न तो लोगों का विकास हो सकता है और ना ही ग्रामीण विकास सम्भव है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भारत में पंचायतों को शासन की धुरी मानते थे और ग्रामीण विकास के लिए पंचायतों की भूमिका को अपरिहार्य मानते थे। अतः संविधान निर्माण के समय राष्ट्रपिता की भावनाओं और विचारों का आदर करते हुए, संविधान के भाग चार में नीति-निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत अनुच्छेद- 40 में पंचायती राज संस्थाओं को स्थान दिया गया। संघीय तथा राज्य सरकारों द्वारा उठाए गए संवैधानिक प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत में बहु-स्तरीय संघवाद का विकास हुआ।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अथवा पंचायती राज संस्थाओं की योजना प्रस्तुत करते हुए तीन स्तर क्रमशः ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद का गठन किया गया है। वास्तव में त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था द्वारा देश के ग्रामीणों में एक चेतना सौंपने का प्रयास किये जाने का प्रस्ताव किया गया ताकि राष्ट्रीय जनतंत्र का आधार व्यापक व मजबूत हो सके। पंचायती राज की संरचना में ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों का गठन किया गया है, जिसे पंचायती राज के नाम से संबोधित किया गया है। पंचायती राज व नियोजन का उद्देश्य प्रारम्भ से लेकर आज तक विकास योजनाओं से सम्बन्धित करना एवं प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर जनता को सक्रिय रूप से भागीदार बनाना है। संविधान के भाग-09 के अंतर्गत अनुच्छेद- 243(ख) के द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का प्रावधान किया गया है। प्रत्येक राज्य में ग्राम स्तर, मध्यवर्ती स्तर एवं जिला स्तर पर (क्रमशः ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला परिषद) पंचायती राज संस्थाओं का गठन किया जाएगा; किंतु, 20 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों में मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों का गठन करना आवश्यक नहीं होगा।

### 11.2.1 ग्राम पंचायत

पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत सबसे निचले स्तर पर ग्राम पंचायत होती है, जिसका चुनाव ग्राम सभा द्वारा किया जाता है। ग्राम सभा में एक गांव अथवा छोटे-छोटे कई गांवों के समस्त वयस्क नागरिक(18 वर्ष से ऊपर के) सम्मिलित होते हैं, जो एकत्र होकर अथवा ग्राम सभा का क्षेत्र अलग-अलग चुनाव क्षेत्रों में विभक्त होने की स्थिति में अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों में चुनाव आयोग द्वारा निर्धारित तिथि को मतदान करते हैं। पंचायत के सभी सदस्यों एवं सरपंच या ग्राम प्रधान जैसी स्थिति हो, का चुनाव ग्राम सभा द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

### 11.2.2 पंचायत समिति

पंचायती राज व्यवस्था में मध्य के अर्थात् प्रखण्ड स्तर पर पंचायत समिति या क्षेत्र पंचायत होती है। पंचायत समिति का संगठन सभी राज्यों में एक समान नहीं है। इसके सदस्यों में सम्मिलित हैं- विधानसभा के सदस्य; लोकसभा के सदस्य; प्रखण्डों के समस्त प्रधानों, सहकारी समितियों एवं छोटी नगरपालिकाओं तथा अधुसुचित क्षेत्रों के प्रतिनिधि; प्रखण्ड से निर्वाचित अथवा प्रखण्ड में निवास करने वाले विधानपरिषद एवं राज्यसभा के सदस्य; प्रखण्ड से निर्वाचित जिला परिषद के समस्त सदस्य; विकास एवं आयोजन में रुचि रखने वाले दो सहयोजित सदस्य तथा महिलाओं एवं अनुसूचित जातियों के कुछ सहयोजित प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं।

विकास अधिकारी इसका सचिव होता है। इसका अध्यक्ष निर्वाचित होता है तथा इसकी सहायतार्थ उप-प्रधान भी चुने जाते हैं।

इस सम्पूर्ण योजना में पंचायत समिति सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था है। प्रखंड की समस्त ग्राम पंचायतों के मध्य सामंजस्य रखना एवं समस्त विकास कार्यों को चलाना इसी का कार्य है। ऊपर से प्राप्त होने वाले अनुदान का ग्राम पंचायतों के मध्य विभाजन पंचायत समिति द्वारा ही किया जाता है।

### 11.2.3 जिला परिषद

पंचायती राज व्यवस्था के पदसोपान क्रम में जिला परिषद शीर्षस्थ संस्था है। इसका संगठन भी पंचायत समिति के नमूने पर ही किया गया है। इसके सदस्यों का निर्वाचन भी जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसके अतिरिक्त जिले के समस्त विधायक, संसद सदस्य, राज्य विधानपरिषद के सदस्य एवं कुछ महिलाएं तथा अनुसूचित जातियों के सहयोजित सदस्य भी जिला परिषद के सदस्य होते हैं। प्रत्येक जिला परिषद में एक निर्वाचित अध्यक्ष होता है, जिसे जिला प्रमुख कहा जाता है। इसके अतिरिक्त एक उपाध्यक्ष भी होता है, जिसे उप-जिला प्रमुख कहते हैं।

विभिन्न राज्यों में स्थानीय एवं आवश्यकता के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं के संगठन एवं कार्यों में अन्तर होते हुए भी निम्नलिखित पांच सिद्धान्त समान रूप से स्वीकृत किए गए हैं-

1. ग्राम से जिले तक पंचायती राज का संगठन त्रि-स्तरीय रहना तथा उसकी समस्त संस्थाओं के मध्य औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित किए जाने चाहिए।
2. अधिकारों एवं दायित्वों का हस्तांतरण वास्तविक रूप में होना चाहिए।
3. नई संस्थाओं द्वारा अपने दायित्व भली-भाँति वहन कर सकने हेतु अपने पास पर्याप्त मात्रा में साधन उपलब्ध होने चाहिए।
4. प्रत्येक स्तर का विकास कार्यक्रम उसी प्रकार की संस्था द्वारा कार्यान्वित होना चाहिए।
5. सम्पूर्ण अवस्था ऐसी होनी चाहिए की इन संस्थाओं को भविष्य में और अधिक दायित्व एवं अधिकार सहज ही सौंपे जा सकेंगे।

नियामकीय कार्यों (राजस्व एवं कानून व्यवस्था सम्बन्धी) तथा विकास कार्यों को अलग-अलग करने का प्रयास किया गया है। जहाँ एक और जिले में नियामकीय कार्यों का दायित्व जिलाधीश तथा उससे सम्बन्धित तंत्र को सौंपा गया है। वहीं जिले में विकास कार्यों (पानी, सड़क, विद्युत, स्वच्छता इत्यादि) का दायित्व स्थानीय स्वशासन

संस्थाओं को सौंपे जाने का प्रयास किया गया है। सामुदायिक विकास योजना की असफलता का मूल कारण जन-सहभागिता का अभाव माना गया था। इसलिए पंचायती राज का प्रयोग किया गया तथा 73वें संविधान संशोधन से पंचायतों के प्रत्येक स्तर पर जन प्रतिनिधियों को प्राथमिकता दी गई। ग्राम पंचायत स्तर पर, ग्राम प्रधान को विकास का दायित्व सौंपा गया, जबकि ग्राम विकास अधिकारी और लेखपाल, ग्राम प्रधान की सहायता करेंगे। खंड स्तर पंचायती राज के कार्यक्रमों को लागू करने का मुख्य स्तर है। प्रत्येक जनपद कई खंडों में विभक्त होता है। 73वें संविधान संशोधन के बाद सभी स्तरों के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन का प्रावधान किया गया, परंतु खंड स्तर के अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष होता है। इसका चुनाव खण्ड स्तर के निर्वाचित सदस्य करते हैं। खंड स्तर पर स्थानीय सांसद और विधायक भी पंचायत समिति के पदेन सदस्य होते हैं। ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में 'जिला ग्रामीण विकास एजेंसी' की भूमिका केंद्रीय है, जिसका अध्यक्ष समान्यतः जिलाधिकारी या मुख्य विकास अधिकारी होता था। परंतु पंचायती राज सम्बन्धी 73वें संविधान संशोधन के पश्चात जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के स्थान पर जिला नियोजन समिति के गठन का प्रस्ताव किया गया, जिसका चेयरमैन जिला परिषद का अध्यक्ष होगा। अतः अब जनपद के विकास का मूल दायित्व जन-प्रतिनिधियों को सौंपा गया है। पंचायती राज्य व्यवस्था के तीनो स्तर पर संरचना निम्नवत होती है-

| **संस्था का नाम** | **राजनीतिक प्रतिनिधि** | **प्रशासनिक अधिकारी** |
|---|---|---|
| जिला परिषद | जिला परिषद् या पंचायत प्रमुख, उप-जिला प्रमुख, जिला परिषद सदस्य | मुख्य कार्यकारी अधिकारी |
| पचायत समिति | प्रमुख /प्रधान, उप प्रधान एवं पचायत समिति सदस्य | खंड विकास अधिकारी |
| ग्राम पंचायत | ग्राम प्रधान / सरपच, उपसरपच एव वार्ड सदस्य /पंच | ग्रामसेवक/ग्राम विकास अधिकारी |

### 11.2.4 प्रशासकीय ढ़ाँचा

भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संगठन की प्रशासनिक संरचना भिन्नता लिए हुए है तथापि मूलभूत सिद्धान्तों में काफी समानता है। राज्यों में पंचायत राज विभाग से सम्बन्धित कार्यों के नियंत्रण, निरीक्षण एंव निर्देशन और योजनाओं की संरचना उनके अनुश्रवण, कार्यान्वयन के लिये राज्य स्तर से लेकर ग्राम स्तर तक एक सशक्त और सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था है। राज्य स्तर पर राजनीतिक नेतृत्व पंचायती राज विभाग के मंत्री का होता है जबकि प्रमुख सचिव , पंचायती राज इसे प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान करते हैं।

पदसोपन में यह व्यवस्था सामान्यतः निम्नवत होती है-

मंत्री, पंचायती राज
↓
प्रमुख सचिव, पंचायती राज
↓
सचिव, पंचायती राज
↓
विशेष सचिव
↓
संयुक्त सचिव
↓
उप सचिव
↓
अनु सचिव

सामान्यतः निदेशालय स्तर पर निदेशक, पंचायती राज के अधीन अपर निदेशक, मुख्य वित्त एवं लेखाधिकारी, संयुक्त निदेशक, जिला पंचायत राज अधिकारी(मुख्यालय), जिला पंचायत राज अधिकारी (प्राविधिक), प्रशासनिक अधिकारी तथा प्रकाशन अधिकारी आदि के पद स्वीकृत होते हैं और यह समस्त अधिकारी निदेशक, पंचायती राज के सामान्य नियंत्रण में विभागीय कार्यों का सम्पादन करते हैं। निदेशालय स्तर पर निदेशक, पंचायती राज विभागाध्यक्ष का कार्य देखते हैं और यह व्यवस्था निम्नवत होती है-

निदेशक, पंचायती राज (विभागाध्यक्ष)
↓
अपर निदेशक
↓
संयुक्त निदेशक
↓
मुख्य वित्त एवं लेखाधिकारी
↓
जिला पंचायत राज अधिकारी
↓
प्रशासनिक अधिकारी
↓
प्रकाशन अधिकारी

मण्डलीय उपनिदेशक(पंचायत) आवंटित मण्डल के कार्यों पर नियंत्रण एवं निरीक्षण आदि का कार्य कर रहे हैं जबकि जिला स्तर पर एक जिला पंचायत राज अधिकारी एवं प्रदेश के विकास खण्डों में एक-एक सहायक

विकास अधिकारी (पंचायत) कार्यरत होते हैं। उत्तर प्रदेश में जिला पंचायत राज अधिकारी के अधीन पंचायत उद्योगों के तकनीकी मार्गदर्शन एवं नियंत्रण एवं निरीक्षण के लिए सहायक जिला पंचायत राज अधिकारी (प्राविधिक) के पद स्वीकृत हैं। ग्राम पंचायतों के सचिव के रूप में तथा विकास योजनाओं का कार्य करने के लिए ग्राम पंचायत में ग्राम पंचायत विकास अधिकारी के पद नाम से कार्यरत होते हैं ।

## 11.3 ग्राम पंचायत का प्रशासनिक ढ़ाँचा

ग्राम पंचायतें पंचायती राज व्यवस्था की आधारशिलाएं हैं। पंचायती राज व्यवस्था की सफलता एवं उसकी प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन पंचायतों की सुदृढ़ता एवं शक्ति पर ही निर्भर करती है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अंतर्गत पंचायतों की महत्वपूर्ण स्थिति को स्वीकृति प्रदान की गई है। ग्राम पंचायतों द्वारा विविध एवं बहुमुखी कार्यों को सम्पन्न किया जाता है,

ग्राम पंचायत के कर्मचारी-

- पंचायत सचिव- पंचायत के सहायतार्थ नियुक्त किया जाता है।
- ग्राम सेवक या ग्राम विकास अधिकारी- विकास के लिए पंचायतों का परामर्शदाता तथा नीतियों को लागू करने में सहायक।
- पटवारी- ग्राम पंचायत स्तर पर राजस्व विभाग का एक महत्वपूर्ण कर्मचारी।

यद्यपि भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संगठन की प्रशासनिक संरचना भिन्नता लिए हुए है तथापि मूलभूत सिद्धान्तों में काफी समानता है। ग्राम पंचायत का गठन सामान्यतया निम्नवत होता है-

1. **ग्राम प्रधान या मुखिया-** ग्राम पंचायत के अंतर्गत ग्राम प्रधान या मुखिया का स्थान महत्वपूर्ण है। उसकी योग्यता तथा कार्यकुशलता पर ही ग्राम पंचायत की सफलता निर्भर करती है। ग्राम प्रधान या मुखिया ग्राम पंचायत की कार्यकारिणी समिति के चार सदस्यों को मनोनीत करता है। ग्राम प्रधान या मुखिया का कार्यकाल 05 वर्ष है, परन्तु ग्राम पंचायत अविश्वास प्रस्ताव पास कर उसे पदच्युत कर सकती है। पंचायत के सभी कार्यों की देखभाल वही करता है। ग्राम प्रधान या मुखिया अपनी कार्यकारिणी समिति की सलाह से ग्राम पंचायत के अन्य कार्य भी कर सकता है। उसे ग्राम-कल्याण कार्य के लिए बड़े-बड़े सरकारी पदाधिकारियों के समक्ष पंचायत का प्रतिनिधित्व करने भी अधिकार है तथा वह ग्रामीण अफसरों के आचरण के विरुद्ध शिकायत भी कर सकता है।

2. **सरपंच-** कुछ राज्यों में एक अन्य महत्वपूर्ण पद सरपंच का होता है। ग्राम पंचायत की न्यायपालिका को ग्राम कचहरी कहते हैं जिसका प्रधान सरपंच होता है। सरपंच का निर्वाचन मुखिया या ग्राम प्रधान की तरह ही प्रत्यक्ष ढंग से होता है, सरपंच का कार्यकाल 05 वर्ष है। उसे कदाचार, अक्षमता या कर्तव्यहीनता के कारण सरकार द्वारा हटाया भी जा सकता है। अगर 2/3 पंच, सरपंच के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास कर दें तो सरकार सरपंच को हटा सकती है। सरपंच का प्रमुख कार्य ग्राम कचहरी का सभापतित्व करना है। कचहरी के प्रत्येक तरह के मुकदमे की सुनवाई में सरपंच अवश्य रहता है। सरपंच ही मुकदमे को स्वीकार करता है तथा मुक़दमे के दोनों पक्षों और गवाहों को उपस्थित करने का प्रबन्ध करता है।
3. **पंचायत सचिव-** प्रत्येक ग्राम पंचायत का एक कार्यालय होता है, जो एक पंचायत सचिव के अधीन होता है। पंचायत सचिव की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा होती है तथा उसे राज्य सरकार द्वारा निर्धारित वेतन भी मिलता है। ग्राम पंचायत की सफलता पंचायत सचिव पर ही निर्भर करती है। वह ग्राम पंचायत के सचिव के रूप में कार्य करता है और इस नाते उसे ग्राम पंचायत के सभी कार्यों के निरीक्षण का अधिकार है। वह प्रधान या मुखिया, सरपंच तथा ग्राम पंचायत को कार्य-संचालन में सहायता देता है। ग्राम पंचायत के सभी ज्ञात-अज्ञात प्रमाण पंचायत सचिव के पास सुरक्षित रहते हैं। अतः वह ग्राम पंचायत के कागजात से पूरी तरह परिचित रहता है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें पेश करता है। संक्षेप में, ग्राम पंचायत के सभी कार्यों के सम्पादन में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।
4. **पटवारी-** ग्राम पंचायत स्तर पर राजस्व विभाग का एक महत्वपूर्ण कर्मचारी होता है। विकास सम्बन्धी नीतियों को क्रियान्वित करने में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। सिंचित एवं असिंचित भूमि के निर्धारण, कारों के आकलन एवं वसूली, भूमि के अतिक्रमण आदि मामलों में पटवारी का कार्य एक कड़ी के रूप में ग्राम पंचायत में आवश्यक हो जाता है।
5. **ग्राम सेवक या ग्राम विकास अधिकारी-** विकास के लिए पंचायतों का परामर्शदाता तथा नीतियों को लागू करने में सहायक ग्राम विकास अधिकारी होता है। वास्तव में ग्राम स्तर पर वह एक बहुउद्देश्यीय कर्मचारी है जो जनता एवं प्रशासन के मध्य एक कड़ी का कार्य करता है। कृषि एवं अन्य सम्बन्धित कार्यों के कारण उसकी भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

## 11.4 पंचायत समिति का प्रशासनिक ढ़ाँचा

पंचायती राज की वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत पंचायत समिति वह धुरी है, जिसके चारों ओर पंचायती राज की समस्त प्रवृत्तियां केन्द्रित हैं। जिला परिषद् केवल एक परामर्शदात्री एवं पर्यवेक्षी संस्था है। कार्यपालिका के समस्त वास्तविक अधिकार एवं कर्तव्य पंचायत समितियों में ही निहित हैं। पंचायत समितियों के उल्लिखित कार्यों पर गौर करने पर पता चलता है कि विकास सम्बन्धी कार्यों एवं योजनाओं की प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व पंचायत समितियों का ही होता है। अपने कार्यों को अच्छे ढंग से चलाने हेतु पंचायत समितियों द्वारा अनेक स्थायी समितियों की स्थापना की जाती है, जिन्हें पंचायत समितियां अपने अधिकार उनके कार्यों के अनुसार सौंप देती हैं। अतः स्थायी समितियों के निर्णय पंचायत समिति के निर्णय माने जाते हैं, किन्तु अंतिम अधिकार एवं उत्तरदायित्व पंचायत समितियों के ही होते हैं।

'बलवंत राय मेहता समिति' की अनुशंसा के अनुसार पंचायती राज के लिए विकास खंड या प्रखंड स्तर पर भी ग्राम स्वशासन की व्यवस्था की गई है। विकास खंड या प्रखंड स्तर पर गठित निकाय पंचायत समिति कहलाता है। राज्य सरकार को पंचायत समिति के क्षेत्र को घटाने-बढ़ाने का अधिकार होता है। पंचायत समिति के कार्यों का सम्पादन स्थाई समितियों द्वारा होता है। राज्य सरकार और जिला परिषद् की अनुमति से पंचायत समिति अन्य स्थाई समितियों का निर्माण कर सकती है। प्रत्येक स्थाई समिति में सदयों की संख्या राज्यों में अलग-अलग है, सामान्यतः 05 से 07 तक सदस्य हो सकते हैं। सदस्यों का निर्वाचन पंचायत समिति अपने सदस्यों में से ही करती है।

प्रत्येक पंचायत समिति में एक प्रमुख और एक उपप्रमुख होगा, जिनका निर्वाचन पंचायत समिति के सदस्य करेंगे, लेकिन कोई सह-सदस्य इन पदों के लिए उम्मीदवार नहीं हो सकता। प्रमुख पंचायत समिति का अध्यक्ष होता है। उसका कार्यकाल पाँच वर्ष है। पंचायत समिति अविश्वास  का प्रस्ताव पारित करके और राज्य सरकार आदेश जारी करके प्रमुख और उपप्रमुख को पदच्युत कर सकती है। जिला परिषद का अध्यक्ष या व्यवस्थापिका का सदस्य निर्वाचित होने पर प्रमुख को अपना पद छोड़ना होगा। प्रमुख को अनेक अधिकार दिए गए हैं। पंचायत समिति की सभा बुलाना, उसके अध्यक्ष का आसन ग्रहण करना प्रमुख का काम है। वह पंचायत समिति के कार्यों का सञ्चालन करता है, उनका निरीक्षण करता है और उसके कार्यकलाप की रिपोर्ट समिति को देता है। वह खंड विकास पदाधिकारी के कार्यों की भी निगरानी करता है और पंचायत समिति के कार्यों की रिपोर्ट राज्य सरकार को देता है। संकटकाल में वह खंड पदाधिकारी के परामर्श से आवश्यक कार्यवाही कर सकता है। प्रमुख की अनुपस्थिति में उसके सारे कार्यों का सम्पादन उप-प्रमुख द्वारा होता है।

खंड या प्रखंड विकास पदाधिकारी पंचायत समिति का पदेन सचिव होता है और उसका काम पंचायत समिति के प्रस्तावों को कार्यान्वित करना होता है। सामान्यतः खंड या प्रखंड विकास पदाधिकारी के निम्नलिखित कार्य हैं-

1. क्षेत्र निधि को दी जानेवाली या दी गयी राशि प्राप्त करने, वसूल करने एवं जमा करने का अधिकार।
2. पंचायत समिति से सम्बन्धित कोई विवरण, लेखा, प्रतिवेदन या प्रस्तावों को जिलाधिकारी या राज्य सरकार को प्रस्तुत करना।
3. मानकों के अनुसार योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन तथा
4. सेवा सम्बन्धी मामलों का निस्तारण, आदि।

प्रमुख की अनुमति से वह पंचायत समिति की बैठक बुलाएगा और उसकी कार्यवाही का रिकॉर्ड रखेगा। पंचायत समिति की बैठक में उसे भाग लेने का अधिकार है, किन्तु मतदान करने का उसे अधिकार नहीं है। वह पंचायत समिति के वित्त का प्रबन्ध करेगा। उसे आपातकालीन शक्तियाँ भी दी गई हैं । प्रमुख और उपप्रमुख की अनुपस्थिति में यदि कोई संकटकालीन स्थिति उत्पन्न हो, तो वह आवश्यक कार्यवाही कर सकेगा और उसकी सूचना जिलाधीश को देगा। कार्यपालक पदाधिकारी के रूप में वह पंचायत समिति की प्रत्येक बैठक में शामिल होगा और उसे किसी समिति में शामिल होने तथा विचार-विमर्श में भाग लेने का अधिकार होगा। किन्तु उसे कोई प्रस्ताव रखने या मतदान करने का अधिकार नहीं होगा। यदि पंचायत समिति के समक्ष रखे गये किसी प्रस्ताव से इस अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन होता हो या उसके असंगत हो तो उसका यह कर्तव्य होगा कि वह इसकी ओर पंचायत समिति का ध्यान आकृष्ट करेगा।

इसके अतिरिक्त सरकार पंचायत समिति के अधीन काम करने के लिए समय-समय पर उतनी संख्या में राज्य सरकार के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों को पदस्थापित करति है जितना वह आवश्यक समझे। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन कोई पंचायत समिति अपने कार्य के संचालन के लिए समय-समय पर उतनी संख्या मे भुगतान के आधार पर या अवैतनिक कर्मचारियो की सेवा ले सकेगी जितनी की जरूरी हो।

## 11.5 जिला परिषद का प्रशासनिक ढ़ाँचा

पंचायती राज व्यवस्था के पदसोपान क्रम में जिला परिषद् या जिला पंचायत शीर्षस्थ संस्था है। इसका संगठन भी पंचायत समिति के समान ही किया गया है। ग्रामीण स्वायत्त शासन की सर्वोच्च इकाई होने के कारण जिला परिषद् या जिला पंचायत का मुख्य कार्य समन्वयकर्ता एवं परामर्शदाता निकाय का है। साथ ही उससे यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह राज्य सरकार अथवा निम्नस्तरीय पंचायतों के मध्य की कड़ी भूमिका का निर्वहन करेगी। जिला

परिषद का कार्यकाल उसकी प्रथम बैठक की निर्धारित तिथि से अगले पांच वर्षों तक का निश्चित किया गया है। इसके सदस्यों का निर्वाचन भी जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसके अतिरिक्त जिले के समस्त विधायक, संसद सदस्य, राज्य विधानपरिषद के सदस्य एवं कुछ महिलाएं तथा अनुसूचित जातियों के सहयोजित सदस्य भी जिला परिषद के सदस्य होते हैं। प्रत्येक जिला परिषद में एक निर्वाचित अध्यक्ष होता है, जिसे जिला परिषद प्रमुख कहा जाता है।

अध्यक्ष के आरक्षित पदों की संख्या का अनुपात यथासम्भव वही होता है जो राज्य की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़े वर्ग की जनसंख्या का अनुपात होता है। जिला परिषद की बैठक बुलाने, उसकी अध्यक्षता करने एवं उसका संचालन करने का अधिकार अध्यक्ष का ही है। इसके अतिरिक्त जिला परिषद् के सभी पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों पर पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण रखना, जिला परिषद की कार्यपालिका एवं प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण रखना, जिले में प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित लोगों को राहत दिलाना इत्यादि उसके मुख्य कार्य हैं।

अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष ही जिला परिषद की बैठक की अध्यक्षता करता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में अथवा एक महीने से अधिक की अवधि के लिए अवकाश पर रहने की स्थिति में अध्यक्ष की शक्तियों का प्रयोग और कर्त्तव्यों का निर्वहण वही करता है। भारत के विभिन्न राज्यों में जिला परिषद् की संरचना अलग-अलग है। सामान्यतः जिला परिषद् में कुछ स्थाई समितियाँ होती हैं, जैसे सामान्य समिति, वित्त अंकेक्षण एवं एवं योजना समिति, सामजिक न्याय समिति, शिक्षण एवं स्वास्थ्य समिति, कृषि एवं उद्योग समिति। सदस्यों का चुनाव जिला परिषद् के निर्वाचित सदस्यों में से किया जाता है। जिला परिषद् का अध्यक्ष सामान्य स्थाई समिति तथा वित्त अंकेक्षण एवं योजना समिति का पदेन सदस्य और इसका अध्यक्ष भी होता है। अन्य स्थाई समितियाँ अपने अध्यक्ष का चुनाव अपने बीच के सदस्यों में से करती है। विभिन्न समितियाँ विभिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करती हैं।

सामान्यतया जिलाधिकारी की श्रेणी का पदाधिकारी जिला परिषद् का मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी जिला परिषद् की नीतियों और निर्देशों को कार्यान्वित करता है और जिला परिषद् के सभी कार्यों और विकास योजनाओं के शीघ्र निष्पादन हेतु आवश्यक कदम उठाता है। अध्यक्ष के सामान्य अधीक्षण और नियंत्रण तथा अन्य पदाधिकारियों और कर्मचारी पर नियंत्रण रखेगा, जिला परिषद् से सम्बन्धित सभी कागजात एवं दस्तावेजों को सुरक्षित रखता है तथा अन्य सौंपे

गए कार्यों को पूरा करता है। उसे जिला परिषद् की बैठकों में भाग लेने का अधिकार है। वह बैठक में विचार-विमर्श कर सकता है तथा कोई प्रस्ताव रख सकता है, परन्तु मतदान में भाग नहीं ले सकता है। अधिकांश राज्यों में मुख्य विकास अधिकारी जिला परिषद् का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होता है। इसके अतिरिक्त, जिला पूर्ति अधिकारी, उपक्षेत्रीय विपणन अधिकारी, जिला वन अधिकारी, जिला उद्योग केन्द्र के प्रबन्धक, विद्युत एवं लोक निर्माण विभागों के अधिशासी अभियंता आदि जिला परिषद् के सलाहकार के रूप में कार्य करते हैं। साथ ही, जिन कार्यों को पंचायतों से संदर्भित किया है, उन विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी जिला परिषद् के साथ कार्य करते हैं।

## 11.6 ग्रामीण स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था ने देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को ग्रामीण समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी है। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संसथान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है, यथा स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों  को पूर्ण करने के लिए इन्हे विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। पंचायती राज संस्थाओं को 29 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधिओं और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय एक आवश्यक तथ्य है।

समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे  से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीतियों की मांग करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंतर्मन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है। लोक कार्यों का प्रबन्ध लोकतांत्रिक होना चाहिए। निम्न स्तर पर लोगों के प्रतिनिधियों से लेकर उच्च स्तर तक दायित्वों का विकेन्द्रीकरण व स्थानीय स्वायत्तता आवश्यक है। यहाँ द्रष्टव्य है कि भारत की संस्कृति, भाषा आदि की अनेकता इस कार्य को कुछ अधिक जटिल बना देती है।

किसी भी राष्ट्र के विकास का मूल दायित्व सरकार एवं निजी संस्थाओं के सम्मिलित प्रयास से ही सम्भव है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला उसकी सफलता की सबसे अधिक गारंटी स्थानीय स्वायत्त शासन का संचालन है। यदि लोकतंत्र का अर्थ जनता की समस्याएं एवं उसके समाधान की प्रक्रिया में जनता की पूर्ण तथा प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं विशिष्ट लोकतंत्र का

प्रमाण उतना सटीक अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा जितना स्थानीय स्तर पर। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार स्थानीय स्वशासन निकाय अपने स्तर पर एक सरकार है और इस नाते वह देश की मौजूदा शासन प्रणाली का अभिन्न अंग है, इसलिए निर्दिष्ट कार्यों के निष्पादन के लिए इन निकायों को देश के मौजूदा प्रशासनिक ढ़ाँचे की प्रतिस्थापित करते हुए सामने आना चाहिए। इस आधार पर जब तक स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के लिए कोई स्वायत्त जगह निर्मित नहीं की जाती तब तक स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में कोई खास सुधार कर पाना सम्भव नहीं होगा। जबकि स्थानीय स्तर पर जिला प्रशासन के साथ-साथ राज्य सरकार की कुछ संस्थापनाओं के प्रतिधारण के औचित्य पर कुछ सवाल उठ सकते हैं उनके कार्यों एवं उत्तरदायित्व उन क्षेत्रों में आ सकते हैं जोकि स्थानीय निकायों के अधिकार क्षेत्र से बाहर हों। जहाँ तक इन्हें सोंपे गए कार्यों का प्रश्न है, स्थानीय शासन संस्थाओं को स्वायत्तता होनी चाहिए और इन्हें राज्य सरकार की नौकरशाही के नियंत्रण से पूरी तरह से मुक्त होना चाहिए।

लेकिन स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय का नहीं होना एक बड़ी समस्या है। इनके मध्य अहम् पर आधारित सत्ता का द्वन्द पाया जाता है। दोनों में से कोई भी पक्ष एक-दूसरे को अपने ऊपर हावी होने देना नहीं चाहते। जहाँ नौकरशाही अभी भी पुराने औपनिवेशिक ढर्रे पर आधारित शक्ति के ढ़ाँचे से अपने को बाहर नहीं निकाल पायी है और वह जनता के द्वारा चुने गये जनप्रतिनिधियों की भूमिका को न्यूनतम आंकती है तथा उसके साथ सहयोग करने के बजाय उसके राह में रोड़े अटकाती है, वहीं प्रतिनिधि अपने सत्ता के मद में जनप्रतिनिधियों के बाजिब सलाहों को भी नजर अंदाज करते हैं, जिसके कारण विकास की संभावना प्रभावित होती है। महात्मा गांधी के अनुसार, स्वतंत्रता और स्वायत्तता का मूल्य केवल राजनैतिक विकेन्द्रीकरण से ही प्राप्त नहीं किया जा सकता, बल्कि आर्थिक मोर्चे पर भी विकेन्द्रीकरण अनिवार्य है। तद्अनुसार, राजनैतिक तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। इसके अतिरिक्त राजनैतिक कार्यकर्ताओं से उन्होंने सदैव सृजनात्मक कार्यों के माध्यम से लोकतंत्र की नींव तैयार करने की अपील की। राजनैतिक तथा अन्य कारणों से पंचायती राज संस्थाओं के प्रतिस्थापन पर प्रतिबंध हेतु कड़े नियम बनाने होंगे। यदि राजनीतिक दल पंचायती राज व्यवस्था को अपनी गंदी राजनीति से दूर ही रखें, तो यह राष्ट्र के हित में होगा। ग्रामीण जनता के विकास के लिए केन्द्र एवं राज्य में स्थानीय सरकार द्वारा समय-समय पर विकास की योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन तो किया जाता है। परन्तु पंचायती राज की कार्य प्रणाली के क्रियान्वयन में चुनौतियों के कारण इन योजनाओं का लाभ उन ग्रामीण तक नहीं पहुँच पाता जो वास्तव में जरूरतमंद हो। जार्ज

मेथ्यू ने भी कहा है कि देश में पंचायती राज के प्रभावकारी ढंग से लागू होने के मार्ग में एक शत्रु नौकरशाह हैं जो पंचायती राज के अधीन काम करना अपनी तौहीन समझते हैं, और नेताओं के साथ इनकी मिलीभगत हैं। वही पीटर रोनाल्ड डिसूज़ा जो 73वें संविधान को लोकतंत्र की दूसरी हवा कहते हैं, उनके अनुसार पंचायती राज की मुख्य असंगतियां, ग्रामीण विकास की मुख्य समस्या नौकरशाहों की क्षमता व संख्या में कमी भी है।

## 11.7 ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं समाधान

ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की अनगिनत चुनौतियाँ हैं। इनकी कुछ चुनौतियाँ सार्वभौमिक होती हैं जो विविध समस्याओं की मूल होती है, यथा वित्तीय संसाधनों की कमी, राज्य सरकार का अतिशय नियंत्रण, स्वायत्तता का अभाव, राज्य सरकार पर अतिरिक्त निर्भरता, अप्रशिक्षित, निष्क्रिय एवं भ्रष्ट कर्मचारी वर्ग, अतिशय राजनीतिक हस्तक्षेप, भाई-भतीजावाद, भ्रष्ट, अशिक्षित एवं उदासीन जनता आदि आदि। वस्तुस्थिति उम्मीदों से कहीं भिन्न है। पंचायतों के जिम्मे कृषि, लघु सिंचाई, पेयजल, निर्धनता उन्मूलन, शिक्षा स्वास्थ्य और सफाई जैसे काम हैं, लेकिन कार्यकारिणी और वित्त व्यवस्था सौंपे बिना पंचायतें भला कैसे प्रभावी हो सकती हैं? हम देखते हैं कि प्रशासन तंत्र निम्न स्तर के लोगों को दबाए रखने की क्षमता रखता है। इन व्यवस्थाओं के तहत अधिकारियों और निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण बना पाना बहुत मुश्किल काम होगा। दोनों के बीच कटु सम्बन्धों के कारण कई स्थानों पर विकेंद्रित संस्थाओं के निष्पादन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

ग्रामीण जनता के विकास के लिए केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय सरकार द्वारा समय-समय पर विकास की योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन तो किया जाता है लेकिन पंचायती राज की कार्यप्रणाली के क्रियान्वयन में चुनौतियों कें कारण इन योजनाओं का लाभ उन ग्रामीणों तक नहीं पहुँच पाता है, जो वास्तव में जरूरतमंद है, इस चुनौतियों के पीछे प्रशासकीय क्रियान्वयन अभिकरणों से सम्बन्धित तंत्रों के कारण दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। योग्य प्रशासकों एवम् विशेषज्ञों के अभाव में नियोजन कार्य असफल हो जाता है। पंचवर्षीय योजनाओं के समय में विशेषज्ञ या प्रशासक प्रशासन में आए परन्तु जो स्थान उन्हें मिलना चाहिए, वह उन्हें नहीं मिल पाया अतः वह अपने आप को निराश, हताश अनुभव करते हैं, साथ-साथ उनके कार्य करने का मनोबल निरंतर गिरता जाता है। यदि सहयोग से कोई दक्ष प्रशासक या विशेषज्ञ अपनी ईमानदारी लगन परिश्रम के साथ विकासात्मक कार्यों को करने का प्रयास भी करता है तो उसमें राजनीतिक व हाईकमान के दबावों में आकर वह विकासात्मक कार्य चाह कर भी नहीं कर सकता जिससे दिन-प्रतिदिन प्रशासकों एवम् विशेषज्ञों का अभाव बढ़ता जा रहा है।

बिना तथ्यों एवं आकड़े के न कोई योजना बन सकती और न ही कोई वास्तविक कल्पना की जा सकती, क्योंकि प्रशासन के पास आकड़ों का निराभाव है। आकड़े तो सभी विषयों में मिल जाते हैं परन्तु वे सही व विश्वसनीय नहीं प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ- विधवा पेंशन योजना अथवा ग्रामीण आवास योजना। जब तक प्रशासन को सही व विश्वास नीय तथ्यों के आकड़े नहीं प्राप्त होंगे तब तक ग्रामीण विकास के विकासात्मक कार्यों की योजना बनाना एवं उनके क्रियान्वयन व वास्तविक परिणामों की कल्पना करना व्यर्थ होगा। पंचायती राज की मुख्य चुनौती विकास के लिए मिल रही राशि का उचित वितरण है। पंचायती राज एवम् जिला नियोजन परिषदों से अधिकांश राशि योजनाकारों की जेब से चली जाती है और बची हुई राशि को विकास कार्यों में लगाया जाता है, जो लगभग 15 प्रतिशत ही होती है। इस प्रकार विकास कार्य आधे में ही समाप्त हो जाते हैं। स्थानीय विकास की मुख्य समस्या यह भी है कि किसी भी स्थानीय योजना का निर्माण एवम् उसका क्रियान्वयन व्यक्तिगत हितों, स्वार्थों को मद्देनजर रखकर किया जाता है, इसके साथ ही संसाधनों का दुरुपयोग, भाई-भतीजावाद, इत्यादि गंभीर समस्याएं हैं जो विकास कार्य में बांधा डालती है।

नीति निर्माण तथा समन्वय के स्तर पर भी हीलाहवाली से विकास कार्य शिथिल पड़ जाते हैं। विकास की योजनाओं के निर्माण का कार्य एवं क्रियान्वयन में कठिनाइयां आती हैं एवं विकास यथोचित नहीं हो पाता है। वास्तव में यह प्रत्यक्ष अवलोकन से स्पष्ट हुआ कि सम्बन्धों के अभाव के कारण विभागीय तनाव, मनमुटाव, ईर्ष्या की भावना का विकास होता है। जिससे आपसी सहयोग व समन्वयन का अभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। साथ ही लालफीताशाही में वृद्धि के कारण विकासात्मक कार्यों को पूरा करने में अनावश्यक विलम्ब होता है और कभी-कभी विकासात्मक योजनाओं की फाइलें लंबित रह जाती है। उदाहरण के लिए भवन निर्माण, रोड निर्माण आदि हेतु प्रस्तुत पत्र यदि जिला परिषद् या महानगरपालिका में भेजा जाता है तो महीनों तक परिलंबित पड़ी रह जाती है इस प्रकार की प्रवृति घुसखोरी, भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है। अधिकारियों व पदाधिकारियों के बीच सम्बन्धों में तनाव, मनमुटाव या ईष्या जैसी भावनाओं के कारण ग्रामीण विकास असफल रहता है। इस प्रकार के सम्बन्धों से विकास की योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में कठिनाई आती है।

पंचायती राज प्रणाली द्वारा कार्यान्वित होने वाली प्रत्येक योजनाओं के लिए जन संयोग अति आवश्यक होता है, लेकिन इन योजनाओं के क्रियान्वयन में जन-संयोग के अभाव के कारण योजनाओं के सफल क्रियान्वयन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जनसंवाद की कमी के कारण व प्रशासनिक मशीनरी में जनतंत्रीकरण के अभाव के कारण भी योजनाएं सफलता तक नहीं पहुँच पाती। ग्रामीण जनता को योजनाओं का पता भी नहीं चल

पाता और योजनाएं बनकर क्रियान्वित कर दी जाती है। इस प्रकार जानकारी के अभाव के कारण गरीब अशिक्षित, ग्रामीण जनता योजनाओं के लाभ से वंचित रह जाती है। ग्रामीण विकास की मुख्य चुनौती आर्थिक संसाधनों का अभाव है। ग्राम पंचायत हो या जिला परिषद्, उनके पास धन की समस्या शुरू से रही है। इन संस्थाओं के पास स्वतंत्र आर्थिक स्रोत नहीं है, और यदि है भी तो वास्तव में अर्थ शून्य है। इन्हें शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है। जनसंवाद के कारण ग्रामीण विकास की योजनाओं को शासन ग्रामीण जनता तक पहुँचाने में असफल रही है, जिससे ग्रामीण जनता को योजनाओं का सही ढंग से पता ही नहीं लगता और वे योजनाएं बनकर क्रियान्वित कर दी जाती हैं तथा ग्रामीण गरीब, अशिक्षित व असहाय जनता योजना के आने के इन्तजार में अपना सारा समय व्यर्थ में बर्वाद कर देती है एवं वे योजनाओं के लाभ से वंचित रह जाते हैं।

लार्ड ब्राइस ने कहा है कि "स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र के लिए प्रशिक्षण की आधारशिला है, जिसके अभाव में प्रजातंत्र की सफलता की आशा नहीं की जा सकती।" जनतंत्र का आधार, राजनीतिक एवं नागरिक प्रशिक्षण, उदार दृष्टिकोण एवं नागरिक गुणों का विकास, प्रशासनिक कार्यकुशलता, केन्द्र एवं राज्य शासन के कार्यभार में कमी, सरकारी व्ययों में मितव्ययिता, केन्द्रीकरण के दोषों से मुक्ति, विकास योजनाओं की सफलता में सहायक, भ्रष्टाचार की कम सम्भावना, विभिन्नताओं का पोषक आदि ऐसे महत्वपूर्ण कारण हैं जो स्थानीय स्वशासन के महत्व को इंगित करते हैं। अब यह कहना आवश्यक हो गया है कि शासन एवं जनता को अपनी जिम्मेदारियों एवं जबावदारियों के सक्रियता से निभाने का प्रयास करें। अधिकारियों एवं आम जनता को योजनाओं के सफल क्रियान्वयन में सहयोग देना चाहिए, ताकि ग्रामीण विकास के लिए प्रशासन को सहयोग मिल सके। विकासात्मक कार्यों को करने के लिए प्रशासकों एवं विशेषज्ञों को स्वतंत्रता होने से वे अपने अनुभवों एवं कार्यकुशलता के आधार पर कार्य कर सकेगें। प्रशासन को सम्बन्धित समस्या के वास्तविक आकड़े व तथ्य प्रशासन को प्राप्त कराने में सम्बन्धित व्यक्ति को सहयोग प्रदान करना चाहिए। साथ ही, विकास कार्यों का नियोजन, क्रियान्वयन एवं उसका मूल्यांकन समय-समय पर किया जाना चाहिए, जिससें पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास तीव्र गति से हो सकेगा। इसके अतिरिक्त नागरिक घोषणा-पत्र के अनुसार कार्यों का निष्पादन आवश्यक है। अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रस्तावित फाइलों की यथोचित कार्यवाही के साथ एक निश्चित अवधि के अन्दर पूर्ण करना चाहिए।

आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन-आकांक्षाओं का युग माना जाता है। वर्तमान समय में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, जिसे प्रशासन सकारात्मक रूप दे सकता है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. राज्य स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था में राजनीतिक नेतृत्व किसका होता है?
2. पंचायती राज व्यवस्था में निदेशालय स्तर पर विभागाध्यक्ष का कार्य कौन देखते हैं?
3. ग्राम पंचायत की सफलता किस पर ही निर्भर करती है?
4. पंचायती राज व्यवस्था के पदसोपान क्रम में शीर्षस्थ संस्था कौन है?
5. पंचायत समिति का पदेन सचिव कौन होता है?

## 11.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का सजीव एवं साकार स्वरुप पंचायती राज व्यवस्था में परिलक्षित होता है।यद्यपि भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संगठन की प्रशासनिक संरचना भिन्नता लिए हुए है तथापि मूलभूत सिद्धान्तों में काफी समानता है। ग्रामीण स्थानीय प्रशासन समस्त समाहित शक्तियों का उपयोग कर लोक नीतियों को क्रियान्वित करता है। प्रशासनिक अधिकारी स्थानीय समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था के मध्य की कड़ी है। इन स्थानीय पदाधिकारियों के बिना ऊपर से प्रारम्भ हुए राष्ट्र-निर्माण के क्रिया-कलापों का चलना दुष्कर हो जाता है। राज्यों में पंचायत राज विभाग से सम्बन्धित कार्यों के नियंत्रण, निरीक्षण एंव निर्देशन और योजनाओं की संरचना उनके अनुश्रवण, कार्यान्वियन के लिये राज्य स्तर से लेकर ग्राम स्तर तक एक सशक्त और सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था है। राज्य स्तर पर राजनीतिक नेतृत्व पंचायती राज विभाग के मंत्री का होता है जबकि प्रमुख सचिव, पंचायती राज इसे प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान करते हैं। स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधिओं और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय एक आवश्यक तथ्य है।

## 11.9 शब्दावली

शासन- संचालन की गतिविधि को शासन कहते हैं, या दूसरे शब्दों में कहें तो, राज करने या राज चलाने को शासन कहा जाता है।

प्रशासन- किसी क्षेत्र में विशिष्ट शासन या किन्ही मानव प्रबन्ध न गतिविधियों को प्रशासन कहा जा सकता है, जिनका प्रयोजन सार्वजनिक नीति को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है।

प्रबन्धन- व्यवसाय एवं संगठन के सन्दर्भ में उपलब्ध संसाधनों का दक्षतापूर्वक तथा प्रभावपूर्ण तरीके से उपयोग करते हुए लोगों के कार्यों में समन्वय करना ताकि लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित की जा सके।

विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग।

इकाई- किसी संगठन का निम्नतम प्रशासनिक अभिकरण।

मानदंड- नियम, आधार।

## 11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** पंचायती राज विभाग के मंत्री का, **2.** निदेशक, पंचायती राज, **3.** पंचायत सचिव, **4.** जिला परिषद् या जिला पंचायत, **5.** खंड या प्रखंड विकास पदाधिकारी

## 11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005, भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
2. चन्द्रा पटनी, 2006, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
3. एस0आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. बामेश्वर सिंह, 2000, भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन जयपुर।
5. आशा नारायण राय, जनवरी, 2010, पंचायतों का गणतंत्र, आजकल, नयी दिल्ली।
6. चन्द्रप्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।
7. अवस्थी एवं माहेश्वरी, 2002, भारत में पंचायती राज,लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।


## 11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. एल0सी0 जैन, 2005 ,डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नयी दिल्ली।
2. के0के0 शर्मा, 2005 भारत में पंचायती राज, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
3. गिरवर सिंह, 2004 , भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।


## 11.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे पर प्रकाश डालिए।
2. पंचायत समिति और जिला परिषद् के प्रशासनिक ढ़ाँचे का वर्णन कीजिए।
3. ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं समाधान का विश्लेषण कीजिए।

# इकाई- 12 पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण

**इकाई की संरचना**

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति

12.3 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की आवश्यकता

12.4 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ

12.4.1 संस्थागत नियंत्रण

12.4.2 प्रशासनिक नियंत्रण

12.4.3 तकनीकी नियंत्रण

12.4.4 वित्तीय नियंत्रण

12.5 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाएं

12.6 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण का मूल्यांकन

12.7 सारांश

12.8 शब्दावली

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

## 12.0 प्रस्तावना

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में स्थानीय स्वशासन का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यह न केवल नागरिकों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है अपितु उन्हें शासन का आरंभिक ज्ञान भी प्रदान करती है। इन्हीं कारणों से स्थानीय स्वशासन को आधुनिक लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं का अविभाज्य अंग माना गया है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में लोगों की राजनीतिक सहभागिता एवं स्थानीय विकास हेतु प्रायः सभी देशों में स्थानीय स्तर पर शासन के लिये स्थानीय लोगों का संगठन या निकाय बनाया जाता है और स्थानीय स्तर की विकास योजनायें तथा

अन्य समस्याओं तथा जन मांगों को इसी स्थानीय शासन निकाय द्वारा पूरा किया जाता है। भारत भौगोलिक दृष्टि से अत्यधिक विशाल होने के साथ-साथ संसार का सबसे बड़ा प्रजातान्त्रिक देश है। इस देश की अपनी अनूठी व्यवस्था है कि यहाँ पंचायती राज व्यवस्था को अपना का प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को साकार रूप दिया गया है। राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों न हों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, सरकार एवं उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं।

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण से परिचय कराना है। इसके अंतर्गत नियंत्रण का अर्थ ,औचित्य एवं भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ, नियंत्रण की सीमाएं एवं नियंत्रण का मूल्यांकन पर भी चर्चा की जाएगी।

## 12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नियंत्रण का अर्थ एवं औचित्य के बारे में जान सकेंगे।
- आप भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियों को भी समझ पाएंगे।
- संस्थागत, प्रशासनिक, तकनीकी एवं वित्तीय नियंत्रण के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे तथा
- भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।

## 12.2 नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति

नियन्त्रण प्रबन्धन की एक विधा है। नियंत्रण के अलावा प्रबन्धन के अन्य कार्य हैं- नियोजन, संगठन, कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, निर्देशन आदि। प्रबन्धन में नियंत्रण एक महत्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि यह गलतियाँ सुधारने तथा सुधारात्मक कदम उठाने में मदद करता है। आधुनिक संकल्पना यह है कि नियंत्रण, भविष्य को देखने जैसा कार्य है, जबकि पहले नियंत्रण को गलती को सुधारने वाला कार्य समझा जाता था। प्रबन्धन में नियन्त्रण का अर्थ है- मानक घोषित करना, वास्तविक कार्यक्षमता को मापना तथा सुधारात्मक कार्यवाही करना। नियंत्रण संगठन के

लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन कार्य के निष्पादन को निर्देशित करता है। नियंत्रण कार्य में निष्पादन के स्तर निर्धारित किए जाते हैं, वर्तमान निष्पादन को मापा जाता है। इसका पूर्वनिर्धारित स्तरों से मिलान किया जाता है और विचलन की स्थिति में सुधारात्मक कदम उठाए जाते हैं। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं। नियंत्रण का क्षेत्र उस क्षमता या परिधि को प्रदर्शित करता है, जो किसी नियंत्रणकर्ता अधिकारी में होती है अर्थात एक अधिकारी एक समय में कितने अधीनस्थों को सफलतापूर्वक नियंत्रित कर सकता है। इसे प्राय: 'नियंत्रण विस्तृति', 'प्रबन्ध का क्षेत्र', 'पर्यवेक्षण का क्षेत्र' या 'सत्ता का क्षेत्र' भी कहा जाता है। नियन्त्रण का क्षेत्र, संगठन की संरचना, उद्देश्य, कार्य प्रकृति, पर्यवेक्षक की क्षमता तथा अधीनस्थों के सहयोग इत्यादि पर निर्भर करता है।

सामान्यतः स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रान्तीय शासन द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। केन्द्र अथवा राज्य, जिस भी स्तर के सरकार के द्वारा, स्थानीय शासन की स्थापना की गयी हो, उसी स्तर पर पारित अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन की संरचना, उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधान-मंडलों में निहित है। यह व्यापक नियंत्रण विधायी, कार्यपालिका, प्रशासनिक एवं वित्तीय समस्त क्षेत्रों में है।

भारत जैसे देश में जहाँ अधिसंख्य जनसंख्या गांवों में बसती है, वहाँ पंचायती राज के नाम से प्रसिद्ध ग्रामीण स्थानीय शासन का महत्व स्वतः सिद्ध है। हमारा जनतंत्र इस बुनियादी धारणा पर आधारित है कि शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता अधिक से अधिक शासन कार्यों में हाथ बटाये और अपने पर शासन करने का उत्तरदायित्व स्वयं प्राप्त करे। प्रजातंत्र की सार्थकता विकेन्द्रीकरण में है। यदि शक्तियां विकेन्द्रीकृत हो तो जनता की सहभागिता में वृद्धि होगी और स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर हो जावेगा। स्थानीय लोगों को अपने आसपास

की समस्याओं का ज्ञान तो होता ही है, उसका समाधान भी वे अच्छी तरह से कर सकेंगे। भारतीय संविधान मे किया गया 73वां संशोधन इस दिशा में एक सार्थक प्रयास है। पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यक है। योजनाओं के बेहतर समन्वय और क्रियान्वयन भी नियंत्रण द्वारा बेहतर सम्भव है।

## 12.3 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की आवश्यकता

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में स्थानीय शासन का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यह न केवल नागरिकों को प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, अपितु उन्हें शासन करने का आरंभिक ज्ञान भी प्रदान करती है। सामान्यतः स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रान्तीय शासन द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। केन्द्र अथवा राज्य, जिस भी स्तर के सरकार के द्वारा, स्थानीय शासन की स्थापना की गयी हो, उसी स्तर पर पारित अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन की संरचना, उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधान मंडलों में निहित है। यह व्यापक नियंत्रण विधायी, कार्यपालिका, प्रशासनिक एवं वित्तीय समस्त क्षेत्रों में है। इसके अतिरिक्त न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम से न्यायपालिका भी स्थानीय शासन पर नियंत्रण रखती है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अथवा पंचायती राज संस्थाओं की योजना प्रस्तुत करते हुए तीन स्तर क्रमशः ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद का गठन किया गया है। त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था द्वारा देश के ग्रामीणों में एक चेतना सौंपने का प्रयास किये जाने का प्रस्ताव किया गया ताकि राष्ट्रीय जनतंत्र का आधार व्यापक व मजबूत हो सके। पंचायती राज की संरचना में ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों का गठन किया गया है, जिसे पंचायती राज के नाम से संबोधित किया गया है। ग्राम पंचायतें पंचायती राज व्यवस्था की आधारशिलाएं हैं। पंचायती राज व्यवस्था की सफलता एवं उसकी प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन पंचायतों की सुदृढ़ता एवं शक्ति पर ही निर्भर करती है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम

के अंतर्गत पंचायतों की महत्वपूर्ण स्थिति को स्वीकृति प्रदान की गई है। ग्राम पंचायतों द्वारा विविध एवं बहुमुखी कार्यों को सम्पन्न किया जाता है। पंचायतें स्थानीय क्षेत्रों की प्रतिनिधि सरकारें हैं। इन संस्थानों के निर्वाचित प्रतिनिधि, जिस प्रकार अपनी जिम्मेदारियों को निभाते हैं, उन सभी के लिए वे स्वयं जवाबदेह भी हैं। इनकी जवाबदेही दो स्तरों पर होती है। पंचायतों को राज्य सरकार से निधियाँ मिलती हैं। अत: वह अपनी राज्य सरकार के प्रति जवाबदेह होती है। पंचायतें लोकतांत्रिक संस्थान हैं। अत: इनकी मुख्य जिम्मेदारी उन लोगों के प्रति है, जिन्होंनें इन्हें चुना है। इन दोनों स्तरों पर इनकी जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए पंचायतों को अपनी गतिविधियों के सम्बन्ध में बेहद सजग रहना है। पंचायतों को अपने वित्तीय क्रियाकलाप में पारदर्शी बनाया गया है। सूचना अधिकार अधिनियम के अनुसार, कोई भी नागरिक पंचायत के किसी भी वित्तीय लेन-देन से सम्बन्धित सूचना की माँग कर सकता है। जब कभी ऐसी सूचना की माँग की जाए, तो पंचायतों को बिना विलम्ब किए तत्काल समस्त सूचना प्रदान करनी है।

स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं आपने आप में कोई पूर्णतः स्वतंत्र अथवा पृथक अस्तित्व नहीं रखती, बल्कि केन्द्र या राज्य सरकार का ही एक आवश्यक एवं अभिन्न अंग होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके आभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। पंचायतों का बहुआयामी कार्य, वित्त का साधन एवं अन्य ऐसे बहुत से कारण है जो नियंत्रण को आवश्यक बनाते हैं।

## 12.4 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ

राज्य सरकारों द्वारा पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण के आयाम भारत में भिन्न-भिन्न हैं। जहाँ पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश में एक पंचायत निदेशक होता है, वहीं पंजाब में मार्गदर्शन और परिवीक्षण का एक निदेशालय कार्यरत है। सामान्यतः पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण नगरीय निकायों की अपेक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण है। ग्राम्य स्तर भी आज भी अशिक्षित एवं अनुभवहीन जनप्रतिनिधियों की अधिकता होती है, साथ ही महिला सशक्तिकरण के बाद भी महिलाएं पूर्णतः जागरूक हो पाई हैं। भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ निम्नलिखित हैं-

**12.4.1 संस्थागत नियंत्रण**

पंचायती राज व्यवस्था पर विविध संस्थाएं भिन्न-भिन्न माध्यमों से नियंत्रण रखती है। इनमें व्यस्थापिका की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। स्थापना से लेकर भंग करने तक का अधिकार विधायिका को प्राप्त है। संस्थागत नियंत्रण के माध्यम निम्न हैं-

1. **व्यवस्थापिका द्वारा नियंत्रण-** सामान्यतः स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रांतीय सरकारों की विधायिका या व्यवस्थापिका द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन की संरचना उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण विधायिका या व्यवस्थापिका द्वारा किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधानमंडलों में निहित है। इस प्रकार अंतिम सत्ता व्यवस्थापिका में ही निहित है।
2. **आकार, संरचना एवं चयन सम्बन्धी नियंत्रण-** स्थानीय शासन की संरचना उसके आकार एवं चयन तथा शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। पंचायती राज्य के किसी भी स्तर पर संरचनाओं का आकार जिला पंचायती राज अधिकारी और अन्य सम्बन्धित अधिकारी करते हैं, जो राज्य सरकार के दिशा निर्देशों के अनुरूप होता है।
3. **कार्य सूची पर नियंत्रण-** पंचायती राज्य के विविध स्तरों पर कार्य सूची का निर्धारण राज्य सरकार करती है एवं अनंतर इसे सम्बन्धित संस्थाओं को प्रेषित कर दिया जाता है। यथानुरूप ही समितियों का संचालन भी होता है।
4. **कर्मचारियों पर नियंत्रण,चयन, भर्ती, प्रतिनियुक्ति, प्रशिक्षण एवं सेवा शर्ते-** पंचायती राज संस्थाओं के विविध स्तरीय कर्मचारियों का चयन, प्रतिनियुक्ति, प्रशिक्षण एवं सेवा शर्तो का निर्धारण राज्य सरकार करती है। उदाहरण के लिए ग्राम पंचायत का पंचायत सचिव पंचायत के सहायतार्थ नियुक्त किया जाता है। पंचायत सचिव की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा होती है तथा उसे राज्य सरकार द्वारा निर्धारित वेतन भी मिलता है। ग्राम सेवक या ग्राम विकास अधिकारी भी विकास के लिए पंचायतों का

परामर्शदाता तथा नीतियों को लागू करने में सहायक होता है। पटवारी ग्राम पंचायत स्तर पर राजस्व विभाग का एक महत्वपूर्ण कर्मचारी है तथा विकास सम्बन्धी नीतियों को क्रियान्वित करने में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पंचायत समिति स्तर पर खंड या प्रखंड विकास पदाधिकारी पंचायत समिति का पदेन सचिव होता है और उसका काम पंचायत समिति के प्रस्तावों को कार्यान्वित करना होता है। जिला परिषद् का मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। जिला परिषद् के सभी पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों पर पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण रखना, जिला परिषद् की कार्यपालिका एवं प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण रखना, जिले में प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित लोगों को राहत दिलाना इत्यादि उसके मुख्य कार्य हैं। इसके अतिरिक्त जिला पूर्ति अधिकारी, उपक्षेत्रीय विपणन अधिकारी, जिला वन अधिकारी, जिला उद्योग केन्द्र के प्रबन्धक, विद्युत एवं लोक निर्माण विभागों के अधिशासी अभियंता आदि जिला परिषद् के सलाहकार के रूप में कार्य करते हैं। साथ ही जिन कार्यों को पंचायतों से संदर्भित किया है, उन विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी जिला परिषद् के साथ कार्य करते हैं।

5. **कागज, अभिलेखों एवं संपत्ति पर नियंत्रण-** पंचायती राज संस्थाओं के समस्त अभिलेखों एवं संपत्ति पर राज्य सरकार का नियंत्रण होता है। राज्य सरकार कभी भी अभिलेख मांग सकता सकता है और इसकी जांच भी कर सकता है।

### 12.4.2 प्रशासनिक नियंत्रण संरचना

प्रशासनिक नियंत्रण का उद्देश्य ऐसी नीति और निर्णयों को क्रियान्वित होने से रोकना है, जो सम्बन्धित संस्था के प्राथमिक लक्ष्य और उद्देश्य के विरुद्ध हो। प्रशासनिक नियंत्रण मुख्यतः गैर-सरकारी सदस्यों के विरुद्ध होता है। यह नियंत्रण राज्य सरकार में ही निहित है और वह प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से इन्हें क्रियान्वित करता है। यह नियंत्रण विविध माध्यमों द्वारा होता है, जो निम्नलिखित हैं-

1. **निलंबन एवं भंग करने का अधिकार**- शक्ति और संस्था के दुरुपयोग होने पर राज्य सरकार संस्था के विविध इकाईयों को निलंबित कर सकती है अथवा भंग भी कर सकती है। प्रत्येक इकाई का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित किया गया है किन्तु इसे समय से पहले अर्थात कार्यकाल पूरा होने से पहले भी भंग किया जा सकता है।

2. **प्रस्तावों का निलंबन एवं निरस्तीकरण-** पंचायती राज संस्थाओं के प्रस्तावों पर अंतिम निर्णय लेने का अधिकार राज्य सरकार को है । वह प्रस्तावों को निलंबित अथवा निरस्त भी कर सकती है। पंचायती राज्य के विविध स्तरों पर प्रस्तावों के सम्बन्ध में फैसला राज्य सरकार करती है एवं अनंतर इसे सम्बन्धित संस्थाओं को प्रेषित कर दिया जाता है। यथानुरूप ही अग्रेतर कार्यवाही होती है।
3. **सदस्यों एवं पदाधिकारियों को पदमुक्त करना-** यह नियंत्रण राज्य सरकार में ही निहित है और वह प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से इन्हें क्रियान्वित करता है। उदाहरण के लिये, ग्राम प्रधान/उप-प्रधान जिला पंचायत राज पदाधिकारी को स्वयं लिखकर अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है। अधिनियम के प्रावधान के नुसार सरकार के विचार में यदि कोई ग्राम प्रधान/उप-प्रधान बिना समुचित कारण के तीन लगातार बैठकों में अनुपस्थित रहने या जानबुझकर इस अधिनियम के अधीन अपने कार्यों एवं कर्तव्यों को करने से इंकार या उपेक्षा करने, शक्तियों का दुरूपयोग करने, कर्तव्यों के निर्वहन में दुराचार का दोषी पाए जाने या शारीरिक और मानसिक रूप से अक्षम होने, किसी अपराधिक मामले का अभियुक्त होने के कारण छ: माह से अधिक फरार हो जाने का दोषी हो तो ऐसे ग्राम प्रधान/उप-प्रधान को स्पष्टीकरण हेतु समुचित अवसर प्रदान करने के उपरान्त सरकार हटा सकती है।
4. **अविश्वास प्रस्तावों का क्रियान्वयन-** अविश्वास प्रस्तावों का क्रियान्वयन भी राज्य सरकार द्वारा ही होता है। ग्राम प्रधान या मुखिया का कार्यकाल पांच वर्ष है, परन्तु ग्राम पंचायत अविश्वास प्रस्ताव पास कर उसे पदच्युत कर सकती है। कुछ राज्यों में एक अन्य महत्वपूर्ण पद सरपंच का होता है उसे कदाचार, अक्षमता या कर्तव्यहीनता के कारण सरकार द्वारा हटाया भी जा सकता है। अगर दो तिहाई पंच, सरपंच के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास कर दें तो सरकार सरपंच को हटा सकती है। वहीं दूसरी ओर पंचायत समिति अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके और राज्य सरकार आदेश जारी करके प्रमुख और उपप्रमुख को पदच्युत कर सकती है। जिला परिषद् का अध्यक्ष या व्यवस्थापिका का सदस्य निर्वाचित होने पर प्रमुख को अपना पद छोड़ना होगा।
5. **सामान्य निर्देशों का प्रसारण-** अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन से सम्बन्धित सामान्य निर्देश राज्य सरकार द्वारा जारी किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में राज्य सरकार कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हें समाप्त कर सकती है।

6. **निरीक्षण एवं जांच-** निरीक्षण, दौरे एवं व्यक्तिगत भ्रमण या परियोजना की गतिविधियों का नियमित रूप से देखरेख करना ही 'निरीक्षण' है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा पंचायती राज के विविध पहलुओं के बारे में जानकारी एकत्रित किया जाता है। निरीक्षण के द्वारा प्राप्त जानकारी का सही विवरण करने से, यह जानकारी परियोजना के उपलब्धियों को सुधारने के लिए आगे निर्णय लेने में काम आती है। एक परियोजना के आयोजन और कार्यान्वयन के लिए निरीक्षण बहुत ही महत्वपूर्ण है।

### 12.4.3 तकनीकी नियंत्रण

स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। राज्य सरकार विविध तकनीकी नियंत्रण के माध्यमों का भी उपयोग करती है, जो निम्न है-

1. **योजनाओं एवं कार्यक्रमों का तकनीकी अनुमोदन-** स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। यथा स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हें विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। पंचायती राज संस्थाओं को 29 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। राज्य सरकार विविध योजनाओं एवं कार्यक्रमों का तकनीकी अनुमोदन द्वारा भी इन पर नियंत्रण रखती है।
2. **सामयिक कर्मचारी बैठक-** सामयिक कर्मचारी बैठक द्वारा भी राज्य सरकार इन पर नियंत्रण रखती है। बैठकों का कार्य वृत्त, उनकी कार्यवाही आदि राज्य सरकार द्वारा अंतिम तौर पर अनुमोदित होती है। समय- समय पर बुलाये गए बैठकों द्वारा भी राज्य सरकार दिशा-निर्देश जारी कर सकती है।
3. **प्रतिवेदन की मांग-** प्रतिवेदन की मांग राज्य सरकार द्वारा की जा सकती है। सरकार इस सम्बन्ध में उचित निर्देश देने का अधिकार रखती है।
4. **पंचायती राज एवं नियोजन परिषदों में उपस्थिति-** समय-समय पर बुलाये गए बैठकों द्वारा भी राज्य सरकार दिशा-निर्देश जारी कर सकती है। पंचायती राज एवं नियोजन परिषदों में उपस्थिति राज्य सरकार द्वारा इन पर नियंत्रण का परिचायक है।

5. **तकनीकी अधिकारियों के वार्षिक गुप्त प्रतिवेदन से सम्बन्ध रखना-** नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं। इस सन्दर्भ में राज्य सरकार तकनीकी अधिकारियों के वार्षिक गुप्त प्रतिवेदन का भी पूरा ख्याल रखती है।

### 12.4.4 वित्तीय नियंत्रण

लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। राज्य सरकार पंचायती राज संस्थाओं पर विविध माध्यमों से वित्तीय नियंत्रण रखती है, इनमें प्रमुख हैं-

1. **आय की व्यवस्था-** ग्राम पंचायत हो या जिला परिषद, उनके पास धन की समस्या शुरू से ही रही है। इन संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत या तो दिये नहीं गये या फिर जो भी दिए गये वे अर्थ शून्य हैं। परिणामत: शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है।
2. **बैंकों की व्यवस्था का उल्लेख-** स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को ग्रामीण समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी है। इसलिए राज्य सरकार इन्हें वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराती है तथा मानकों के अनुसार इनसे कार्य की अपेक्षा भी करती है। राज्य सरकार इसलिए बैंकों की व्यवस्था का उल्लेख भी करती हैं।
3. **बजट के सिद्धान्तों का उल्लेख-** पंचायती राज व्यवस्था में बजट की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। बजट एक निश्चित वर्ष के लिए अनुमानित आय-व्यय का विवरण है। बजट उपलब्ध संसाधनों के आकलन करने की प्रक्रिया है तथा पूर्व निर्धारित प्राथमिकताओं के आधार पर संगठन के विभिन्न गतिविधियों के लिए आवंटित करने की प्रक्रिया भी है। यह संसाधनों के आवंटन में प्रतिस्पर्धा की प्राथमिकताओं, निष्पक्षता तथा सामाजिक न्याय के मुद्दों पर भी ध्यान केंद्रित करता है। अपनी वित्तीय भूमिकाओं को छोड़कर बजट द्वारा और कार्य किए जाते हैं। बजट नियंत्रण के रूप में कार्य करता है तथा यह विभिन्न विभागों में कार्यों के मूल्यांकन का माध्यम है। यदि कोई विभाग लक्ष्य से दूर है तो इसे बजटीय प्रस्तावों में सूचित किया जा सकता है और सुधारात्मक कार्यवाही की जा सकती है। बजटीय योजना तथा कार्यान्वयन विभिन्न विभागों को एक साथ लाने में मदद करते है तथा उनमे समन्वय स्थापित करते है। यह

धन का सार्वजनिक उत्तरदायित्व तय करता है। यह सरकारी गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए एक योजनाबद्ध दृष्टिकोण है जो वृहद् संसाधनों को संगठित करने की मांग करता है।

4. **लेखा-** लेखा परीक्षा का उद्देश्य यह होता है कि लेखा परीक्षा के बाद व्यक्ति/संस्था/तन्त्र/प्रक्रिया के बार में एक राय या विचार व्यक्त किया जाय। लेखांकन का उद्देश्य तभी सफल होता हैं जबकि वे विश्वसनीय हो। लेखांकन विवरणों की विश्वसनीयता को अंकेक्षण सुनिश्चित करता हैं। आज के आर्थिक परिवेश में, सूचना व जवाबदेही की भूमिका पहले से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। लेखा परीक्षा यह सुनिश्चित करने के लिये की जाती है कि दी गयी सूचना वैध एवं विश्वसनीय है। इससे उस तन्त्र के आन्तरिक नियन्त्रण का भी मूल्यांकन प्राप्त होता है।
5. **अंकेक्षण-** किसी भी संस्था के वितीय विवरणों/वित्तीय सूचनाओं की स्वतंत्र जाँच करके उस पर राय व्यक्त करना अंकेक्षण कहलाता है। किसी भी व्यवसाय के जीवित रहने के लिए उसकी कार्यक्षमता बढ़ाने तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए लेखांकन अनिवार्य है। अंकेक्षण का सबसे व्यापक अर्थ किसी व्यक्ति, संस्था, तन्त्र, प्रक्रिया, परियोजना या उत्पाद का मूल्यांकन करना है। अंकेक्षण प्रक्रिया में वे सभी कार्य आते है जो अंकेक्षण सिद्धान्तों के अन्तर्गत किसी जाँच के दौरान अपनाये जाते हैं। अंकेक्षण मानदण्डों के अनुसार क्रियाएं निश्चित की जाती हैं। अंकेक्षण प्रविधि में उन उपायों को सम्मिलित करते हैं, जिन्हें लेखा परीक्षण के लिए आवश्यक साक्ष्य के रूप में एकत्रित करके लेखा पुस्तकों में लिखे व्यवहारों की शुद्धता जाँच के लिए अपनाते हैं। इसमें भौतिक परीक्षण, पुष्टिकरण, पुर्नगणना, मूल प्रपत्रों की जाँच, रिकार्ड से मिलान, सहायक रिकार्ड की जाँच, पूछताछ करना, क्रमानुसार जाँच करना, सम्बन्धित सूचना से किसी मद का सह-सम्बन्ध बैठाना, वित्तीय विवरणों का विश्लेषण , आदि शामिल हैं।

## 12.5 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाएं

ग्रामीण स्थानीय निकायों पर नियंत्रण के विविध माध्यमों की सूची काफी लम्बी और प्रभावोत्पादक है, तथापि व्यवस्था में नियंत्रण के ये साधन कार्यकुशलता एवं प्रभाव वांछित स्तर तक नहीं छोड़ पाए है। सादिक अली समिति और अन्य ने भी इस ओर इशारा किया है। पंचायती राज संस्थाओं पर न की सीमाऐं निम्नवत हैं-

1. नियंत्रण और पर्यवेक्षण की शक्तियां राज्य स्तर पर केंद्रीकृत हो गयी हैं। अतः तुरंत कार्यवाही करना सम्भव नहीं हो पाता।

2. निर्वाचित प्रतिनिधियों के खिलाफ भी राज्य सरकार अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकती है। लेकिन समयाभाव एवं अनिच्छा के कारण ऐसा करना सम्भव नहीं हो पाता।
3. अंकेक्षण की प्रक्रिया भी काफी धीमी और अनुपयोगी सिद्ध हुई है।
4. कई बार सरकारें अपने वैधानिक अधिकारों का उपयोग अपने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए करती हैं, जिससे पक्षपात प्रदर्शित होता है।
5. दोषी अधिकारियों के खिलाफ कारवाई करने का अधिकार निर्वाचित प्रतिनिधियों को दिया गया है। अक्सर इसमे त्रुटि एवं गलत धारणाएं विकसित हो जाती हैं।
6. नियंत्रण के साधन रचनात्मक एवं सुधारात्मक नहीं माने जा सकते। अक्सर यह उत्साह ठंडा प्रतीत होता है।
7. राज्य सरकार के स्तर पर ऐसी संस्था का पूर्णतः अभाव है जो पंचायती राज संस्थाओं की समस्याओं पर विचार कर उचित सलाह दे सके।
8. इसके अतिरिक्त ढेर सारे ऐसे कारण हैं जो पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की सीमाएं दर्शाती हैं।

## 12.6 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण का मूल्यांकन

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था ने देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को ग्रामीण समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी हैं। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है, यथा स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हें विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। पंचायती राज संस्थाओं को 29 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीतियों की मांग करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंत:मन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है। लोक कार्यों का प्रबन्ध लोकतांत्रिक होना चाहिए। निम्न स्तर पर लोगों के प्रतिनिधियों से लेकर उच्च स्तर तक दायित्वों का विकेंद्रीकरण व स्थानीय स्वायत्तता आवश्यक है।

किसी भी राष्ट्र के विकास का मूल दायित्व सरकार एवं निजी संस्थाओं के सम्मिलित प्रयास से ही सम्भव है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला उसकी सफलता की सबसे अधिक गारंटी स्थानीय स्वायत्त शासन का संचालन है। यदि लोकतंत्र का अर्थ जनता की समस्याएं एवं उसके समाधान की प्रक्रिया में जनता की पूर्ण तथा प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं विशिष्ट लोकतंत्र का प्रमाण उतना सटीक अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा जितना स्थानीय स्तर पर। यह सत्य है कि राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों न हों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना किसके द्वारा की जाती है?
2. स्थानीय निकायों से सम्बन्धित कानूनों में शासन का कौन अंग कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हें समाप्त कर सकती है?
3. स्थानीय निकायों को निलंबन एवं भंग करने का अधिकार किसे है?
4. एक निश्चित वर्ष के लिए अनुमानित आय-व्यय के विवरण को क्या कहा जाता है?
5. ग्राम प्रधान या मुखिया का कार्यकाल कितने वर्षों का होता है?

## 12.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का सजीव एवं साकार स्वरुप पंचायती राज व्यवस्था में परिलक्षित होता है। यद्यपि भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संगठन की प्रशासनिक संरचना भिन्नता लिए हुए है तथापि मूलभूत सिद्धान्तों में काफी समानता है। भारत भौगोलिक दृष्टि से अत्यधिक विशाल होने के साथ-साथ संसार का सबसे बड़ा प्रजातान्त्रिक देश है। इस देश की अपनी अनूठी व्यवस्था है कि यहाँ पंचायती राज व्यवस्था को अपना का प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को साकार रूप दिया गया है। राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों न हों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार

को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, सरकार एवं उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। राज्य सरकारों द्वारा पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण के आयाम भारत में भिन्न-भिन्न हैं। सामान्यतः पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण नगरीय निकायों की अपेक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण है। ग्राम्य स्तर भी आज भी अशिक्षित एवं अनुभवहीन जनप्रतिनिधियों की अधिकता होती है साथ ही महिला सशक्तिकरण के बाद भी महिलाएं पूर्णतः जागरूक हो पाई हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनप सकती है।

## 12.8 शब्दावली

प्रक्रिया- कार्यविधि, संविधान- राजनीतिक व्यवस्था को नियमित एवं नियंत्रित करनेवाला देश का सर्वोच्च कानून, संविधान संशोधन- संविधान के उपबंधों में आंशिक या पूर्ण परिवर्तन, ढ़ाँचा- संरचना, अधिनियम- कानून, निकाय- संगठन या व्यवस्था, शासन- संचालन की गतिविधि या राज करने या राज चलाने की कला

## 12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** राज्य सरकार द्वारा, **2.** व्यवस्थापिका, **3.** राज्य सरकार, **4.** बजट, **5.** 5 वर्ष

## 12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. एस0आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. बामेश्वर सिंह, 2000, भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन, जयपुर।
3. आश नारायण राय, जनवरी, 2010, पंचायतों का गणतंत्र, आजकल, नयी दिल्ली।
4. चन्द्रप्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।
5. अवस्थी एवं माहेश्वरी, 2002, भारत में पंचायती राज, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
6. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005, भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
7. चन्द्रा पटनी, 2006, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।


## 12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. एल0सी0 जैन, 2005 ,डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नई दिल्ली।

**2.** के0 के0 शर्मा, 2005 भारत में पंचायती राज, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।

**3.** गिरवर सिंह, 2004 , भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

## 12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

**1.** नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति पर प्रकाश डालिए।

**2.** भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की आवश्यकता का वर्णन कीजिए।

**3.** भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ क्या हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।

**4.** भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाओं का मूल्यांकन कीजिए।